

प्रकाशक

पद्मबहादुर श्रीमोतीलालजी मुया
भवानी पेठ सातारा जिल्हा
(M. S. M. RLY)

मिनागमाऽऽराधनयाऽऽराधिताऽस्त्रिलसस्त्रिनान् ।
चन्दनग्रन्थमालेयमहादयत्तु सज्जनान् ॥ १ ॥
वसुनिधिनिधिभूममिते, हर्षोत्कर्षेऽमर्षेऽमर्षे ।
पौपे सितेऽहितिष्यां, नन्दीसूमस्य मुद्रणं पूर्णम् ॥ २ ॥

मुद्रक

रा. रा. विठ्ठल हरि बर्से,
कार्यसूचण मुद्रणास्त्य,
११५१ शिवाजीनगर, पुणे ५.

प्रकाशकका वक्तव्य ।



बन्धुओं । बड़े हर्षका विषय है कि आज स्वर्गीय काकाजी शेट चन्दन-मल्लजी मुथाकी सदिच्छासे आगम-प्रकाशन जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य करनेका मुझे सुअवसर मिला । गतवर्ष दशवैकालिक सूत्रका हिन्दी व मराठी भाषान्तर टीकाके साथ प्रकाशित किया, उसके बाद द्वितीय वर्षमें नन्दीसूत्रका प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, इसका संशोधन आदि कार्य पूज्यश्रीने सातारामेंही प्रारम्भ कर दिया था जो इस तीसरे वर्षमें अहमदनगर चातुर्मासके समय सामग्री संकलनसे पूर्ण हुआ, यद्यपि पूज्यश्रीका विचार इस-समय लिखवाकर रखनेका था, तो भी हमारी विशेष प्रार्थनासे वह संशोधित पुस्तक हमको मिली और हमने कई प्रेसोंमें पृछताछ करनेके बाद पूनाके आर्यभूषण प्रेसमें छपवानेका प्रबन्ध किया ।

मुद्रणकार्य कार्तिक पूर्णिमासीतक पूर्ण होसके इस विचारसे आश्विन विजयादशमीमें नन्दीसूत्रकी हस्तलिखित प्रति प्रेस मैनेजरको देदी गई, किन्तु पसन्दयोग्य कागज मिल नहीं सका, कागजके तलासमें विलम्ब होनेसे कार्तिक शु० ५ से मुद्रण कार्यका आरम्भ हुआ, प्रूफके आने जानेमें विशेष विलम्ब देखकर प्रेस मैनेजरने कहा कि इसतरह यह मुद्रणकार्य १ मासमें पूर्ण होना अशक्य है, एक संशोधक पूनामें रखिए, तदनुसार मार्गशीर्ष वद पञ्चमीसे प्रूफ संशोधनके लिये व्यवस्था पूनामें की गई, फिरभी पूज्यश्रीकी दृष्टिमें प्रूफ एकवार आना अनिवार्य होनेसे १ मासके स्थानमें २ माससे अधिक समय लगा ।

प्रस्तुत संस्करण अनेक संस्करणोंके निरीक्षण करके तथा अनेक विद्वान् मुनिओंसे शङ्का समाधान करके परिश्रमके साथ सम्पन्न किया गया है, तथापि इसकी उपयोगिता व श्रमोंकी सफलता तो पाठकोंके सन्तोषसेही समझी जायगी ।

प्रार्थी-

नम्र-मोतीलाल मुथा.

सातारा सिटी.

नन्दीसूत्रके सम्पादन आदि कार्यमें संयुक्त ग्रन्थ.



ग्रन्थनाम	प्रकाशक या प्राप्तिस्थान-
१ श्री नन्दीजी सूत्र मलयगिरि वृत्ति व बाळावचोप	श्रीराय धनपतिरसिंह बहादुरका आगमसंग्रह-अमीम बंध (मा ४५)
२ श्रीमन्नन्दिचूत्रम् वृत्ति हारि वृत्ति	विजयदानचूरिसंशोधित इन्दौरसे मुद्रित
३ नन्दीसूत्र मूळपाठ	छोटेछाळ यति जीवनकार्यालय अजमेर
४ नन्दीसूत्र पु अमोसकप्रबिमीकृत द्विन्वीमावातुवावसहित	छासा सुखदेवसहायजी प्वासाप्रसा दजी जखेरी, वृत्तिव द्विवावाव
५ नन्दीसूत्रम्-मलयगिरिकृत टीका	आयमोदय-समिति सूरत
६ नन्दीसूत्रवृत्ति मूळसहित वृत्तिकार मलयगिरि सं. १९०४	भाण्डारकर प्राच्य विद्या संशोधन मंदिर पूना
७ बृहत्कल्पसूत्रम् समाम्य (प्र विमान)	श्रीम आत्मानम्ब समा, भावनगर
८ ममवती सूत्र दु. मा	पण्डित मयवानदास सम्पादित मुजरात विद्यापीठ, अमृतवाड
९ अर्चमानकी कोप	शतावधानी मुनिजी रत्नचंजजी महाराज सम्पादक-बम्बई त्या. कौम्फरस्त
१० अभिवातराजेंद्र	रतकाम
११ श्रीमवावस्यकनिर्मुक्ति-बीपिका प्र विमान	गुलाबचंज कस्तुर्भाई, भावनगर
१२ आबस्यक-सूत्रम् मलयगिरिवृत्ति तृतीय भाग	देवचंज छाळमर्त, मुंबई
१३ पाइअसहमहज्जमो	पण्डित हरमोबिड्दास ही सेठ, प्वाप ध्याकरनतीर्थ, कसकसा
१४ रायपसेजइय-सूत्र टीका द्विप्याक्समित	गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय अम्दावाव
१५ समवासीय अमयदेव सूरिकृत टीका	आयमोदय समिति सूरत
१६ दोम्मन्सार जीवकाण्ड	परमशुत प्रभादक मण्डळ जखेरी बजार मुंबई
१७ श्यार्दान	आयमोदय समिति, सूरत
१८ अष्टयोनद्वार	" " "

नन्दीसूत्रके सम्पादन आदि कार्यमें संगृहीत ग्रन्थ

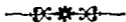
- १९ वीरनिर्वाण संवत् और जैन कल्याणविजय शास्त्रसमिति
कालगणना जालोर (मारवाड)
- २० आर्हत आगमोक्तुं अवलोकन याने हीरालाल रसिकदास कापडिया,
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास सूरत
- २१ चतुर्थ कर्मग्रन्थ पं. सुखलालजी सम्पादित, रोसन
मुहल्ला, आगरा, प्राप्तिस्थान-शेठ
हिरालालजी कापडिया, बम्बई.

नन्दीसूत्रके प्रकाशित संस्करण.



- १ रायधनपतिसिंह बहादुरकी ओरसे- मलयगिरि वृत्ति व बालावबोधसहित
मलयगिरिकृत टीका-
- २ आगमोक्तुं सामिति सूरत नन्दीसूत्र सटीक
- ३ रतलाम-श्वेताम्बरसंस्था श्रीनन्दीसूत्रस्य चूर्णि हारिमद्रीया वृत्तिश्च
- ४ लाला सुखदेवसहाय ज्वाला- नन्दीसूत्र हिन्दीभाषा टीकासहित
प्रसाद दक्षिण हैद्राबाद पूज्यश्री अमोलकऋषिजी कृत
- ५ इन्दोरसे मुद्रित श्रीमन्नन्दीसूत्रम्, चूर्णि हारिमद्रीया
वृत्तिसहितम्
- ६ शेठीया ग्रन्थमाला, बिकानेर मूलपत्राकार
- ७ जैन पुस्तकप्रकाशक सामिति, रतलाम „ पुस्तकाकार
- ८ फलोदी- „ „
- ९ जीवन कार्यालय, अजमेर „ „
- १० जैनसिद्धान्त स्वाध्यायमाला „ „
जामनगर
- ११ जीवन श्रेयस्कर पाठमाला, बिकानेर „ „
- १२ श्रीमहावीर जैन भाण्डार, विहड़ी „ „

प्रबन्धके दो शब्द ।



करीब २८ वर्षसे मुझे जैन मुनिजोंकी सेवा करनेका अवसर मिलरहा है। यह स्व० शंठ चन्दनमल्लजी व रा ब मोतीलालजी साहबकी उदारताकाही परिणाम है। सीभाग्यवश आमदसेवाके कार्यमें भी उनकी सविध्यासे मैं नियुक्त किया गया। पूज्यभीजीके साथ पुस्तकान्तरसे पाठ मिळाना छाया व अनुवादकी प्रेस-कॉपी करना, और पूज्यभीजीको विश्वास प्रेसमें देना यह मेरा कार्य है, अतः प्रस्तुत नन्दीसूत्रके सम्पादन, प्रकाशन आदि कार्यका परिषय देना मेरा कर्तव्य है।

नन्दीसूत्रकी आवश्यकता एवं कार्य-परिषय ।

आज ब्रह्म-सामग्रीकी सुखमता है। इस युगमें जो थोडा भी शिक्षित हुआ तबसे वो चार पुस्तकोंका सङ्ग्रह कर उनमें कुछ घटा बढाके खेचक या संशोधक बन जाता है। किन्तु संशोधनके लिये पर्याप्त साधन व शक्ति नहीं मिलानेके कारणही उनसे अभ्यासियोंकी आवश्यकता पूर्ण नहीं होती। प्रस्तुत सूत्रके भी मूल टीका, जूनि और अनुवादके मिलकर सब ११ प्रकाशन हो चुके हैं, परन्तु उनमें मूल संशोधनका पर्याप्त प्रयत्न दृष्टिगोचर नहीं होता। वैसाही स्पष्टिबालीके दिवयमें भी बहुतसी पुस्तकोंमें ५० माघाएँ और कईमें ४३ गाथाएँ प्रकाशित हुई हैं, किन्तु इसपर किसीने विशेष ऊहापोह नहीं किया। ऐसेही दृष्टिबाधके वर्णनमें भी बहुतसा पाठभेद मिलता है। इन सबपर पर्यालोचन करते हुए नन्दीसूत्रका कोई संस्करण आजतक नहीं निकला, अतः देसा कोई संस्करण निकले यह बिरकाससे मेरी इच्छा थी। इस वर्षमें प्रेसिडेन्सीमें अर्धमागधी शिक्षणके कोर्समें नन्दीसूत्रको भी रक्खा है। विद्यार्थी समितिसे प्रकाशित टीकाबासे नन्दीसूत्रकी पुस्तकसे भाग अपना काम चलाते व किन्तु अभी यह भी अप्राप्यसी हो गई, इससे विशेषतया विद्यार्थिवर्गकी ओरसे यह मांग होने लगी कि नन्दीसूत्रके अनुवादका एक द्वाद्व संस्करण निकाला जाय। उपरोक्त आवश्यकतासे हमने पूज्यभीजीसे प्रार्थना की, जिसके फलस्वरूप साताराके चातुर्मासमेंही पूज्यभीने नन्दीसूत्रका काय प्रारम्भ कर दिया और भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिरकी हस्तलिखित प्रतिसे तथा भागमोक्ष समितिमुद्रित पुस्तकसे संशोधन व छायानुवाद सम्पन्न किया। चातुर्मासके बाद ८ मासतक यह कार्य बिल्कुल बंद रहा। मुझेयुद्ध चातुर्मासमें रा. सा. छात्रचन्द्री गुयाके सहयोगसे फिर इस कार्यको प्रारम्भ किया और पूछ व छायाकी कापी तथाधकर हिन्दी अनुवाद हुआ किया। १० दशिकास्त-जीने तीनोंको फिर स्थिबद्ध किये और विवाहलीतक यह खेचककार्य पूर्ण

किया । स्थविरावलीकी सात गाथाओंके बाबत उपाध्याय श्री आत्मारामजी, युवाचार्य श्री आनन्दऋषिजी, शतावधानीजी श्री रत्नचन्द्रजी और पंजाब-केसरी पू० काशीरामजी महाराजसे पूछा गया है कि टीकाओंमें इनकी व्याख्या नहीं की है, समितिकी पुस्तकमें भी ये नहीं हैं अतः आपका इस विषयमें क्या मत है ?

सभीकी ओरसे एकही उत्तर मिला कि ये परम्परासे मान्य हैं, रखनी चाहिये । इसकी अन्वेषणमें भी खासा प्रयत्न किया गया, किन्तु चातुर्मासकी समाप्तिपर्यन्त कोई योग्य प्रमाण नहीं मिला । चातुर्मासके बाद साधनोंके विघटन होने और पू. के विहारसे फिर वह कार्य रुका रहा । नगरके चातुर्मासमें पुनः टिप्पण, परिशिष्टके अलावा उस लिपिवद्धका संशोधन किया । उस समय स्थविरावलीकी गाथाओंके बाबत भी समाधानजनक प्रमाण मिले, उसपरसे इनको मूल क्रमसेही रखनेका निश्चय किया और साथ यह टिप्पण भी लगादिया कि अमुक २ पुस्तकमें ये गाथाएँ नहीं हैं ।

इसप्रकार नन्दीसूत्रको पूर्ण अन्वेषणके साथ तय्यार करना और परिशिष्ट आदिसे भी सुसज्जित कर रखना, जो समयपर प्रकाशमें लाया जा सके इसतरह पू का विचार इस समय केवल नन्दीसूत्रको साङ्गोपाङ्ग लिख रखवानेकाही था किन्तु रा ब साहबकी सम्मति यह हुई कि पूज्यश्री भारवाड पधार जायंगे तब फिर अधिक विलम्ब होगा, अतः इसको तो इस वर्ष प्रकाशित करवालेना चाहिये ।

शेठजीकी इस विनतिपर पूज्यश्रीने भी वह संशोधित पुस्तक हमारे स्वाधीन की ।

कार्यमें बाधा ।

इसी बीचमें महायुद्धका बोझ विशेषतया आनेसे कागजकी कीमतमें महर्घता आ गई, इतनाही नहीं बल्कि कागज मिलनाही दुस्साध्य होगया । बहुत कुछ खोजनेपर जो भी सन्तोषजनक नहीं तो भी साधारणतया उपयोगी कागज लिया गया । अनेकविध बाधाओंको पार करके आज इस कार्यको पूर्ण कर रहा हूँ यह प्रेसके कार्यकर्ताओंके सौहार्द और सहायकोंके योग्य सहायकाही परिणाम है ।

१ आवश्यक सूत्रकी दीपिकाके प्रारम्भमें ५० गाथाकी व्याख्या की है । जैन कालगणनामें मुनिश्री कल्याणविजयजीने लिखा है कि—' जिसप्रकार बलभी वाचनाके अनुयायिओंने युगप्रधान गण्डिकाप्रभृति प्रकीर्णक ग्रन्थोंमें अपनी परम्परागत युगप्रधानावलीका क्रम दिया है, उसी प्रकार देवर्द्धिजीने भी इस थेरावलीमें माथुरी वाचनानुयायी युगप्रधान थेरावलीका वर्णन किया है । इसमें कुल ३१ युगप्रधानोंका क्रम वर्णित है, किन्तु जबसे देवर्द्धिको २७ वा पुरुष माननेकी दन्तकथा प्रचलित हुई तबसे इस थेरावलीमें धर्म, भद्रगुप्त, वज्र, आर्यरक्षित और गोविन्दके वर्णनकी गाथाएँ प्रक्षित समझी जाकर निकाल दी गई । वस्तुतः उक्त गाथाएँ नन्दीकीही हैं ' जैन काल गणना—पृ १२५

धन्यवाद ।

प्रस्तुत कार्यमें जिन १ महाशुभावंनि सेखन, प्रुफ-संशोधन व प्रु प्रदान भाविसे सहाय किया है उनके छुभनाम धन्यवादके साथ नीचे । प्राति हैं—

इसमें स्वयं पूज्यभीका परिभ्रम विशाल है। शीघ्रताके चसते जिन अंश पूज्यभीके अमोंका उपयोग नहीं किया जासक, उन्ही अंशोंमें छुटियों रखी. व हमारा स्पष्ट कहना है ।

१ अमोलकचन्वभी सुरपुरिया, पद. ए. पदपद भी—अपने वकाल-भावि आवश्यक कामोंको एकतरफ रक्कर अन्तःकरणसे प्रेमपूर्वक परिभ्रम किया है ।

१ पूनमचन्वजी मेहेर—आपने पूज्यभीजीके छेखकी पत्नी कौपी व प्रुफ-संशोधनमें भ्रम किया है ।

१ आत्मानम्ब सैन छायावरी, पूना—यहांसे नन्वीछ्म टीकरकी पुस्तकें मिळी हैं ।

४ माम्बारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्डिर, पूना—यहांसे नन्वीछ्मकी अतिप्राचीन प्रति प्राप्त हुई जिसपर कि प्रस्तुत प्रकाशन आधार रक्ता है ।

जिन १ पुस्तकोंसे सहाय लिया है, उनके छेखकोंका भी हम सावर संस्मरण करते हैं ।

अभ्यर्थना ।

इतना परिभ्रम उठानेपर भी छुटियों रहजाना सम्भव है । छुट पाठक इनके छिये हमें क्षमा प्रदान करें व सुजनतासे इनकी हमें च्चना करें ताकि आबामी संस्करणमें उनका उपयोग किया जाय । छुट्टे कि ब्रह्मना-इत्थम् ।

निवेदक—दुःस्मोचन झा ।

॥ श्रीः ॥

श्रीनन्दीसूत्रकी भूमिका



“ नमोऽस्तु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ”

लेखक—जैनधर्मदिवाकर पण्डितप्रवर उपाध्याय श्रीआत्मारामजी महाराज

इस अनादि संसारचक्रमें आत्माने अनेकवार जन्म-मरण किए । किन्तु अपने स्वरूपको भूलकर परगुणोंमें रत होनेसे यह जीव दुःखोंका ही अनुभव करता रहा । श्रुत, श्रद्धा और संयमसे पराङ्मुख होकर पुद्गल द्रव्योंको अपनाता हुआ मनुष्य अपने गुणोंको भूलगया । इसीसे अज्ञानवश होकर वह शारीरिक व मानसिक दुःखोंका अनुभव कर रहा है । उन दुःखोंसे छूटनेके लिये सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्रकी आराधनाही एकमात्र उपाय है । गुणमय होनेपर भी ज्ञान द्रव्यको मङ्गलमय बनादेता है । जैसे-पुष्पोंकी प्रतिष्ठा सुगन्धिसे होती है, ठीक इसीप्रकार आत्मद्रव्यकी पूजा प्रतिष्ठा ज्ञानसे होती है ।

ज्ञान और नन्दीसूत्र—

नन्दीसूत्रमें पञ्चविध ज्ञानका वर्णन किया गया है, यहाँ प्रश्न यह उपास्थित होता है कि ज्ञान शब्दसे नन्दी शब्दका क्या सम्बन्ध है ? विषय तो इसमें ज्ञानका है फिर इसका नाम नन्दी क्यों पडगया ? इस प्रश्नपर आचार्यश्री मलयगिरिजीने जो प्रकाश डाला है, वह यों है—

“ अथ नन्दिरिति कः शब्दाऽर्थः ? उच्यते—दुनदु समृद्धौ इत्यस्य धातोः “उदितो नम्” इति नमि विहिते नन्दनं नन्दिः—प्रमोदो हर्ष इत्यर्थः । नन्दि हेतुत्वाज् ज्ञानपञ्चकाभिधायकमध्ययनमपि नन्दिः । नन्दन्ति प्राणिनोऽस्मिन् वेति नन्दिः, इदमेव प्रस्तुतमध्ययनम् । आविष्टलिङ्गत्वाच्चाध्ययनेऽपि प्रवर्तमानस्य नन्दिशब्दस्य पुंस्त्वम् । “ इः सर्वधातुभ्यः ” इत्यौणादिक इप्रत्ययः । अपरे तु ‘ नन्दी ’ इति दीर्घान्तं पठन्ति, ते च “ इक् कृष्यादिभ्यः ” इति सूत्रादिक्प्रत्ययं समानीय स्त्रीत्वेऽपि वर्तयन्ति ।

स च नन्दिश्चतुर्द्धा—नामनन्दिः, स्थापनानन्दिः, द्रव्यनन्दिः, भावनन्दिश्च ।

इसप्रकार नन्दीसूत्रकी चूर्णमें भी लिखा है, जैसे कि—

“सम्प्रसृतस्वंप्रतादीर्णं पंगलाधिकारे नैदिसि घचव्वा—पर्वणं
पंद्री, नैदिसि वा णेण सि नैद्दी, नैदी—पमोदो—इरिसो कंदप्यो इत्यर्थः ।
तस्स य घचव्विहो णिक्खेवो, गयाओ पामदुवणाओ, दव्वणंदी—आणगो
अणुचरणा,

अहना—जाणग—भचिय—सररी—इतिरिचो वारसविइ तूरसंपातो इमो—

भंभा, मुकुंद, मबल, कइम्ब, प्रहुरि, हुइक कंसाला ।

कइल, तिलिसा, वंसो, पणवो, संखो य वारसमो ॥

मावणंदी—णदिसवोवचत्तमाओ, अहवा—“ इमं पंचविहणाणपरुम्भं णदिसि
अम्भयणं ” ।

यहाँपर श्रीहरिमप्रसूरि भी इसीप्रकार लिखते हैं। अतः नन्दी शब्द
आत्मस्वप्नक द्वैतिक कारण ज्ञानका वाचक है, नतु साहित्यमें आए हुए नन्दी
या नान्दीका । भावनन्दीशब्द पञ्चविध ज्ञानकाही बोधक है, ये पाँच ज्ञान कयो
पशम वा ज्ञायिकभावके कारणसे उत्पन्न होते हैं। जैसे—मतिज्ञान अतज्ञान
अवधिज्ञान व मनःपर्यवहान ये चारों ज्ञान कयोपशम भावपर निर्भर हैं, और
केवलज्ञान ज्ञायिक भावसे उत्पन्न होता है। जब ज्ञानावरणीय कर्म, इशाना
घरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्मोंकी प्रकृतियों क्षीण हो
जाती हैं तब आत्मा केवलज्ञान और केवलइशानसे युक्त अर्थात् सर्वज्ञ और
सर्वइशान हो जाता है। इस नन्दीसूत्रमें उन पाँच ज्ञानोंका विषय सविस्तर
मतिपावित किया गया है।

यह सङ्कलित है या रचित ?

।आचार्य श्रीवेदवाचक रामाश्रमजने आममन्त्रोंसे मङ्गलरूप पञ्च ज्ञानोंका
प्ररूपक श्रीनन्दीसूत्रका उद्धार किया है, जैसे कि उपाध्याय समयसुन्दरजी
लिखते हैं—“ एकवशाद् गणपरभाषित है। उन अङ्गशास्त्रिक आधारपर रामा
श्रमजने उत्कालिक आवि आममोंका उद्धार किया है। ” नन्दीशास्त्र जिन
जिन आममोंसे सङ्कलित है, उनकी चर्चा नीचे की जाती है—नन्दीसूत्रके
मूलकी वशेषणा करते हुए प्रथम स्थानाद् सूत्रके द्वितीयस्थान प्रथम उद्देश के
७१ वें सूत्रपर दृष्टि जाती है। वहाँ नन्दीसूत्रके छिड़े निम्नोक्त आधार मिलता
है। वहाँ वह पाठ—

१ देखिए रामाचार्यका स्वतः प्रकाश आत्मस्वप्नवाचिकार पत्र ७७ । विरोध—इसमें
आत्मोदयमिति प्रसक्ति आत्मोद्देशी प्रत्यक्ष मन्त्रा है, अतः पत्रके अन्तमें देखें ।

“दुविहे नाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव । पच्चक्खे नाणे दुविहे प० तं०—केवलनाणे चेव १, नोकेवलनाणे चेव २ । केवलनाणे दुविहे प० तं०—भवत्थकेवलनाणे चेव, सिद्धकेवलनाणे चेव । भवत्थकेवलनाणे दुविहे प० तं०—सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव । सजोगिभवत्थकेवलनाणे दुविहे प० तं०—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव । अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव । एवं अजोगिभवत्थकेवलनाणे वि । सिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०—अणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव परंपरसिद्धकेवलनाणे चेव । अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे प० तं०—एक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव ” । (पूर्णापाठ)

इनके व्याख्यास्वरूप सूत्रभी आगममें मिलते हैं । अनुयोगद्वार सूत्रमें इन्द्रियप्रत्यक्ष नोइन्द्रियप्रत्यक्ष—ये दोनो भेद प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रतिपादित किए गए हैं । अवधिज्ञानके भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक ये दोनों भेद एवं इसकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है । स्थानाङ्ग आदिमें अवधिज्ञानके छ भेद प्रतिपादित किए गए हैं । इन भेदोंके नाम और मध्यगत—अन्तगत आदि विषय प्रज्ञापनासूत्रमें आते हैं । अवधिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे चार भेदोंका सविस्तर वर्णनभी भगवतीसूत्रमें देखा जाता है ।

मनःपर्यवज्ञानके अधिकारका पाठ नन्दीसूत्र और प्रज्ञापनासूत्रमें समानरूपसे ही आता है । भेद केवल इतनाही है कि यह प्रज्ञापनासूत्रमें आहारक शरीरके प्रसङ्गमें वर्णित है । इस सूत्रमें मनःपर्यवज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूपसे जो चार भेद प्रदर्शित किए गए हैं, इनका सम्बन्ध भगवतीसूत्रसे मिलता है ।

केवलज्ञानका वर्णन जिस रूपसे हम यहाँ पाते हैं, वहभी प्रज्ञापना सूत्रसे उद्धृत किया ज्ञात होता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपसे केवलज्ञानके जो चार भेद प्रतिपादित किए हैं, वेभी भगवतीसूत्रसे सङ्कलित हैं ।

१ अनुयोगद्वारसूत्र—जीवगुणप्रत्यक्षाधिकार पत्र २११ । २ स्थानाङ्ग स्थान ६, सूत्र ५२६, पत्र ३७० । ३ प्रज्ञापनासूत्र पद ३३ सू० ३१७ पत्र ५३६ । ४ भगवतीसूत्र शतक ८, वदेश २, सू० ३२३, पत्र ३५६ । ५ प्रज्ञापना पद २१, सू० २७३, प ४२३ । ६ देखिए चौथी पादटिप्पणी । ७ पद १, सू० ७०८, पत्र १८ । ८. देखिए चौथी पादटिप्पणी ।

मतिज्ञानके विषयका मूल (बीजरूप) स्थानाङ्गसूत्र स्थान १, उद्देश १, सूत्र ७१ में साधारणरूपसे आशुका है, किन्तु उसके अट्टाइस भेदोंका वर्णन समेवायाङ्गसूत्रमें मिलता है। सम्भव है कि नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका जो सविस्तर वर्णन आया है, वह किसी अन्य (अधुना अप्राप्य) जैन भागमसे सङ्गृहीत हुआ हो। मतिज्ञानकेभी चारों (द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव) भेद भगवतीसूत्रसे उद्धृत किए हुए ज्ञात होते हैं। किन्तु भगवतीसूत्रमें केवल 'पास्र' है और नन्दीमें 'न पास्र' ऐसा पाठ आता है, शेष पाठ सामान्य है।

सुप्रज्ञानका विषयभी यहाँ भगवतीसूत्रसे उद्धृत किया गया है—

“कइभिहे णं मति ! गणिपिडए प० ? गोयमा ! दुषालसंगे गणिपिडए प० तं—आयारो जाव दिट्ठिआओ । से किं तं आयारो ? आयारे णं समणारं पिगारं आयारगोय० एवं अंगपरुवणा भणियथ्वा, गहा नदीए जाव—

सुत्तप्यो संसु पडमो, बीओ निञ्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।

सइओ य निरवसेसो, एस बिही होइ अणुओगे ॥ १ ॥”

इन सबोंके अतिरिक्त नन्दीसूत्रके कितनेही स्थल स्थानाङ्गसूत्र, अनुद्योम्भारसूत्र, वशासुतस्कन्धसूत्र आदि अनेकों भागमग्रन्थोंके कितनेही स्थानोंसे मिलते हैं। इस प्रकारकी सामान्यतासे यह बात मज्जी मांति प्रमाणित हो जाती है कि देववाचक क्षमाग्रमण्यका यह ग्रन्थ विविध आमनोंसे सङ्गृहित है, निर्मित नहीं है।

नन्दीसूत्रकी प्रामाणिकता—

वेदस्त्रिमण्ठी क्षमाग्रमणने भगवत् महावीर स्वामीके ९८० वर्ष पञ्चाव अर्थात् ४५४ ई० (५११ वि०) में कच्छमी नगरीमें साधुसङ्घको एकत्र किया। तबतक सारा भागम कण्ठस्थही रक्खा जाता था। देववाचक क्षमाग्रमण्यके प्रयत्नसे साधुसङ्घके उस महान् अभिवेशनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि तबतक कण्ठस्थ चले आते आमनोंको साधुओंने लिपिबद्ध कर लिया। एक स्थानमें बैठकर एकही समयमें साधुओंद्वारा किले होनेके कारण इस आजमी इन विभिन्न अङ्गोंमें सामग्रस्य पारहे हैं और इसीलिये एक ग्रन्थका प्रामाण्य अथवा निर्देश दूसरे ग्रन्थमें पाते हैं। समाचारोक्तकमें इस विषयको निम्न प्रकारसे स्पष्ट किया है—

“ साम्प्रतं वर्तमानाः पञ्चचत्वारिंशदप्यागमाः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणैः श्रीवीरादशीत्यधिकनवशतवर्षे ९८० जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशात् ? (जातया द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षतया) बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायाम्, यदाहुः—“ प्रसह्य श्रीजिनशासनं रक्षणीयम्, तद्रक्षणञ्च सिद्धान्ताधीनम् ” इति भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय श्रुतभक्तये च श्रीसङ्घाऽऽग्रहान्मृताऽवशिष्ट तत्कालीन ? (लिक) सर्वसाधून् वल्लभ्यामाकार्यं तन्मुखाद् विच्छिन्नाऽवशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमाऽऽलापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या सङ्कलय्य (ते) पुस्तकाऽऽरूढाः कृताः । ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्सङ्कलनाऽनन्तरं सर्वेषां पञ्चचत्वारिंशन्मितानामप्यागमानां कर्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः । तज्ज्ञापकमपीदम्—‘ यथा श्रीभगवतीसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम् । प्रज्ञापनासूत्रं च वीरात् पञ्चत्रिंशदधिकत्रिंशतमिते वर्षे जातं श्रीश्यामाचार्यकृतम् । श्रीभगवत्यां च बहुषु स्थानेषु साक्षिः ? लिखितास्ति—‘ जहा पन्नवणाए ’ एवमन्येष्वप्यङ्गेषु—उपाङ्गसाक्षिः ? लिखिता, (साक्ष्यं लिखितम्) तद्वचने त्वया उपयोगो देयः ” ।

इस कथनसे यह भलीभांति सिद्ध हो गया कि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण सङ्कलयिता थे। एक आगममे दूसरे आगमके निर्देशका कारणभी इसीसे समझमें आजाता है। नन्दीसूत्रका निर्देश अन्य आगमोंमें मिलता है—

जहा नंदीएँ । जहा नंदीएँ । जहा नंदीएँ । जहा नंदीएँ ।

इस प्रकार अन्यान्य आगमोंमें भी नन्दीसूत्रका उल्लेख पाया जाता है। इससे नन्दीसूत्रकी पूर्ण प्रामाणिकता व प्राचीनता सिद्ध होती है।

नन्दीसूत्रमें अवतरणनिर्देशकी शैली—

आगमोंकी प्राचीनशैलीसे पता चलता है कि प्रस्तुत आगमका प्रस्तुत आगममें भी निर्देश किया जाता था, जैसे कि—समवायाङ्गसूत्रमें द्वादशाङ्गके वर्णनप्रसङ्गमें खुद समवायाङ्गका भी नाम आया है। ऐसे व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्रमें द्वादशाङ्गका उल्लेख करते समय खुद व्याख्याप्रज्ञप्तिका भी नाम आया है। यही क्रम अन्य आगमोंमें भी मिलता है। यह प्राचीन परम्परा वेदोंमें भी पाई जाती है, जैसे कि—

१।२ भग सू शतक ८ उद्देश २ सू० ३२३ पत्र ३५६ पक्ति ६ और ८ ।

३ समवायाङ्ग समवाय ८८ सू० ८८ पत्र ८८ । ४ रायपसेनहयं पत्र ३०५ ।

५ यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ४ ।

“सुपर्णोऽसि गरुत्मौ खिभृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रयन्तरे पशौ स्वोम आत्मा छन्वाश्च स्यङ्गानि यजूपि नाम ।”

इसी प्राचीन शैलीको नन्दीसूत्रमें भी स्वीकार किया है। अतएव उक्ता सिकुसूत्रकी गणनामें नन्दीसूत्रका नाम मिलता है।

अभुतनिमित्तज्ञानकी विशेषता—

मतिज्ञानके भुतनिमित्त और अभुतनिमित्त ये दो भेद प्रतिपादित किये गए हैं। भुतनिमित्तका जो विषय नन्दीसूत्रमें प्रतिपादित किया गया है। वह अन्य आममें विद्यमान है। किन्तु अभुतनिमित्तके विषयमें जो मायायें यहाँ की गई हैं, वे अभ्यन्न नहीं मिलती। सम्भव है देववाचक क्षमाभमजने उवाहरणके रूपमें इन गाथाओंका निर्माण स्वयं किया हो।

नन्दीको सूत्र कहना या सूची ?

स्थानाङ्ग सूत्रके त्रितीयस्थान प्रथम उद्देशमें भुतज्ञानके दो भेद किये गए हैं, जैसे कि—अङ्गवित्तमुत्त और अङ्गवाद्यमुत्त। अङ्गवाद्यके भी आवश्यक और आवश्यककम्पतिरिक्त ये दो भेद किये गए हैं। आवश्यककम्पतिरिक्तके भी कासिक तथा उत्कासिक ये दो भेद किये गए हैं।

देववाचक क्षमाभमजने स्थानाङ्गसूत्र और व्यवहारसूत्रमें आप हुए आगमेंके नाम तथा उनके अपने समयमें जो आगम विद्यमान थे उनमें जो कासिकभुतके अन्तर्गत थे उनका वैसा निर्दिष्ट करविया। और जो उत्कासिक भुत थे उन्हें उत्कासिक निर्दिष्ट कर दिये जैसे कि चार मूलसूत्रोंमेंसे इत्तराध्ययनसूत्र कासिक है और ब्राह्मिकासिक नन्दी अनुयोगद्वारा ये तीनों सूत्र उत्कासिक हैं। इसीप्रकार उपाङ्ग आदि सूत्रोंके सम्बन्धमें भी समझ लेना चाहिए। नन्दीसूत्रमें अमुक्तमपिका अंश मौजूब है, सूत्र अंशही प्रधान है, अतः इसका सूत्र नामही सार्थक है।

अक्षर आदि १४ भुतका आचार कहाँसे लिया ?—

नन्दीसूत्रमें भुतज्ञानके १४ भेद वर्णित हैं, जैसे कि—

“से किं तं सुयनापरोक्षत्वं ? सुयनापरोक्षत्वं षोडसविं पञ्चत्वं, तं महा—भरस्वरसुर्यं १ अणस्वरसुर्यं २ सणिसुर्यं ३ असाणि

१ “से किं तं आभिणिशोदियनाणं ? आभिणिशोदियनाणं षुविं पञ्चत्वं तं महा—सुयनिस्त्विष्यं अस्तुयनिस्त्विष्यं च । से किं तं अस्तुयनिस्त्विष्यं ? अस्तुयनिस्त्विष्यं षडविं पञ्चत्वं, तं महा—

उप्यपिया देणयया कम्मया परिणामिया ।

बुद्धी षडविंश षुसा पंचमा मोक्खम्मइ ॥ १ ॥

अभुतनिमित्त नन्दी ।

सुर्यं ४ सम्मसुर्यं ५ मिच्छसुर्यं ६ साइयं ७ अणाइयं ८ सपज्जवसियं ९ अपज्जवसियं १० गमियं ११ अगमियं १२ अंगपविट्टं १३ अणंग-पविट्टं १४ ॥

यह प्रसङ्ग भगवतीसूत्रसे लिया गया है। वहाँपर नन्दीसूत्रकी अन्तिम गाथा पर्यन्तका निर्देश है। नन्दीसूत्रकी अन्तिमगाथा ९० वीं गाथा है। किन्तु श्रुतज्ञानके चतुर्दश भेदोंका जो वर्णन विस्तारपूर्वक पहले आ चुका है, उसका पुनः संक्षेपसे ८६ वीं गाथामे वर्णन किया गया है जैसे कि—

“ अक्खर, सन्नी, सम्मं, साइयं, खलु सपज्जवसियं च ।

गमियं अंगपविट्टं, सत्त वि एए सपडिवक्खा ॥ ”

अन्तमे निष्कर्ष यह निकला कि अक्षरश्रुत अनक्षरश्रुत आदि विषय भी आगमबाह्य नहीं है।

केतुभूतकी द्विरुक्ति—

तीर्थङ्करोंके अन्तरोंमें अर्थात् एकके बाद दूसरे तीर्थङ्करके बीच समयमें दृष्टिवादका व्यवच्छेद होना लिखा है^१। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके हजार वर्षके बाद १४ पूर्वोंका व्यवच्छेद हुआ। दृष्टिवादका जो प्रसङ्ग समवायाङ्ग सूत्रके द्वादशाङ्ग वर्णनमे आता है वैसाही प्रसङ्ग हम नन्दीमें पाते हैं। केतुभूतका सम्बन्ध इसी व्यवच्छिन्न (विच्छेद पाये हुए) दृष्टिवादसे है, अतः ‘केउभूयं’ के दो बार आनेका कारण ज्ञात करना असम्भव है। वृत्तिकार भी इस व्यवच्छिन्न दृष्टिवादकी व्याख्याके सम्बन्धमे लिखते हैं—

“ सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नम्, तथाऽपि लेशतो यथागतसम्प्रदायात् किञ्चिद् व्याख्यायते.... . ”

और चूर्णिमें भी—“ तं च सत्त्वं समूलुत्तरभेदं सुत्तत्यओ वोच्छिण्णं जहा-गतसंपदायं वा वच्चं ” (पृ० ५५) ऐसाही लिखा है। हरिभद्रसूरि भी इससे सहमत थे। तभी तो उन्होंने अपनी वृत्तिमें पृ १०६ पर चूर्णिका उक्त वाक्य उद्धृत किया है। “ यथाऽऽगत सम्प्रदाय ” के अतिरिक्त और क्या आलम्बन था। इस स्थितिमें ‘केउभूयं’ की द्विरुक्तिका कारण समझना बड़ा ही कठिन है।

भारत रामायण आदिका उल्लेख—

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके समयमें गणधरोंने सूत्ररूपसे द्वादशाङ्गीकी रचना की। उनके समयमें भारत, रामायण आदि ग्रन्थ विद्यमान थे,

१ नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान भेद, सूत्र ३८। २ भगवती सूत्र, पत्र ८६६, सूत्रसंख्या ७३२, ३ भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू. ६७७) ४. भगवती सूत्र, पत्र ७९२ (सू. ६७८)

अतः उनका नाम आमा असङ्गत नहीं है। पश्चात् देववाचक क्षमाभ्रमणने भारत श्रीर रामायणके साथ अन्य शास्त्रोंका भी उद्धृत अपने नन्दीसूत्रमें कर दिया, जैसे कि-कोबिह (कीटिलय चाणक्य) आदि।

नन्दीसूत्रक अध्ययनकी विशिष्टता—

नन्दीसूत्रमें पाँच ज्ञानोंका विस्तृत स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कारण कि "पञ्चमं नागं तत्रो द्या" अर्थात् द्याकी अपेक्षा ज्ञानका महत्त्व अधिक है, इसलिये नन्दीसूत्रका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अङ्गसूत्रोंसे प्रायः उद्धृतकर सङ्कल्यिता श्रीदेववाचक क्षमाभ्रमणने इसको उत्कासिक सूत्रोंके अन्तर्भूत कर दिया, जिससे केवल अनभ्यासको छोड़कर सबैय इसका स्वाभ्यास किया जा सकता है। ज्ञानका प्रतिपादक होनेसे इसका माहुरिक होना भी स्वतः सिद्ध है। ज्ञानकी आराधनासे जब निर्याणपदकी भी प्राप्ति हो सकती है तो फिर श्रीर यस्तुओंका तो कहनाही क्या! इस बातका साक्ष्य मग्नैतोसूत्रमें है—

“सङ्कोसिर्यं नं भवे ! णाणाराहणं आराहेचा कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति आब अंतं करेति ? गोयमा ! अत्येगइए वेणेण भवग्गहणेणं सिज्झंति जाब अंतं करेति । अत्येगइए दोषेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाब अंतं करेति, अत्येगइए कप्पोवपसु वा कप्पातीपसु वा उबबज्जंति ।

मग्गिमिर्यं नं भवे ! णाणाराहणं आराहेचा कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति आब अंतं करेति ? गोयमा ! अत्येगइए दोषेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाब अंतं करेति, तथं पुण भवग्गहणेणं नाइकमइ ।

अहभियण्णं भवे ! णाणाराहणं आराहेचा कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति, आब अंतं करेति ? गोयमा ! अत्येगइए तथेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ आब अंतं करेइ, सत्तट्ठ भवग्गहणाइ पुण नाइकमइ ” ।

अर्थात् जयन्य सम्यग्ज्ञानकी आराधनासे भी जीव अधिकसे अधिक ७-८ भव करके सिद्ध हो जाता है। इससे ज्ञानमय नन्दीसूत्रकी विशिष्टता सहज माहुर हो सकती है।

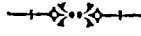
इत्यर्थं सिद्धम् ।

दीपावली १९९८ }

जैनमुनि आत्माराम,
लुधियाना (पंजाब)

॥ ॐ अर्हं नमः ॥

प्रस्तावना



प्रस्तुत शास्त्रका नाम नन्दीसूत्र है। निर्युक्तिकारने नन्दी शब्दके निक्षेप करते हुए कहा है कि ' भावंमि नाणपणंगं ' अर्थात् भावनिक्षेपमें पांच ज्ञानको नन्दी कहते हैं। नाट्यशास्त्रमें और १२ प्रकारके वाद्य-अर्थमें भी नन्दी शब्दका प्रयोग आता है। किन्तु यहां पांच ज्ञानरूप भावनन्दीका वर्णन करने एवं भव्य जनोंके प्रमोदका कारण होनेसे यह शास्त्र नन्दी कहाता है। पांच ज्ञानकी सूचना करनेसे यह सूत्र है, विशेष जाननेके लिये इसी सूत्रकी भूमिका देखे।

अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेद इस प्रकार जैनागमोंके प्रसिद्ध जो चार विभाग अङ्गादि आगमोंमें हैं उनमें प्रस्तुत नन्दीसूत्रका मूल आगममें स्थान पाता है, नन्दीका स्थान क्योंकि इसमें आत्माके मूल गुण ज्ञानका वर्णन किया गया है। [अङ्ग, उपाङ्ग, मूल व छेदकी विशेष जानाकारीके लिए सातारासे प्रकाशित दशवैकालिक सूत्रकी भूमिका देखे]

नन्दीसूत्रका विषय है आत्माके ज्ञानगुणका वर्णन करना, इसमें ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले संस्थान आदि सब बातोंको नहीं कहके पांचों ज्ञानके मुख्य भेदोंका स्वरूप और उनके जाननेका विषय दिखाया गया है।)

(नन्दीसूत्रमें आचार्य श्रीदेववाचकने सर्व प्रथम अर्हंज्ञादि आवलिकारूपसे ५० गाथाओंमें मङ्गलाचरण किया है। फिर आभिनि- नन्दीसूत्रका बोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, आदि ज्ञानके ५ भेद करके प्रका- विषय परिचय रान्तरसे प्रत्यक्ष व परोक्ष संज्ञासे ज्ञानके दो प्रकार किये हैं। प्रत्यक्षके इन्द्रियप्रत्यक्ष व नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ऐसे दो भेद करके प्रथम ५ प्रकारका इन्द्रियप्रत्यक्ष कहा है। जिसको जैन न्यायशास्त्रकी परिभाषामें सांख्यव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। तदनन्तर नोइन्द्रियप्रत्यक्षमें अवधि- ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान व केवलज्ञानका अवान्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रधानत्वकी दृष्टिसे प्रत्यक्षका वर्णन करके फिर परोक्षज्ञानमें आभिनिबोधिक ज्ञानके अश्रुत-निश्रित व श्रुत-निश्रित ऐसे दो भेद किए गए हैं। तथा औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओंके उदाहरणपूर्वक वर्णनसे अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान कहा गया है, एवं अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा भेदसे भिन्न श्रुतनिश्रित मतिज्ञानका प्रभेदोंसे वर्णन करके प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे

अथमाह, ईहा भाषिमें परस्पर भेद समझाया गया है। इसके बाद उत्तरार्धमें सुतहाम परोक्षके १ अक्षर २ अनक्षर ३ सञ्चि ४ असञ्चि ५ सम्बन्ध ६ मिथ्या ७ साञ्चि ८ असाञ्चि ९ सावसान १० निरवसान ११ गमिक १२ अगमिक १३ अङ्गप्रविष्ट १४ और अङ्गप्रविष्ट सुत ऐसे १४ भेदोंका उद्दिष्टा करके क्रमशः उनका स्वरूप बताया गया है। अङ्गवाह्यसुतमें आवश्यकके १ अध्ययन और उत्प्राप्तिक व प्राक्तिक सुतोंकी परिमथना की गई है। बाद अङ्गप्रविष्टमें ११ अङ्गोंका विषय परिचय व सुतस्कन्ध अध्ययन आविका परिमाण एवं उद्देशान-समुद्देशान-कालका निर्देश किया गया है। फिर १२ वें अङ्ग इतिवाकके परिकर्म १, सूत्र १ पूर्वगत ३ अनुयोग ४, व ऋषिका ५, इन पाँचों प्रकारोंका अवाप्तर भेदोंके साथ वर्णन किया गया है। अन्तमें शाकशास्त्रीके विराधनाका संसारमें प्रमथनरूप और उसकी आराधनाका संसार तारणरूप फल बताया है। उपसंहारमें पञ्चास्तिकायकी तरह शाकशास्त्रीकी गित्यता दिखाकर सुतहामके भेदोंका जो गायसे संग्रह किया है। आने अनुयोग भवण एवं अनुयोग नामकी विधि कही गई है। इसप्रकार सुतहाम परोक्षके साथ नवीसूत्रकी समाप्ति होती है।

इसकी रचनाका मूल आधार पाँचवीं ज्ञानप्रवाह पूर्व सम्भव होता है, क्योंकि उसमें ज्ञानसम्बन्धी वर्णन है। वर्तमानके अङ्गो रचनाका मूल आधार पाँच आदि शास्त्रोंमें भी इसका आधार मिलता है, जिसका उपाध्यायजीने सूक्तिकामें विशदार्थन कराया है। अतः विशेष आनेके लिये सूक्तिका पढ़ें।

नवीसूत्रकी रचना सूत्र और गायक समयरूपसे है। इसकी सूत्ररचना प्रश्नोत्तरके रूपमें होमैसं प्रायः सुमम है। प्रत्येक प्रश्न-वाक्यके अन्तिमपक्षकी उत्तर वाक्यमें भी इहाराया गया है। प्राचीन आममोंमें बहुधा यह रीति इतिगोचर होती है (वेदो मयवतीसूत्र आवि अङ्गशास्त्र) यहाँ पाठकोंका शङ्का होनी कि शास्त्र तो अस्याक्षर और बहु अर्थवाले होते हैं। फिर इस सूत्रमें एकही पक्षकी अनेक बार आवृत्ति क्यों की? क्या इससे पुनरुक्ति होय नहीं होमा? उत्तरमें पुनरुक्ति सर्वत्र दोषही होता है या कहीं गुण भी? यह समझना चाहिये। आचार्यमि कई प्रसङ्ग ऐसे माने हैं जिनमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता, वेदो—

पुनरुक्तिर्न दुष्यते

उपरोक्त श्लोकमें आचार्य किये गये पुनरुक्ति को भी निर्दोष माना है, इसके सिवाय कहीं १ सुशोधार्थ भी शाब्दिक या आधिक पुनरुक्ति की गई है, जैसे—प्राथम्यम्, पञ्च० आदि, इसके लिये आचार्यने 'दिष्यदुद्दि-प्राथम्यम्' देखा उत्तर दिया है।

भगवती सूत्रकी तरह नन्दीसूत्रकी मूलभाषा प्राचीन प्राकृत है। प्राकृत साहित्यमे थोड़ा भी अभ्यास रखनेवाला इसपरसे सहज भाषा और ग्रन्थ-परिमाण बोध कर सकता है। ग्रन्थ-परिमाण सातसौका कहा जाता है। जैसे १४७४ की हस्तलिखित प्रतिमे ग्रन्थाग्रं ७०० लिखा है। किन्तु 'जयइ' पदसे अन्तिम 'से तं नन्दी' इस पदतकके पाठको अक्षरगणनासे गिननेपर २०६८६ अक्षर होते हैं, जिनके ६४६ श्लोक १४ अक्षर होते हैं। अगर कहा जाय कि ७०० की गणना आणुत्तानन्दीको लेकर पूरी की गई है, तो उसमें बहुत श्लोक बढ़ते हैं, अतः ऐसा मानना भी सङ्गत नहीं। प्रचलित नन्दीसूत्रका मूलपाठ यदि कौंसके पाठोंको मिलावे तो भी ६५० करीब होता है; सम्भव है कालक्रमसे कुछ पाठकी कमी हो गई हो, या लेखकोंने अनुमानसे ७०० लिखा हो।

(नन्दीसूत्रके कर्ता श्रीदेववाचक आचार्य माने जाते हैं। चूर्णिकार श्री-जिनदासगणि आपका परिचय देते हुए लिखते हैं कि कर्ता 'देववायगो साहुजण-हियठाए इणमाह'-नन्दीचूर्णि (पृ २०१६) इसकी पुष्टीमे वृत्तिकार श्री हरिभद्रसूरिका उल्लेख इस प्रकार है—“देववाचकोऽधिकृताध्ययनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्ररूपणां कुर्वन्निदमाह” फिर—“न नु देववाचकरचितोऽयं ग्रन्थ इति” नन्दी हा. वृ. (पृ ३७)

(उपरोक्त उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि नन्दीसूत्रके लेखक श्रीदेव वाचक आचार्य हैं, किन्तु यह विचारना आवश्यक हो जाता है कि आचार्य-श्रीने इसको मौलिक निर्माण किया है या प्राचीन शास्त्रोंसे उद्धरण किया है?

टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिने मनःपर्यवज्ञानकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ देववाचकरचित है, तब अप्रासङ्गिक गौतमका आमन्त्रण क्यों? इस शङ्काके उत्तरमे आप कहते हैं कि “पूर्वसूत्रोंके आलापकही अर्थके वशसे आचार्यने रचे हैं” देखो ‘पूर्वसूत्रालापका एव अर्थवशाद्भिरचिताः’—श्रीमन्नन्दी-हा वृ (पृ ४२) ८

उपाध्याय समयसुन्दर गणि भी लिखते हैं—‘अङ्गशास्त्रोंके सिवाय अन्य शास्त्र आचार्योंने अङ्गोंसे उद्धरण किये हैं’ देखो—‘एकादश अङ्गानि गणधर-भाषितानि, अन्यागमाः सर्वेऽपि छद्मस्थे अङ्गेभ्यः उद्धृताः सन्ति’—पृ ७७, समाचारीशतक। २

(श्रीदेववाचक आचार्य प्रस्तुत सूत्रके सङ्कलनकर्ता हैं। इन्होंने इसका सङ्कलन किया है, नूतन निर्माण नहीं।) उपाध्यायश्रीने सङ्कलनकर्ता व अपनी भूमिकामें इस विषयको सप्रमाण सिद्ध किया है। निर्माता टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरिजी भी मनःपर्यव ज्ञानकी व्याख्या करते हुए ‘पूर्व सूत्रोंके आलापकोंकोही आचार्यने अर्थवशसे रचे हैं’ ऐसा लिखते हैं, देखो टीका पृ ४२।

दूसरी बात यह है कि नन्दीसूत्रमें आये हुए 'तेरासिय पक्का अर्थ चूषिकार व वृत्तिकारनि 'आजीविक सम्प्रदाय' ही किया है। देखो- ते चेष आजीविया तेरासिया मणिया चूषि पृ १०१ पं ९ और 'भिराशिकपञ्चाजीविका पयोष्यन्ते हा वृ पृ १०७ पं ७। यदि देववाचककोही नन्दीसूत्रका मूल कर्ता माना जाता तो चूषि और वृत्तिमें 'तेरासिय पक्का अर्थ भी आचार्य भिराशिक सम्प्रदाय करते क्योंकि श्री. नि. ५४४ में रोहगुप्त आचार्यसे भिराशिक सम्प्रदायका अविर्भाव हो चुका था। फिर भी 'तेरासिय' पक्के आजीविक ही कहे जाते हैं, (ऐसा आचार्यश्रीका निश्चयात्मक वचन यही सिद्ध करता है कि नन्दीसूत्रकी मौलिक रचना मणपरकृत है क्योंकि देववाचकका सत्ता समय वृष्यमणिके बाद माना गया है, श्री. नि. ५४४ के पूर्वका नहीं। इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि देववाचक आचार्य नन्दीसूत्रके सङ्गठनकर्ता ही हैं।)

नन्दीसूत्रके सङ्गठनकर्ता श्रीदेववाचक और देवद्विगणि दोनों भिन्न भिन्न हैं या एकही आचार्यके ये दो नाम हैं? इस विषय-
 देववाचक और देवद्विगणी " देववाचकका दूसरा नाम श्री देवद्विगणी है, किन्तु नन्दीसूत्रके सङ्गठनकर्ता देववाचक आगमोंको पुस्तका रूप करनेवाले देवद्विसे भिन्न हैं "। स्थविरावलीकी मरुतुङ्गीया टीकामें भी 'वृष्यमणियो य देवद्वी', लिखकर देववाचकका दूसरा नाम देवद्वि माना है। गच्छमतप्रबन्ध अने सङ्घ प्रमति' के छेत्तक बुद्धिचानर सूत्रिने पृ ५२७ की पञ्चावलीमें भी देववाचक और देवद्विको भिन्न भिन्न माने हैं।

उपरोक्त माध्यतामें नन्दी व कल्पसूत्रकी स्थविरावली प्रमाण समझी जाती है, क्योंकि नन्दीसूत्रके रचयिता देववाचकको वृत्तिकारने वृष्यमणिका शिष्य कहा है, और कल्पकी स्थविरावलीके निर्माता देवद्वि मणी शाण्डिल्यके शिष्य माने गये हैं, देवद्वि जो पूर्ववर्ती हैं वे शाण्डिल्यको पुस्तकाकार करनेवाले माने जाते हैं और वृष्यमणिके शिष्य देववाचक नन्दीसूत्रके छेत्तक हैं। अर्थात् शाण्डिल्यके बाद नन्दीसूत्रका निर्माण मानना होगा जो सर्वथा किन्तु है।

प्रस्तुत सूत्रके सङ्गठयिता श्री देवद्वि कब और कहाँ जन्म धारण किये तथा उनको किस समय मुनि व स्वरिपद प्राप्त हुआ? आदि देवद्विके परिचय विषयोंका स्पष्ट उल्लेख आज अनुपलब्ध है। तथापि स्थविरावली आदि साहित्यमें इनका कुछ परिचय मिलता है
 जैसे-वशास्तुत्सक-यके अष्टमाध्ययनकी—

सुसत्परपणमरिप, लम्बममङ्गचतुषैर्हि संपत्ते ।

देवद्वि लजासमये कासपगुप्ते पणिववामि ॥ १४ ॥

इस गाथासे मालुम होता है कि देवर्द्धि जन्मसे काश्यपगोत्री थे ।

वृत्तिकार श्री मलयगिरीजीने प्राचीन व्याख्याकारोंकी व्याख्याके आधारपर नन्दीसूत्रमें आई हुई स्थविरावलीको देवर्द्धिकी देवर्द्धिगणिकी शाखा गुर्वावली मानी है और इसीलिये उन्होंने देवर्द्धिको महागिरिशाखीय दूष्य माने है । इस विषयमें उनका लेख इस प्रकार है—' नन्दीसूत्रके प्रारम्भमें भगवान देवर्द्धिगणिजीने जो स्थविरावली दी है वह हमारे मतसे माधुरी वाचनानुगत युगप्रधान स्थविरावली है ' । पर आचार्य मलयगिरिजी मेरुतुङ्गसूरि-प्रभृति आचार्योंका कथन है कि नन्दीकी थेरावली महागिरिशाखीय देवर्द्धिगणिकी गुरुपरम्परा मात्र है । इस विषयका मलयगिरि सूरिका उल्लेख इस प्रकार है—
 " तत्र सुहस्तिन आरभ्य सुस्थितसुप्रतिबुद्धादिक्रमेणावलिका विनिर्गता सा यथा दशाश्रुतस्कन्धे तथैव द्रष्टव्या, न च तयेहाधिकारः, तस्यामावलिकायां प्रस्तुताध्ययनकारकस्य देववाचकस्याभावात्, तत इह महागिर्यावलिकयाऽधिकारः " -नन्दीसूत्र टीका, पत्र ४९ ।

मेरुतुङ्गसूरि भी स्थविरावली टीकामें इस प्रकार लिखते हैं—' अत्र चाऽयं वृद्धसम्प्रदायः-स्थूलभद्रस्य शिष्यद्वयम्-आर्यमहागिरिः, आर्यसुहस्ती च । तत्र आर्यमहागिरियां शाखा सा मुख्या, सा चैवं स्थविरावल्यामुक्ता '-

सूरि वलिस्सह साई, सामञ्जो संढिलो य जीयधरो ।

अञ्जसमुदो मंगू, नंदिल्लो नागहत्थी य ॥

रेवई सिंहो खंदिल, हिमवं नागञ्जुणा य गोर्विदा ।

सिरिभूहदिस-लोहिच्च, दूसगणिणो य देवह्दी ॥

(मेरुतुङ्गी थेरावली टीका ५)

चूर्णिकार व श्री हरिभद्रसूरिने भी इनको दूष्यगणिके शिष्य लिखकर महागिरीय शाखाके आचार्य माना है, जो इस प्रकार है—' एवं कयमंगलो-वयारे थेरावलिकमे य दंसिए अरिहेसु दूसगणिसीसो देववायगो साधुजण-हियट्टाए इणमाह '-चूर्णि पृ. १० । ' दूष्यगणिशिष्यो देववाचकः '-हारि. वृ पृ २० ।

इस प्रकार प्राचीन आचार्योंके लेख और प्रसिद्धिमे देवर्द्धिगणी महागणी शाखाके आचार्य माने गए हैं किन्तु मुनि कल्याणविजयजीने अपने ' जैन काल-गणना ' नामक लेखमें इसका विरोध ८ कारणोंसे किया है । उन्होंने देवर्द्धिको सुहस्ति परम्पराकी जयन्ती शाखाके आचार्य माने हैं । उनके लेखका वह अंश निम्न प्रकार है—' आजपर्यन्त जो जो उल्लेख हमारे दृष्टिगत हुए हैं उनसे तो यह साबित होता है-देवर्द्धिगणि आर्यमहागिरीकी शाखाके नहीं, किन्तु

आर्यसुहस्तीकी परम्परामत जयन्ती द्वासाके स्वविर थे । टीकाकारोंने मन्वीकी स्वविरावलीको वेदविरकी गुर्वावली मानी है परन्तु श्रीकल्याण-विजयजीका कहना है कि 'मन्वीके व्यादिमें उन्होंने जिन जिन स्वविरोंका उल्लेख किया है वे सब गुरुशिष्यपरम्परामत नहीं परन्तु पुनप्रधान-परम्परामत स्वविर थे-उनके भिन्न भिन्न मध्य और गुरुओंके शिष्य होनेपर भी एक दूसरेके पीछे पुनप्रधान-पद प्राप्त होमेसे वेदविरने उनको क्रमशः एक आवलि-बद्ध किया है' फिर-'वेदविरने सम्भूतविजयके बाद मद्रवाहु और महा मिरिके बाद सुहस्तिको स्वविर माना है, इससे ज्ञात होता है कि यह घेरा बली गुरुक्रमवाली घेरावली नहीं पर पुनप्रधान क्रमवाली है । उपरोक्त विवरणपर विधीय विचार करनेसे वेदविरको सुहस्तिकी परम्परामें माननाही विशेष सुसह्य विज्ञता है ।

उपर हम खिल आप कि श्रीवेदविर सुहस्तीकी परम्पराके आचार्य हैं । अब इस बातका विचार करना आवश्यक है कि उनके देवविरगणिके वीसागुरु वीसागुरु नामा है । उनका कहना निम्न प्रकार है—

आचार्य मलयगिरिजी इनको वृष्यमणिके शिष्य खिलते हैं—'वृष्यमणि-शिष्यो वेदवाचकः' । प्रसिद्धिमें भी वेदविरमणि वृष्यमणिकेही शिष्य कहलाते हैं । पर हम समझ सकते हैं कि मलयगिरिजीका उल्लेख और उक्त मसिद्धि मन्वी घेरावलीकी वेदविरकी गुरुक्रमबली सेमेकाही फल है । और जब हम यह देख चुके हैं कि मन्वीघेरावली वेदविरकी गुरुपञ्चावली नहीं है, तब उसके आधारपर यह कैसे मानें कि वेदविरमणि वृष्यमणिके शिष्य थे । कल्पघेरा-वलीमें भी वृष्यमणिका नामनिर्दिष्ट नहीं है, पर यहाँ अन्त्यनाम शाण्डिल्यका है । इससे ज्ञाना जाता है कि वेदविरगणिके वीसागुरु आर्य शाण्डिल्यही होने चाहिये । मन्वीमें वेदविरके पहले वृष्यमणिका नाम होनेका अर्थ यह हो सकता है कि वे वेदविरमणिके पुरोयामी पुनप्रधान होने ।

आचार्यजी वेदवाचकमे वी. नि. १८० में शाण्डिल्यकिया पेटा प्रसिद्ध है, वेदो-अन काकगणना पृ ११७ का टिप्पण । माधुरीकी देवविरगणिके समय मणनाके व्युत्सार आर्यरक्षितजी १० में स्वविर थे; वे वी. नि. सं ५८४ में स्वर्गवासी हुए । और इनके पीछे १९१ वर्षमें वेदविरसहित ११ पुनप्रधान हुए । और वेदविरने १८० में पुस्तकोत्तर किया इसपरसे यह निर्णय कर सकते हैं कि वी. नि. इदमी प्रस्तावकीके अन्तिम चरणमें आचार्य भी वर्तमान थे ।

श्रीमन्नन्दीसूत्रकी प्रस्तावना

भगवान् महावीरके वाद शास्त्रोंकी मुख्य तीन वाचनाएँ हुईं जो १ पाटलिपुत्रीया २ माथुरी तथा ३ वाल्मीक नामसे प्रसिद्ध हैं।

१ पाटलिपुत्रीया—यह वाचना नन्द राजाके शासनकालमें वीर नि. १६० के आसपास पाटलिपुत्र नगरमें हुई, अत यह आगमवाचना और पाटलीपुत्रीय कहाती है। इस वाचनामें श्रमण सङ्घने देवर्द्धिगणी एकत्र होकर दुर्भिक्षके कारण छिन्न-भिन्न हुए आग-मोंको पुनः व्यवस्थित किये, यह वाचना श्रुतकेवली मद्रवाहुके समयमें हुई थी।

२ माथुरी वाचना—इसके सम्बन्धमें आचार्य श्रीमलयगिरिजी नन्दी-सूत्रकी टीकामें लिखते हैं—स्कन्दिलाचार्यके समयमें वारह वर्षका दुर्भिक्ष पडा, उस महान् दुर्भिक्षके समयमें साधुओंको भिक्षाकी प्राप्ति असम्भव हो गई। इससे अपूर्व सूत्रार्थका ग्रहण और पठितका परावर्तन प्रायः सर्वथा नष्ट हो गया। बहुतसा अतिगययुक्त श्रुत भी इसीसे विनष्ट हो गया तथा परिवर्तन नहीं करनेसे वह अङ्ग-उपाङ्गगत भी भावसे नहीं रहा। वह वारह वर्षका दुर्भिक्ष मिटकर जब सुभिक्ष हुआ तब मथुरामें स्कन्दिलाचार्य प्रमुख श्रमण सङ्घने एकत्र मिलकर जिसको जो याद था उसने वह कहा, इसप्रकार कालिकश्रुत और पूर्वगतको अनुसन्धान करके सङ्घटित किया। मथुरामें यह सङ्घटना हुई इसलिये इसको माथुरी वाचना कहते हैं, और वह उस समयके युगप्रधान स्कन्दिलाचार्यकी मान्य थी व अर्थ-रूपसे उन्होंनेही शिष्योंको उसका अनुयोग दिया, इसलिये वह अनुयोग स्कन्दिलाचार्यका कहाता है। दूसरे आचार्य इस विषयमें ऐसा कहते हैं—दुर्भिक्षसे कुछ भी श्रुत नष्ट नहीं हुआ, किन्तु उस समयमें उतनाही श्रुत रहा था। केवल दूसरे प्रधान अनुयोग करनेवाले आचार्य सभी दुर्भिक्ष समयमें कालके ग्रास होगये, एक स्कन्दिलाचार्यही रहे थे, उन्होंने दुर्भिक्षके अन्तमें फिर मथुरामें अनुयोग किया, इसलिये यह माथुरी वाचना कहाती है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हम वह टीकाका अंश यहां उद्धृत करते हैं—

“इह स्कन्दिलाचार्यप्रतिपत्तौ दुष्पमसुषमाप्रतिपन्थिन्या. तद्गतसकल-शुभभावप्रसन्नैकसमारम्भाया दुष्पमायाः साहायकमाधातुं परमसुहृदिव द्वादश-वार्षिकं दुर्भिक्षमुदपादि, तत्र चैवंरूपे महति दुर्भिक्षे भिक्षालामस्याऽसम्भवाद्दव सीदता साधूनामपूर्वार्थग्रहणपूर्वार्थस्मरणश्रुतपरावर्तनानि मूलत एवापजग्मु। श्रुतमपि चातिशायि प्रभूतमनेशव। अङ्गोपाङ्गादिगतमपि भावतो विप्रणष्टम्, तत्परावर्तनादेरभावात्। ततो द्वादशवर्षानन्तरसुत्पन्ने सुभिक्षे मथुरापुरि स्कन्दि-

साचार्य्यप्रमुखममप्यसहृदैकप्र मिश्रित्वा यो एव स्मरति स तत्कथयतीत्येवं
 काशिकसुतं पूर्वमतं च किञ्चिदनुसन्धाय घटितम् । यतश्चित्तमधुरापुरि सङ्घ-
 टितम् इयं वाचना 'माधुरी'र्यमिधीयते, सा च तत्कालप्रमप्रधानानां स्कन्धि-
 साचार्याणामभिमतता तैरेव चादर्शता शिष्यबुद्धिं प्रापितेति तदनुयोमः तेषामा-
 चार्याणां सम्बन्धीति व्यपदिश्यते । अपरे पुनरेवमाहुः—न किमपि सुतं बुद्धिस्त-
 वशादनेशत्, किन्तु तावदेव तत्काले भूतमनुवर्तते स्म । केवलमन्ये प्रधाना
 येऽनुयोगधराः ते सर्वेपि बुद्धिस्तकासकवलीकृताः, एक एव स्कन्धिसूरयो विद्य-
 म्ते स्म ततस्तीर्णभिक्षापगमे मधुरापुरि पुनरनुयोमः प्रवर्तित इति वाचना 'माधु-
 रीति' व्यपदिश्यते अनुयोगश्च तेषामाचार्याणामिति " मलयमिरी-वृत्ती ।

उपरोक्त वाचनान्के समयबाबत जैनकाळमप्यनामं निम्न उल्लेख दे—'यह
 वाचना बीरनिवापसे ८९७ और ८४० के बीचमें किसी वर्षमें पुनप्रधान
 आचार्य स्कन्धिसूरिकी प्रमुखतामें मद्युग नमरीमें हुई थी—(पृ १०४)

१ बाळमी वाचना—वल्लभीपुरमें की हुई वाचना बाळमी कहाती है, इसके
 सम्बन्धमें परम्परासे यह मान्यता चली आरही है कि देवर्द्धिगणिके प्रमुखत्वमें
 वल्लभीपुरम जो शास्त्रलेखन हुआ वही बाळमी वाचना है । लोकप्रकाश
 व समाचारी—शतकमें यह पक्ष मिलता है, किन्तु जैनकाळमप्यनामं घोष
 शास्त्र व कथावली आदिके आधारसे नागार्जुनकी बाळमी वाचनाके प्रवर्तक
 माना है । बदाका यह सैख इस प्रकार है—

जिस कालमें मधुरामें आर्य स्कन्धिसने आगमोद्धार करके अपनी वाचना
 दुरु की उसी कालमें वल्लभी नगरीमें नागार्जुनसूरिने भी ममप्यसङ्घ इकट्ठा
 किया और बुद्धिस्तवशा मद्रावदीप आमम सिद्धान्तोंका उद्धार दुरु किया ।
 वाचक नागार्जुन और एकत्रित सङ्घको जो जो आगम और उनकी अनुयोमोंके
 उपरान्त प्रकरण ग्रन्थ दाइ थे वे सिल छिप गय और विस्तृत स्थलोंको पूर्वापर
 सम्बन्धके अनुसार ठीक करके उसके अनुसार वाचना ही गई (पृ ११०)

योग्यप्रकाशका उल्लेख भी इसी प्रकार है, देवर्द्धि-जिनवचनं च इष्यमा-
 कासवशाद्बुद्धिस्तवशाप्रामिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्धिसाचार्यप्रभृतिभिः
 पुस्तकेषु न्यस्तम्—[तृतीय प्रकाश प १०७]

वाचनाओंके इस बिबरणसे यह निष्कर्ष निकलता है कि महावीर
 निर्माणके बाद एक हजार वर्षमें १ वाचनाएँ हुई जिनमें प्रथम वाचनामें अह-
 शास्त्रोंकी सङ्कटना की गई और माधुरी व वालभी वाचनामें द्वादशोंकी सङ्कटना-
 के सिवाय उनका लेखन भी करवाया गया । ये दोनों वाचनाएँ देवर्द्धिसे करीब
 १००-११५ वर्ष पूर्वमें हो चुकी थी ।

बाळमी वाचना जो कि माधुरीक समकालमें हुई है, देवर्द्धिगणिकी

देवद्विगणीका
आगमलेखन

वाचना नहीं किन्तु नागार्जुनकी है क्योंकि देवद्विगणने अपने नन्दीसूत्रमे स्कन्दिलाचार्यका 'अनुयोग-प्रवर्तक' और नागार्जुन आचार्यका 'वाचक' इस विशेषणसे वन्दन किया है। इससे नागार्जुनाचार्य ही वालभी वाचनाके प्रवर्तक सम्भव होते हैं। हां! नागार्जुन और स्कन्दिलाचार्यकी वाचनामे समन्वय करके श्री देवद्विगणने शास्त्रोंको सर्वमान्य एकरूप दिया तथा उन सबको लिपिवद्ध कराये इस दृष्टिसे यदि इनको वाचक कहें तो कह सकते हैं। अन्यथा वाचनाके मुख्य प्रवर्तक स्कन्दिलाचार्य और नागार्जुनही हैं। इस विषयमें 'जैनकालगणना'का उल्लेख इस प्रकार है—

“ स्कन्दिलाचार्यके समयमें वलभीमे मिले हुए सङ्घके प्रमुख आचार्य नागार्जुन थे और उनकी दी हुई वाचना ही वालभी वाचना कहलाती है ”—
[पृ० ११३ टि.]

देवद्विगणिकी अध्यक्षतामें वलभीमें जो श्रमणसङ्घ इकट्ठा हुआ उसमें दोनों वाचनाओंके सिद्धान्तोंका परस्पर समन्वय किया गया, और यथा-शक्य भेद मिटाकर उनको एकरूपमे किये, तथा जो भेद महत्त्वपूर्ण दिखे उनको पाठान्तरके रूपसे टीका-चूर्णियोंमें संगृहीत किये अतएव देवद्विके इस कार्यको आगमलेखन कहते हैं, 'सिद्धान्त पुस्तकीकृत' ऐसी उक्ति भी प्रसिद्ध है। मेरुतुङ्गीया थेरावलीमे इस विषयका निम्न उल्लेख है—'श्रीवीरादनु सप्तविंशतितम पुरुषो देवद्विगणी सिद्धान्तान्-अन्यवच्छेदाय पुस्तकाधिरूढानकार्पात्'। सुबोधिका टीकामें भी इस विषयका एक पद्य है, जैसे—

वलहिपुरम्मि णयरे, देविद्विपमुहसयलसंधेहिं ॥

पुत्थे आगम लिहिओ, नवसय असियाओ वीराओ ॥ १ ॥

उपरोक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि श्री देवद्विगणने वी. नि ९८० के समय वलभीपुरमे आगमलेखन सम्पन्न किया।

जब आचार्य श्रीदेवद्विने आगमका लेखन करवाया है तब आगमोंमें जिनवाणीविरुद्ध भी स्वार्थवश या अज्ञावनवश लिखा गया होगा, ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि आचार्य श्री भवभीरु और ११ अङ्गोंके सिवाय १ पूर्वका ज्ञान रखते थे, जिनवाणीका उच्छेद न होजाय इसी परमार्थबुद्धिसे उन्होंने शास्त्रोंको लिपिवद्ध किये हैं, किन्तु अपनी मान-पूजाके लिये नहीं। इसलिये जहां मतभेदका भी प्रसङ्ग आया तो बहुमतके सिद्धान्तको मुख्य मानकर दूसरेको भी पाठान्तररूपसे रखलिया, जो आगमोंमें आज भी वाचनान्तरके नामसे उपलब्ध है, और उनकी उत्सूत्र-भीरुताका यह खास प्रमाण है। भगवती सूत्रमें वीर निर्वाणसे १००० वर्षतक

पूर्व-ज्ञान रहनेका प्रमाण मिलता है, वेत्तै- जंघुवीवे १ भारेदे वासे इमीसे उस्सपिप्पीय वेवाण्णपिप्याणं एनं वाससहस्सं पुष्पगण अणुसम्मिस्सह — (श. २०, उ ८ सू १७८)

उपरोक्त प्रमाणसे आचार्यश्रीकी पूर्वधारिता सच्ची सिद्ध होती है। पूर्व-ज्ञानके ज्ञाता और मयभीत होनेके कारण आचार्यश्रीके लिये जिनवाणी-विरुद्ध छिन्ननेकी शक्त नहीं हो सकती, आचार्यश्रीकी इस विशेषताको दिखानेवाली कस्पसूत्रकी स्पष्टविरावलीमें एक माथा मिलती है, जो इस प्रकार है—

“सुत्तत्परयणभरिण, जममममइवगुणेहि संपणे ।

वेवाण्णि जमासमणे कासवगुत्ते पणिकयामि ॥ १४ ॥

उपरोक्त माथामें आचार्यश्रीके सूत्रार्थरूप विविध रत्नोंसे पूर्ण और शान्तिममार्गव गुणोंसे सम्पन्न ऐसे दो विशेषण दिये हैं, इससे उनके ज्ञानबल व चारित्रबलका परिचय मिलता है। ज्ञानबलके साथ चारित्र और आत्मार्थिता आचार्यश्रीकी खास विशेषता है।

आचार्यश्रीकी अन्य रचना और शिष्यपरिवार आदिका परिचय नहीं मिलता।

वेदश्रुतिगणकी गुरु और शास्त्राका उपलब्ध सामग्रीके अनुसार हम पहले परिचय करा आये हैं, उसके आचारसे वेदश्रुतिगणकी वेदश्रुतिगणकी शाण्डिल्यके शिष्य सिद्ध होते हैं, ऐसी परिस्थितिमें उनका गुर्वावली श्रीमन्नन्दीसूत्रस्य स्पष्टविरावली नहीं होकर कस्पसूत्रकी स्पष्टविरावली होनी चाहिये क्योंकि नन्दीसूत्रकी स्पष्टविरावलीमें १४ वें मन्वरपर शाण्डिल्यको छिलकर फिर १७ नाम अन्य आचार्योंके लिखे हैं। वेत्तै नन्दीसूत्रकी स्पष्टविरावली—

नन्दीसूत्रस्य स्पष्टविरावली

१ आर्य श्री सुधर्मा	११ आर्य श्री बलिस्सह
२ " " जम्बू	१२ " " स्वाति
३ " " प्रभव	१३ " " इयानार्य
४ " " शान्तिस्सह	१४ " " शाण्डिल्य
५ " " एशोमम्	१५ " " ससुम्
६ " " सम्भूतविजय	१६ " " मङ्गु
७ " " मत्तवाहु	१७ " " धर्म
८ " " स्पृच्छमम्	१८ " " भद्रनुत
९ " " महाभिरि	१९ " " वज्र
१० " " सुहस्ती	२० " " रक्षित

२१ आर्य श्री नन्दिल (आनन्दिल)	२७ आर्य श्री नागार्जुन
२२ " " नागहस्ती	२८ " " श्रीगोविन्द
२३ " " रेवतीनक्षत्र	२९ " " भूतदिन
२४ " " ब्रह्मद्वीपकसिंह	३० " " लौहित्य
२५ " " स्कन्दिलाचार्य	३१ " " दूष्यगणी
२६ " " हिमवन्त	३२ " " देवार्द्धिगणी

अगर यह स्थविरावली देवार्द्धिगणीकी गुर्वावली होती तो शाण्डिल्यके बाद देवार्द्धिगणीका नाम होता, किन्तु यहाँ वैसा नहीं है । कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें शाण्डिल्यका नाम अन्तिम लिखकर फिर देवार्द्धिगणीका नाम लिखा है, इसलिये इसको देवार्द्धिकी गुर्वावली मानना सङ्गत दिखता है, वह इसप्रकार है—

कल्पसूत्रीय स्थविरावली

५ आर्य यशोभद्र	२० आर्य नक्षत्र
६ " सम्भूतिविजय	२१ " रक्ष
७ " स्थूलभद्र	२२ " नाग
८ " सुहस्ती	२३ " जेहिल
९ " सुस्थितसुप्रतिबुद्ध	२४ " विष्णु
१० " इन्द्रदिन	२५ " कालक
११ " दिन	२६ " सम्पलितभद्र
१२ " सिंहगिरि	२७ " वृद्ध
१३ " वज्र	२८ " संघपालित
१४ " श्रीरथ	२९ " श्रीहस्ती
१५ " पुष्यगिरि	३० " धर्म
१६ " फल्गुमित्र	३१ " सिंह
१७ " धनगिरि	३२ " धर्म
१८ " शिवभूति	३३ " शाण्डिल्य
१९ " भद्र	३४ " देवार्द्धिगणी

श्रीनन्दीसूत्र और श्री देवार्द्धिगणीके विषयमे संक्षिप्त परिचय देकर हम प्रस्तुत सूत्रकी विशेषतापर विचार करते हैं । स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती व रायपसेणिय आदि अङ्ग और उपाङ्ग शास्त्रोंमे प्रसङ्गोपात्त ज्ञानका वर्णन मिलता है किन्तु

इसप्रकार विशद रीतिसे पांच ज्ञानोंका एकत्र वर्णन नन्दीसूत्रमेही उपलब्ध होता है, श्रुतनिश्चित मतिज्ञानके अवग्रह आदि भेदोंको प्रतिबोधक व मल्लकके उदाहरणसे समझाना और चार बुद्धिओंका उदाहरणके साथ परिचय देना यह नन्दीसूत्रकी खास विशेषता है । पूर्व-

वर्णित विषयका गायामंत्रिक द्वारा संक्षेपमें उपसंहार कर विज्ञाना यह इस सूत्रकी दूसरी विशेषता है।

नन्दीसूत्रपर प्राकृत संस्कृत हिन्दी गुजराती पेशी चार भाषाओंमें टीकार्ण उपलब्ध हैं। इनमें प्रथम टीका जो वृषि कहाती है, वह जिनबासगणि महत्तरकृत प्राकृत भाषामें है, दूसरी टीका श्रीहरिभद्रसुरिकृत संस्कृतभाषामें है, यह टीका बहुत अच्छी है प्रायः वृषिके आवर्णपर निर्माण की गई मासुम होती है, तीसरी श्रीमलयगिरि टीका है, इसमें श्रीमलयगिरि आचार्यकृत विस्तृत विवेचन है चौथी गुजराती वासावबोध नामकी टीका रा भमपतिविह बहादुरकी तरफसे प्रकाशित है, पाँचमी पूज्यश्री अमोक्त-भाषिजीकृत हिन्दी अनुवाद है। सभी मूलके साथ मुद्रित हैं। वेल्स-नन्दीसूत्रके मुद्रित संस्करणोंका परिचय जो इसी प्रतिमें अभ्यन्त प्रकाशित है।

जब हम नन्दीसूत्रके विषयको अन्य शास्त्रोंमें देखते हैं, तब उनमें कहीं कहीं भेद भी मिलता है, जिसमें कुछ भेद तो विशेषता-शास्त्रान्तरके साथ दर्शक है और कुछ मतभेदसूचक भी। यहाँ हम उनका नन्दीसूत्रका भेद संक्षेपमें विश्लेषण कराते हैं—

१ अवधिज्ञानके विषय संस्थान आभ्यन्तर और बाह्य, तथा देशावधि, सर्वावधि आदि विचार पञ्चवनाके ११ वें पदमें मिलते हैं।

२ मतिसम्पन्नके नामसे वशाश्रुतस्कन्धके षट्ठयं अभ्ययनमें अवग्रह, ईहा अबाय और धारणाके-द्वित्र ग्रहण करना १ एकसाय बहुत ग्रहण करना २ अनेक प्रकारसे और निब्रह्म रूपसे ग्रहण करना ३-४, विना किसीके सहारे तथा सन्वेहरहित ग्रहण करना ५-६ ये छः प्रकार हैं, प्रतिपदाके ६ प्रकार मिलानेसे अवग्रह आदिके १२-१२ भेद होत हैं। ये दोनों भेद विशेषता दर्शक हैं।

३ पाँच ज्ञानमें प्रथमके ३ ज्ञान मिथ्याइहिके लिये मिथ्याज्ञान कहाते हैं। नन्दीसूत्रमें मति-अज्ञान और सुत-अज्ञानका उल्लेख मिलता है किन्तु ममवती आदि शास्त्रोंमें मिथ्याइहिके अवधिज्ञानको भी विषयज्ञान कहा है (श. ८ उ० १)

४ मतिज्ञानका विषय—नन्दीसूत्रमें मतिज्ञानका विषय विज्ञाते हुए कहा है कि मतिज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु वेदता नहीं। परन्तु ममवती सूत्रके श० ८ उ० १ और सू० १०९ में कहा है कि "मति-ज्ञानी सामान्य रूपसे सब द्रव्योंको जानता और वेदता है। उपर्युक्त दोनों उल्लेखोंमें महात् भेद दिखता है, ममवती सूत्रमें टीकाकारने इसको साचना

न्तर माना है, उनका वह उल्लेख इस प्रकार है—“ इदं च सूत्रं नन्द्यामिहैव वाचनान्तरे 'न पासइ' इति पाठान्तरेणाधीतम् ”, दोनों वाचनाओंका टीकाकारने इस प्रकार समन्वय किया है। 'आदेश' पदका 'श्रुत' अर्थ करके श्रुतज्ञानसे उपलब्ध सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है, यह भगवती सूत्रका आशय है। नन्दीसूत्रमें 'न पासइ' कहनेका आशय इस प्रकार है—

आदेशका मतलब है प्रकार, वह सामान्य और विशेष ऐसे दो प्रकारका है, उनमें द्रव्यजाति इस सामान्य प्रकारसे धर्मास्तिकायादि सब द्रव्योंको मतिज्ञानी जानता है और धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकायका देश इस विशेष रूपसे भी जानता है, किन्तु धर्मास्तिकाय आदि सब द्रव्योंको नहीं देखता केवल योग्य देशमें स्थित शब्दरूप आदिको देखता है, देखें—वह टीकाका अंश—“ आदेश-प्रकारः, स च सामान्यतो विशेषतश्च, तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मास्तिकायो धर्मास्तिकायस्य देश इत्यादि न पश्यति सर्वान् धर्मास्तिकायादीन्, शब्दादींस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपीति ”।

श्रुतज्ञान-द्वादशाङ्गीका परिचय समवायाङ्ग सूत्रमें नन्दीसूत्रसे कुछ भिन्न मिलता है। परिशिष्टमें समवायाङ्गका पाठ दिया है, जिसको पढ़कर पाठक सहजमें भिन्न अंशको समझ सकते हैं। उसमें बहुतसा अंश विशिष्टतासूचक है, किन्तु आठवें, नवमें और दशमें अङ्गके परिचयमें जो भेद है वह विशेष विचारणीय है।

आठवें अङ्गके ८ वर्ग और उद्देशनकाल हैं परन्तु समवायाङ्गमें इस अध्ययन, सात वर्ग और १० उद्देशनकाल, समुद्देशनकाल कहे हैं। टीकाकारने इसका समाधान ऐसा किया है—१ प्रथमवर्गकी अपेक्षाही दश अध्ययन घटित होते हैं, १ प्रथमवर्गसे इतरकी अपेक्षा ७ वर्ग होते हैं। उद्देशनकालके लिये लिखते हैं कि—' नास्याभिप्रायमवगच्छामः ' अर्थात् इसका अभिप्राय हम नहीं समझते, सम्भव है यह वाचनान्तरकी दृष्टिसे लिखा गया हो।

नवम अङ्गके तीन वर्ग और तीन उद्देशनकाल हैं, किन्तु समवायाङ्गमें दश अध्ययन, तीन वर्ग और उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल १० लिखे हैं टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि इसके विवेचनमें लिखते हैं कि—' वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते, इत्यतस्त्रय एव उद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति ”—सम.।

अर्थात्-वर्गका एकसाथही उद्देशन होता है इसलिये तीनही उद्देशनकाल होते हैं, और ऐसाही नन्दीसूत्रमें कहा जाता है। यहाँ दश उद्देशनकाल लिखते हैं, किन्तु इसमें अभिप्राय क्या ? वह मालुम नहीं होता।

प्रश्नव्याकरणके ४५ उद्देशनकालके लिये भी टीकाकार श्रीअभयदेवसूरि ' वाचनान्तरकी अपेक्षा ' ऐसा उत्तर देते हैं।

उपरोक्त भेदोंके सिवाय भी जो भेद हो उसके छिये वाचनाभेदको कारण समझना चाहिये ।

मलयगिरि आचार्यने अपनी टीकामें यही कारण दिखाया है, वेत्ते—
 “इह हि स्कन्दिष्ठाचार्य-प्रवृत्तौ इष्यमानुभाषतो इमिक्षप्रवृत्त्या साधुनां पठ
 नगुण्यमादिकं सर्वमप्यनेदत् । ततो इमिक्षातिक्रमे सुमिक्षप्रवृत्तौ इष्योः सङ्गुण्योर्मे
 छापकोऽभवत्, तद्यथा-एको बलम्पामेको मधुरायाम् । तत्र च सूत्रार्थ-सङ्कटने
 परस्परवाचनाभेदो जातः । विस्तृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा सङ्कटने मयत्यवस्य
 वाचनाभेदो न काश्चिदनुपपत्तिः । समयसुन्दर उपाध्यायने अपने समाचारी-
 शतकमें भी लिखा है—

“तर्हि कथमेतावन्तो विस्वाका छिजितास्तेन ! उच्यते-एकं तु कारण
 मिदं यथा १ यस्मिन् २ आगमे घृतावशिष्टसाधुमिर्यद् यदुक्तम् तथा २ तस्मिन्
 २ आगमे श्वेद्वैद्विगणिक्रमाभ्रमप्येनाऽपि पुस्तकाकृतीकृतत्वं, न हि पापभीरवो
 महास्त इव सत्यम् इवं तु असत्यमिति एकान्तेन प्रकथयन्तीति द्वितीयं तु
 कारणमिदं यथा बलभ्यां यस्मिन्काष्ठे देवाऽद्विगणिक्रमाभ्रमप्यतो वाचना प्रवृत्ता
 तथा तस्मिन्नेव काष्ठे मधुरानमर्यामपि स्कन्दिष्ठाचार्यतोऽपि द्वितीया वाचना
 प्रवृत्ता, तथा तत्कालीनघृतावशिष्टछात्रस्यसाधुमुलविमिर्गताऽऽयमाच्छापकेषु सङ्क-
 छनायां विस्तृतत्वादिदोष एव वाचनाविस्वाक्कारको जातः ॥-पृ ८० ।

इमिक्षके वाद वचे हुए साधुओंने जिस २ आयममें बैसा कहा बैसा
 वैद्विगणिक्रम पुस्तकाकृत् करलिया क्योंकि पापभीरु आचार्य यह सत्य यह
 असत्य ऐसा एकान्तसे प्रकथण नहीं करते । दूसरा बलमी और मधुरामें
 एक समय वो वाचनार्थे हुए थी जिसमें घृतावशिष्ट साधुओंके मुलसे निकले
 हुए आच्छापकोंकी सङ्कछनामें विस्तृतरज भादि दोषही वाचनाके विस्वाक्का
 कारण हुआ । उपरोक्त उल्लेखसे वाचनाभेद व मतभेदका कारण स्पष्ट हो
 जाता है, इसछिये शङ्का करनेकी आवश्यकता नहीं रहती ।

इसका परिचय प्रबन्धकक दो शब्दके अन्तमें वे जीने कराया है,
 अतः उसके पुनरावर्तन करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं
 प्रस्तुत संस्करण
 और सूचना
 रहती । किञ्च यह मालूम कर देना आवश्यक है कि
 प्रस्तुत सूत्रका अनुवाद मलयगिरि और हारिमन्त्रीय
 बुक्तिके आधारसे किया है । अतः स्वविरावलीके भी
 अनुवादमें सुकरिष्यका सम्बन्ध उसके अनुसारही लिखा गया है । ३१-३२
 भादि गाथाओंका शेषकत्व भी उही दृष्टिसे लिखा था, किन्तु उपलब्ध
 सामग्रीसे इनको शेषक माननेकी बात अमपूर्व बिलती है, जिसका प्रस्तावनामें
 पहले विवेचन कर आये हैं ।

पुस्तक-मुद्रणके कार्यमें स्थानान्तरसे ग्रन्थसंग्रह, सम्मत्यर्थ पत्र-प्रेषण, प्रूफ-संशोधन व सम्मतिप्रदान आदि प्रापञ्चिक कार्य विज्ञप्ति करने या कराने पडते हैं। इस बातको जानते हुए भी मैंने जो आगमसेवाके लिये इस अंशतः सद्गोप कार्यको अपवादरूपसे किया है उसका उद्देश निम्नप्रकार है—

१ साधुमार्गीय (स्था०) समाजमें विशिष्टतर साहित्यका निर्माण हो।

२ मूल आगमोके अन्वेषणपूर्ण, शुद्ध संस्करणकी पूर्ति हो और समाजको अन्य विद्वान् मुनिवरभी इस दिशामें आगे लावें।

३ सूत्रार्थका शुद्ध पाठ पढकर जनता ज्ञानातिचारसे बचे।

तीनोंमेंसे यदि एक भी उद्देश सिद्ध हुवा तो मैं अपने दोषोंका प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ समझूंगा। प्रस्तुत कार्यमें सर्वथा श्रीउपाध्यायजी म० का उपकार नहीं भूल सकता। आपने समय २ पर पूछे गए प्रश्नोंका समाधान करनेके सिवाय अवकाश कम होते हुए भी हमारे आग्रहसे नन्दीसूत्रपर भूमिका लिखनेकी कृपा की है, जिससे इस संस्करणकी विशेषता बढ जाती है। यद्यपि प्रस्तुत संस्करणकी सच्ची उपादेयता पाठकोंकी परीक्षाबुद्धि ही कहेगी, तथापि हमे इतना विश्वास है कि यह संस्करण पूर्वकी अपेक्षा अपनी कुछ विशिष्टता सिद्ध करेगा। इस सबका श्रेय मेरे सहायक मुनिवर व ज्ञानप्रेमी गृहस्थोको है जिनके सहायसे कि आज मैं इस कार्यको पूर्ण कर सका हूँ।

प्रयत्न और इच्छाके प्रबल होते हुए भी मुद्रणकी शीघ्रता तथा विहार आदि कारणोंसे इसमें कुछ त्रुटियाँ होना सम्भव है। विद्वान् मुनिवर एवं तज्ज्ञोंसे निवेदन है कि वे त्रुटियोंको संशोधन कर हमें भी सूचित करें।

अन्तमें अल्पज्ञता व प्रमादके कारण जो सर्वज्ञवाणीविरुद्ध लिखा गया हो उसके लिये जिनदेवसे क्षमा चाहता हुआ पश्चात्ताप करता हूँ। और नन्दीसूत्रके शुद्धपाठसे पाठक सम्यग्ज्ञानमय बने इसी आशाके साथ विराम करता हूँ।

ॐ शान्तिः

वीर सं १४६८ }
माघ कृ १ रवौ }

मुनिहस्तीमल्ल

धोरी जि० पूना

श्रीनन्दीसूत्रकी विषयानुक्रमणिका



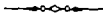
गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
गा १ से ३	श्रीवीरस्तुति	१-२
गा. ४ से १९ तक	नगर, चक्र, रथ, कमल, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और सुमेरुकी- उपमासे सघकी स्तुति	२-७
गा २० से २१ तक	अर्हदाव्यावलिका .. .	८
गा २२ से २३ तक	गणधरावली	८-९
गा २४	जिनशासनस्तुति	९
गा २५ से ४९	स्थविरावली	९-१८
छन्द— १	अनुवादकका मङ्गलाचरण	१९
	शैलसे आभीरीतक श्रोताओंके १४ दृष्टान्त .	१९-२३
गा. ५२से५४ तक	तीन प्रकारकी सभा-ज्ञायिका, अज्ञायिका और दुर्विदग्धा	२३-२४
सू १	ज्ञानके पांच भेद	२५
सू २ से ४ तक	ज्ञानके प्रत्यक्ष परोक्ष ये दो भेद .. .	२५-२६
सू ५	नोइन्द्रिय-प्रत्यक्षके ३ भेद . . .	२६
सू ६	अवधिज्ञानके दो भेद .. .	२६
सू ७ से ८ तक	भवप्रत्ययिक व क्षायोपशामिक इन दोनों अवधिज्ञानका वर्णन	२६-२७
सू ९	अवधिज्ञानके आनुगामिक आदि छह भेद ...	२७
सू. १०	अनानुगामिक अवधिज्ञानके अन्तगत व मध्यगत भेद..	२७-३०
सू ११	अनानुगामिक अवधिज्ञानका वर्णन	३१
सू. १२ गा. ५५ से ६२ तक	वर्द्धमान अवधिज्ञानका वर्णन	३१-३५
सू १३ से १५ तक	हीयमान, प्रतिपाति, अप्रतिपाति अवाधिज्ञानका वर्णन...	३५-३७
सू १६ गा ६३ से ६४ तक	अवधिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र आदि ४ भेद और भवप्रत्ययिक आदिका वर्णन	३७-३९
सू १७ से १८ तक	मनःपर्यवज्ञान और उसके अधिकारी	३९-४७
सू १९ से २३ तक	केवलज्ञान उसका ज्ञेय और उसके अधिकारी सिद्धोंका वर्णन .. .	४७-५१
सू २४	परोक्षज्ञानके मति, श्रुतरूप प्रकार	५२
सू २५	मतिज्ञान व मतिअज्ञान, श्रुतज्ञान व श्रुतअज्ञान ...	५३
सू २६ गा ६८।६९	आभिनिबोधिक ज्ञानके भेद व बुद्धिके चार प्रकार .	५३
गा ७० से ८१ तक	औत्पत्तिकी आदि चार बुद्धिओंके भरतशिला आदि कथा- ओंके साथ उदाहरण . . .	५३-९१

पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
सू. २६	श्रुतनिमित्त मतिज्ञानके प्रकार	११-१२
सू. २७	अवयवके भेद ..	१२
सू. २८	व्यवहारवयवके भेद	१२
सू. २९	अवयववयवके भेद ..	१२-१३
सू. ३०	अवयवके पाँच नाम ...	१३
सू. ३१	ईहाके भेद और पाँच नाम	१३-१४
सू. ३२	अवयवज्ञानका भेद	१४-१५
सू. ३३	धारणाके भेद व पाँच नाम ..	१५
सू. ३४	अवयव, ईहा अवयव और धारणाका कालक्रम	१६
सू. ३५	२८ प्रकारके आग्निबिबोधिकज्ञानकी प्रतिबोधक व महत्त्व दृष्टान्तसे प्रकल्पना ..	१६-१७
सू. ३६	पा. ८७ तक मतिज्ञानका विषय व उपसंज्ञा ..	१७-१८
सू. ३७	श्रुतज्ञानके अक्षरश्रुत आदि १४ भेद	१८
सू. ३८	पा. ८८ तक अक्षरश्रुत व अनक्षरश्रुतका वर्णन ..	१८-१९
सू. ३९	संक्षिप्तश्रुत व अतीक्षिप्तश्रुतका वर्णन	१९-२०
सू. ४०	सम्पद-श्रुतका वर्णन	२०-२१
सू. ४१	मिथ्याश्रुतका वर्णन	२१-२११
सू. ४२	साहि अनाहि उपर्यवसित व अपर्यवसित श्रुतका वर्णन	२११-२१२
सू. ४३	धर्मिक अगमिक अद्वयविद् अद्वयवाप्य श्रुतोंका वर्णन	२१२-२१४
सू. ४४	अद्वयविद् श्रुतके अन्वय आदि दृष्टिवाचक १२ भेद	२१
सू. ४५	अवयवज्ञान श्रुतका परिचय	२१-२२
सू. ४६	श्रुतज्ञानका परिचय ...	२२-२२२
सू. ४७	व्ययानका परिचय	२२२-२२४
सू. ४८	समवायिका परिचय ..	२२४-२२६
सू. ४९	व्याख्यापरिचयिका परिचय ..	२२६-२२८
सू. ५०	ज्ञानावर्णकश्रुतका परिचय ..	२२८-२३०
सू. ५१	अपस्तम्बश्रुतका परिचय ..	२३०-२३२
सू. ५२	अन्यश्रुतश्रुतका परिचय ..	२३२-२३४
सू. ५३	अनुचरीयवातिकश्रुतका परिचय ..	२३४-२३६
सू. ५४	अवयवकारण श्रुतका परिचय	२३६-२३८
सू. ५५	विपाकश्रुतका परिचय ...	२३८-२४१
सू. ५६	दृष्टिवाद् अज्ञका परिचय ...	२४१
सू. ५७	परिकल्पके सात भेद और उनके वर्णन ..	२४१-२४५
सू. ५८	दृष्टिवाद्के रूपरूप भेदका वर्णन	२४५-२४७
सू. ५९	पा. ८९ से ११ तक पूर्णत दृष्टिवाद्का विचार ..	२४७-२५०

गाथा व सूत्राङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
श्रु. ५७	अनुयोगका विचार	१५१-१५३
श्रु. "	चूलिकाका विचार ..	१५३
श्रु. "	दृष्टिवादका उपसंहार	१५३-१५४
श्रु. "	द्वादशाङ्गीकी आराधनाका फल एव द्वादशाङ्गीकी नित्यता	१५५-१५८
गा ९३ से ९७ तक	अनुयोग श्रवण व प्रदानकी विधि ...	१५८-१६०
	टीकाकारकी मङ्गलकामनाका १ श्लोक	१६०

इति समाप्ता ।

पूज्यश्रीहस्तिमल्लजिन्महाराजाना सन्निधौ सविनय निवेदनम्—



प्रथमं तर्तीय कर्तव्यकथनम्—

मेधामन्धानकेनाऽभिहितमिनगभीगव्यमभ्यग्रचेता ।
ग्रन्थेऽप्रे चिन्त्ने चित्तसगुणनिर्भरुद्यमैरभ्यमग्रात् ॥
यत्नादुन्नीतवान् सत्सुमत्तिसमुदये हारि हैयङ्गन्वीनं ।
पूज्यः श्रीहस्तिमल्लो मुनिरुपहरते नन्दिसूत्रं नवीनम् ॥ १ ॥

तदनु तत्सगुणवर्षने मीनोपक्रमः—

दीप देदीप्यमाने तिरयति तिमिरे चाकिते द्योतकं चेत ।
कोऽपि श्रूयाच्छीर्यं गुणमुपहसितः स्यात्समेयैः स नूनम् ॥
पूज्ये श्रीहस्तिमल्ले मुनिगुणमहिते कीर्तिचित्तेऽभिधेये ।
मौनं स्यात्तु मन्नास्ति प्रवचनमनसं मां निरुक्तो विमर्शः ॥२॥

अथापि भवान्—

चिरञ्जीवस्तु भीषातुभूतस्तीर्षानि संनयन् ।
वृत्तिं परिहरन् यत्नादुपकोशमस्त्रीमसाम् ॥ ३ ॥
हस्तं प्रशस्तं मिनन्नासनस्यो,—मृतौ सदा सङ्गन्मयन्नप्यम् ।
दयोदयं दीनजने विमर्तुं निजाऽन्यतन्त्राऽपरतन्त्रभाषम् ॥ ४ ॥

—चिरानुपरस्य कस्यपिठ—

श्रीमन्नन्दीसूत्रम्



अथ देवर्द्धिगणिविरचिताऽर्हदायावलिका—

मङ्गलार्थं अर्हत्स्तुति

मूल—जयइ जगजीवजोणी,—वियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।

जगणाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥ १ ॥

छाया—जयति जगजीव—योनि—विज्ञायको जगद्गुरुर्जगदानन्दः ।

जगन्नाथो जगद्धन्धुर्जयति जगत्पितामहो भगवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ—(जयइ) जयवन्त हैं, (जग) पञ्चास्तिकायात्मकलोकवर्ती (जीवजोणी) जीवोकी उत्पत्तिके स्थानको, (वियाणओ) जाननेवाले, (जगगुरु) जगद्गुरु, (जगाणंदो) जगतको आनन्द देनेवाले, (जगणाहो) चराचर जगतके नाथ, (जगबंधू) प्राणिमात्रके बन्धु, (जगप्पियामहो) जगतके पितामह याने प्राणिओंकी आत्मिक रक्षा करनेसे धर्म जगतका पिता है और आप उस धर्मके भी उत्पादक हैं, अतः जगतके पितामह हैं, (भयवं) भगवान्—समग्र ज्ञानादि ऐश्वर्ययुक्त हैं, अत एव (जयइ) जयवन्त है ॥ १ ॥

श्रीवीरस्तुति

मूल—जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।

जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥ २ ॥

छाया—जयति श्रुतानां प्रभवः, तीर्थकराणामपश्चिमो जयति ।

जयति गुरुलोकानां, जयति महात्मा महावीरः ॥ २ ॥

शब्दार्थ—(जयइ) जयवन्त हैं, (सुआणं) श्रुतज्ञान याने द्वादशाङ्गरूप वर्तमान शास्त्रके (पभवो) उत्पत्ति कारण, अर्थात् निर्माण करनेवाले, (तित्थयराणं) तीर्थङ्करोंमें (अपच्छिमो) अपश्चिम याने अवसर्पिणीकालके २४ तीर्थङ्करोमे अन्तिम, (गुरु लोगाणं) [निरीहभावसे संसारको तत्त्वका उपदेश करनेसे] लोकके गुरु (जयइ) जयवन्त हैं, (महप्पा) महात्मा (महावीरो) महावीर (जयइ) सर्वोत्कृष्ट है ॥ २ ॥

मूल—मर्द्धं सध्वजगुञ्जोयगस्त, मर्द्धं जिणस्त वीरस्त ।

मर्द्धं सुरासुरनर्मसियस्त, मर्द्धं धूपरयस्त ॥ ३ ॥

छाया—मर्द्धं सर्वजगदुद्योतकस्य, मर्द्धं जिनस्य वीरस्य ।

मर्द्धं सुरासुरनमस्वितस्य, मर्द्धं धूतरजस* ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—(सध्वजगुञ्जोयगस्त) सध्व अगतमे उद्योतकारक, याने चरा चर जमतके मकाशकका, (मर्द्धं) कस्याप्य हो, (जिणस्त) वीतराज—रामद्वेष एहित (वीरस्त) श्री महावीरका, (मर्द्धं) मर्द्ध हो, (सुरासुर नर्मसियस्त) वेवपानबोसे बंधितका, (धूपरयस्त) कर्मरजको हटानेवासेका (मर्द्धं) मर्द्ध हो ॥ ३ ॥

गुणोंके आधार होनेसे संबंधकी स्मृति करते हैं—

श्रीसंघस्तुति

मूल—गुण—मघण—गह्वणसुय—रयण,—मरियवंसण—विसुद्धं—रत्थागा ।

सघनगर ! मर्द्धं ते, असंख—चारित्त—पागारा ॥ ४ ॥

छाया—गुणमघनगहन—भूतरत्नमृत—दर्शनविद्युत्तरभ्याक ! ।

सघनगर ! मर्द्धं ते, अखण्डचारित्रप्रकार ! ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—(गुणमघनगहन) जो अक्षर गुणरूप भक्तोंसे महान, (सुय रयणमरिय) तथा भूतरत्नोंसे भराहुआ, (वंसणविसुद्धरत्थागा) व सम्यक् वर्तनरूप निर्मल मार्गवाला याने निर्मल भद्राकूप गलीवाला है, (असंखचारित्त पागारा) एवं अखण्ड चारित्ररूप प्रकार याने कोठवाला, (संघनगर) हे संघ नगर ! (ते) तेरा, (मर्द्धं) मर्द्ध हो ॥ ४ ॥

मूल—संजमतवर्तुंवारयस्त, नमो सम्मत्तपारियहंस्त ।

अप्यञ्चिचक्रस्त जओ, होउ सया संघचक्रस्त ॥ ५ ॥

छाया—संपमतपस्तुम्भारकस्य(काय), नम* सम्यक्त्वपारियहंाय ।

अप्रतिचक्रस्य जयो, मवतु सदा संघचक्रस्य ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—(संजमतवर्तुंवारयस्त) संयम और तपकरतुंज—नामि याने चाकके मध्यभाग व आरे—चारों तरफकी सक्रियोंसे युक्त (सम्मत्तपारिय हंस्त) सम्यक्त्वमय परिकर याने चाकके ऊपरी भागवाले, तथा (अप्यञ्चिचक्रस्त) प्रतिचक्ररहित अर्थात् जिसके बिरोधी पक्ष नहीं है ऐसे (संघचक्रस्त) संघचक्रको (नमो) नमस्कार हो, और (सया) सदा (जओ) उसकी जय (होउ) हो ॥ ५ ॥

१ विद्युत्—इति हस्ताभिक्रिये पठ्यः । २ अणुत्पत्त्यात्तुर्प्येवं क्यौ । ३ पारिक्रम—इति वैश्वे कस्या परिक्रम—इत्यर्थः ।

अब संघको रथकी उपमासे कहते हैं—

मूल—भद्रं शीलपडागूसियस्स, तवनियमतुरयजुत्तस्स ।

संघरहस्स भगवओ, सज्झायसुनंदिघोसस्स ॥ ६ ॥

छाया—भद्रं शीलपताकोच्छ्रितस्यं, तपोनियमतुरगयुक्तस्य ।

संघरथस्य भगवतः, स्वाध्यायसुनन्दिघोषस्य ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—(तवनियमतुरयजुत्तस्स) जो संघरथ तपनियमरूप घोड़ोंसे युक्त है, (शीलपडागूसियस्स) जो शीलरूप पताकासे ऊचा है, (सज्झायसुनंदिघोसस्स) तथा जो संघरथ पंचविधस्वाध्यायरूपनन्दिघोष—माङ्गलिक ध्वनिघाला है, ऐसे (भगवओ) ऐश्वर्ययुक्त, (संघरहस्स) संघरूप रथका (भद्रं) भद्र हो ॥ ६ ॥

कामभोगसे अलित रहनेके कारणसे संघको कमलकी उपमा दी जाती है—

मूल—कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स, सुयरयणदीहनालस्स ।

पंचमहव्वयथिरकणियस्स, गुणकेसरालस्स ॥ ७ ॥

छाया—कर्मरजो—जलौघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्नदीर्घनालस्य ।

पञ्चमहाव्रतस्थिरकर्णिकस्य, गुणकेसरवतः ॥ ७ ॥

मूल—सावगजणमहुअरिपरिवुडस्स, जिणसूरतेयबुद्धस्स ।

संघपउमस्स भद्रं, समणगणसहस्सपत्तस्स ॥ ८ ॥

छाया—श्रावकजनमधुकरीपरिवृतस्य, जिनसूर्यतेजोबुद्धस्य ।

संघपद्मस्य भद्रं, श्रमणगणसहस्रपत्रस्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थ— जैसे पद्म—कमल पानीसे ऊपर उठाहुआ, लम्बी नाल और स्थिर कर्णिकावाला होता है, तथा सुगन्धित पीत परागके कारण भ्रमर-समूहसे सेवित रहता है, सूर्यकिरणसे विकसित होता व हजारपत्रवालाभी होता है वैसे—(कम्मरयजलोहविणिग्गयस्स) जो संघ कर्मरूपरज व जलप्रवाहसे बाहर निकला हुआ है अर्थात् निर्लेप है, तथा (सुयरयणदीहनालस्स) श्रुत-शास्त्ररत्नमय दीर्घ—लम्बी नाल—ढेड़वाला व (पंचमहव्वयथिरकणियस्स) पांच महाव्रतही जिसकी स्थिर कर्णिकाएँ हैं, (गुणकेसरालस्स) उत्तरगुण—क्षमा आर्जव आदि जिसके पराग—केसर हैं तथा (सावगजण-

१ प्राकृतत्वात् निष्ठान्तोच्छ्रितपदस्य परनिपात ।

२ कुछ समयके लिये इच्छाओंको रोकना तप है और आजीवन इच्छानिरोध करना नियम है ॥

मह्यहरि-परिवृष्टस्त) भावकजनरूप धर्मरोंसे सेवित या धिराहुआ व-
(जिणसुर तेय बुद्धस्त) भावसूर्य-तीर्थहरके केवलज्ञानरूप तेजसे प्रवीध पाप
हुय अर्थात् विकाश पाप हुय, और (समपगण्य सहस्रपत्तस्त) अमज-साधु
समूहकूप हमारपत्र-पाँस्रबीवाले उस (संघपउमस्त) संघपद्धका (भई)
भद्र हो ॥ ७-८ ॥

फिर सौम्यगुणसे चन्द्रके रूपकद्वारा संघकी स्तुति करते हैं—

मूल—तवसंजममयलंछण, अकिरियराहुमुहदुद्धरिस निव ।

जय संघचंद् निम्मल,—सम्मत्तविसुद्धजोणहागा ॥ ९ ॥

छाया—तपसंयमसुगलाञ्छन !, अकिरियराहुमुहदुर्धुप्य ! नित्यम् ।

जय संघचन्द्र ! निर्मल,—सम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक ! ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—(तव संजम मय लंछण) हे तपप्रधान संयमरूप मृग
लाञ्छनवाले ! (अकिरियराहुमुह-दुद्धरिस) नास्तिक वाक्कूप राहुके मुखसे
दुर्धुप्य नहीं धरने योग्य, तथा (निम्मल सम्मत विसुद्धजोणहागा) निर्दोष
सम्यक्स्वरूप विशुद्ध चाँवनीवाले (संघचंद्) हे संघचन्द्र ! आप (निर्मल) सदा
(जय) अव्यक्त हीं ॥ ९ ॥

प्रकाशमय होनेसे फिर संघकी सूर्यकी उपमा देते हैं—

मूल—परतित्थियगहपहनासगस्स, तवतेपवित्तलेसस्स ।

नाणुज्जीपस्स अप्प, भद्दं वमसंघसूरस्स ॥ १० ॥

छाया—परतीर्थिकग्रहप्रमानाशकस्य, तपस्तेजोवीतलेश्यस्य ।

ज्ञानोद्योतस्य जगति, भद्रं वमसंघसूरस्य ॥ १० ॥

शब्दार्थ—(परतित्थिय महपहनासगस्स) परतीर्थिकरूप ग्रहोंकी प्रभाकी
मह-मन्व करनेवाले (तवतेपवित्तलेसस्स) तपस्तेजरूप चमकती कान्तिवाले
तथा (नाणुज्जीपस्स) ज्ञानरूप प्रकाशवाले, येसे (वमसंघसूरस्स) उपशान्त
प्रधान संघसूर्यका (जय) जगतमें (भई) भद्र हो ॥ १० ॥

मन्मीरताकूप गुणसे अब संघको समुद्रकी उपमा देते हैं—

मूल—भद्दं चिद्द्वेलापरिगपस्स, सज्जायजोगमगरस्स ।

अक्खोहस्स मगवओ, संघसमुद्धस्स रुद्धस्स ॥ ११ ॥

छाया—भद्रं धुतिवेलापरिगतस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य ।

अक्षोम्यस्य मगवत, संघसमुद्रस्य रुद्धस्य ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—(धिद्वेला परिगयस्स) धैर्य-मूलोत्तरगुणमें उत्साहरूप आत्मपरिणाम ही जिस समुद्रकी वेला याने वृद्धिकी चरमसीमा है, (सज्झाय जोगमगरस्स) स्वाध्यायकी प्रवृत्तिरूप मकर-ग्राहवाले, व (अक्खोहस्स) उपसर्ग आदिसे क्षुब्ध नहीं होनेवाले ऐसे (भगवओ) भगवान् (रुंदस्य) परमविशाल (संघसमुद्दस्स) श्रीसंघरूप समुद्रका (भद्दं) भद्र हो ॥ ११ ॥

अब शाश्वत व अतिशय उच्च होनेके कारण छ गाथाओंसे संघको मेरुकी उपमासे उपमित करते हैं—

मूल—सम्मद्दंसणवरवइर,—दृढरूढगाढावगाढपेढस्स ।

धम्मवररयणमंडिय,—चामीयरमेहलागस्स ॥ १२ ॥

नियमूसियकणय,—सिलायलुज्जलजलंतचित्तकूडस्स ।

नंदणवणमणहरसुरभि,—सीलगंधुद्धुमायस्स ॥ १३ ॥

जीवदया-सुंदर-कंदरुद्धरिय,—मुणिवरमइंदइन्नस्स ।

हेउसयधाउपगलंत,—रयणदित्तोसहिगुहस्स ॥ १४ ॥

संवरवरजलपगलिय,—उज्झरप्पविरायमाणहारस्स ।

सावगजणपउररवंत,—मोरनच्चंतकुहरस्स ॥ १५ ॥

विणयनय-प्पवरमुणिवर,—फुरंतविज्जुज्जलंतसिहरस्स ।

विविहगुणकप्परुक्खग,—फलभरकुसुमाउलवणस्स ॥ १६ ॥

नाणवररयणदिप्पंत,—कंतवेरुलियविमलचूलस्स ।

वंदामि विणयपणओ, संघमहामंदरगिरिस्स ॥ १७ ॥

छाया—सम्यग्दर्शनवरवज्रदृढरूढगाढावगाढपीठस्य ।

धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकस्य ॥ १२ ॥

नियमकनकशिलातलोच्छ्रितोज्ज्वलज्वलच्चित्रकूटस्य ।

नन्दनवनमनोहरसुरभिशीलगन्धोद्धुमार्यस्य ॥ १३ ॥

जीवदयासुन्दरकन्दरोद्धृत्तमुनिवरमृगेन्द्राकीर्णस्य ।

हेतुशतधातुप्रगलद्रत्नदीप्तौषधिगुहस्य ॥ १४ ॥

संवरवरजलप्रगलितोज्झरप्रविराजमानहा(धा)रस्य ।

श्रावकजनप्रचुररवन्तृत्पन्मयूरकुहरस्य ॥ १५ ॥

विनयनयप्रवरमुनिवरस्फुरद्विद्युज्ज्वलच्छिस्तरस्य ।

विविधगुणकल्पवृक्षकफलमरकुसुमाकुलवनस्य ॥ १६ ॥

ज्ञानवररत्नदीप्यमानकान्तघैतूयविमलचूडस्य ।

घन्टे विनयप्रपत*, संघमहामन्वरगिरिम्बरे*) ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—(सम्मर्द्धस्य वर वर वृक्षकट गाढावगाढ पैडस्य) जिस संघरूप मेरुकी सम्मर्द्धदर्शनरूप उत्तम वज्रमय इड तथा बहुत कालसे रोपी हुई और बहुत गहरी मूपीठ-आधारदिखा है, (घम्मबर रयण मंडिय चामीयर मेहलामस्स) मुत्त चारित्रधर्मरूप उत्तम रत्नोंसे मण्डित व सुवर्णमय पेदी जिस संघमेरुकी मेखला है, (नियमूसिय कजय सिंहायलुज्जल जर्हत चित्तकुडस्य) इन्द्रियमिग्रह आवि नियमरूप सानकी शिक्षाओंके ठठपर निर्मल और मास्वर चित्तही संघमेरुके उरुच कूट हैं, (नदय्यकण मणहर सुरमिसीळ मंडुसुमायस्स) तथा सन्तोषरूप मन्वमवनकी मनोहर और सुयन्धिपुक्त शीलमय सुवाससे जो भरा है, अर्थात् सुमेरुकी सुवर्णमयी शिखापर ऊंचे २ उरुजडल व चमकनेवाले अनेक विचित्र शिखर हैं। इधर संघमेरुकी नियमरूप सुवर्ण शिखापर उदासविचार-बन्धमान चित्त-ही निर्मल तथा सुप्रार्थकी चिरस्मृतिसे वेदीप्यमान शिखर है, मेरु मन्वमवनके सुवाससे पूर्व है तो संघमेरु सन्तोषरूप मनोहर मन्वमवनकी सदाचारणमय सुमण्डिसे भरा हुआ है, इस प्रकार संघमेरु सुमेरु पर्वतकी तुलना करता है ॥ १२-१३ ॥

(जीवदया सुंवर कठहरिय सुणिवर मर्द्ध इडस्य) जीवदयारूप सुन्वर कन्वरामें वर्षयुक्त-कर्मशुभोंके प्रति व कुमत्तवालोंके प्रति वाइलविषसे बलिड पेसे सुनिवर ही जहाँ सुगेम्भ-सिंह हैं उनसे पूर्व, तथा (हेउसयधाउ पमसंत रयण चित्तोसद्वियुडस्य) सैकड़ों हेतुके भाट और ज्ञायोपशमिकभाबसे गिरते हुए सुमविचाररूप रत्नोंसे कीत व आत्मर्षीयपी आवि औपधीसे ध्यास ध्याड्यानशाखावाला संघमेरु है, और सुमेरु औपधीसे ध्यास मुहावाला है। [दोनोंकी अच्छी तरह तुलना करके लिये पाठक अपनी बुद्धिसे काम लें] ॥ १४ ॥

(संवरवर जल पमडिय उण्हरप्यविरायमाण हारस्स) पाँच आसनोंका निरोधरूप उत्तम संवरही कर्ममल प्रकालनके लिये जिस संघमेरुमें जल है, तथा बहती हुई प्रहम आवि विचारोंकी धारा-प्रवाहही जिसके शोभायमान द्वार है, (सावयणय पजर रयंत मोर नर्घत कुडहरस्स) और बहुतसी स्तुति बीछनेवाले आकडजनरूप मयूरोंसे भानो संघमेरुके कुहर-कन्वरा ध्याड्यानशाखा-जाकरहे हैं ॥ १५ ॥

तथा—(विणयनय पवर मुणिवर फुरंत विज्जुज्जलंत सिहरस्स) विनयसे नम्र प्रवर मुनिराजही चमकती हुई विद्युलता है उन विद्युतरूप मुनिवरोंसे वह संघमेरु देदीप्यमान शिखरवाला है, (विविह गुणकप्परुक्खग फलभर कुसुमा-उलवणस्स) तथा अनेक गुणयुक्त मुनिराजही जहाँ परमानन्दकारी धर्मफल-के प्रदानसे कल्पवृक्ष हैं, उन कल्पवृक्षोंके समाधिसुख आदि फलभार व अनेक प्रकारकी अतिशय-विशेषताएँ रूप कुसुमोंसे पूर्ण बनवाला याने साधुसमूहवाला संघमेरु है ॥ १६ ॥

फिर—(नाणवर रयणदिपंत कंत वेरुलिय विमलचूलस्स) उत्तम ज्ञान-रूप रत्नोंसे देदीप्यमान कान्त-मनोहर और विमल वैदूर्यमय चूडावाले ऐसे (संघमहामंदरगिरिस्स) इस संघरूप सुमेरुगिरिके [माहात्म्यको] (विणयपणओ) विनयसे विनम्र हुआ मैं (वंदामि) वंदन करता हूँ ॥ १७ ॥

मूल—गुणरयणुज्जलकडयं, शीलसुगंधितवमंडिउद्देशं ।

सुयवारसंगसिहरं, संघमहामन्दरं वंदे ॥ १८ ॥

छाया—गुणरत्नोज्ज्वलकटकं, शीलसुगन्धितपोमण्डितोद्देशं ।

श्रुतद्वादशाङ्गशिखरं, संघमहामन्दरं वन्दे ॥ १८ ॥

फिर मेरुकी कुछ बची हुई विशेषताओंको लेकर आचार्य संघको वन्दना करते हैं—

शब्दार्थ—(गुणरयणुज्जलकडयं) प्रशस्त गुणरूप उज्वल रत्नमय कटक-मध्यभागवाले, (शीलसुगंधितवमंडिउद्देशं) तथा शीलसे सुवासित व तपसे मण्डित उद्देश-पार्श्वभूमिवाले, (सुयवारसंगसिहरं) वारह अङ्गमय श्रुतही जिसके शिखर हैं, उस (संघमहामंदरं) संघरूप विशाल सुमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूँ ॥ १८ ॥

मूल—नगर-रहचक्र-पउमे, चंदे सूरै समुद्दे मेरुम्मि ।

जो उवमिज्जइ सययं, तं संघगुणायरं वंदे ॥ १९ ॥

छाया—नगररथचक्रपद्मे, चन्द्रे सूरै समुद्दे मेरौ ।

य उपमीयते सततं, तं संघगुणाकरं वन्दे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—(नगर रह चक्र पउमे-) नगर, रथ, चक्र, पद्म तथा (चंदे सूरै) चन्द्र व सूर्यके विषयमें और (समुद्देमेरुम्मि) समुद्र व मेरुमें (जो) जो संघ (सययं) सदा (उवमिज्जइ) उपमित किया जाता है, (गुणायरं) गुणोंके आकर (तं) उस संघमेरुको (वंदे) वन्दन करता हूँ ॥ १९ ॥

संघकी स्तुति करके अब आथलीरूपसे तीर्थद्वारोंकी स्तुति करते हैं—

श्रीशैवीसनिनस्तुति

मूल—(वंदे) उत्तमं अजिर्यं संभव, -मभिनन्दणं सुमहं सुप्यमं सुपास ।

ससि पुष्कदंत सीयल, सिज्जसं वासुपुज्ज च ॥ २० ॥

छाया—ऋषममजित सम्भव, -मभिनन्दनसुमतिसुप्रमसुपार्श्वम् ।

शशिपुष्पदन्तशीतल, -भेयांसं वासुपुज्यञ्च ॥ २० ॥

दाशार्थ—(उत्तमं) ऋषमवेवस्वामीको, (अजिर्यं) अमितनाथजीको, (संभवं) सम्भवनाथजीको, (अभिनन्दणं सुमहं सुप्यमसुपासं) अभिनन्दनजी सुमतिजी सुप्रम अर्थात् पहमप्रमजी और सुपार्श्वनाथजीको, (ससि पुष्कदंत सीयल विज्जसं) चन्द्रममजी, पुष्पदन्तजी याने सुविधिजी, शीतलनाथजी भेयांसनाथजी (च) और (वासुपुज्जं) वासुपुज्यजीको नमन करता हूँ ॥ २० ॥

मूल—विमलमणंत य धम्मं, संतिं कुंभुं अरं च मल्लिं च ।

मुनिसुभ्यय नमि नेमिं, पास तद्द वद्धमाणं च ॥ २१ ॥

छाया—विमलमनन्त च धर्मं, शान्तिं कुंभुमर च मल्लिं च ।

मुनिसुप्रतनमिनेमिं, पार्श्वं तथा वद्धमाणं च ॥ २१ ॥

दाशार्थ—(विमलं) विमलनाथजी, (अर्णतं) अनन्तनाथजी, (य) और (धम्मं) धर्मनाथजी (संतिं) शान्तिनाथजी (कुंभुं) कुम्भुनाथजी (च) और (अरं) अरनाथजी, (मल्लिं) मल्लिनाथजी (च) और (मुनिसुभ्ययनमि नेमिं) मुनिसुप्रतनाथजी नमिनाथजी य नेमिनाथजीको (तद्द) तथा (पार्श्वं) पार्श्वनाथजी (च) और (वद्धमाणं) वद्धमाण-महावीर स्वामीजीको वंदन करता हूँ ॥ २१ ॥

अब गणधराथलीको कहते हैं—

मूल—पद्मिस्थ इंदमूर्धं, धीप पुण होह अग्गिभूइत्ति ।

तद्द य वाउमूर्धं, तओ वियत्ते सुहम्मं य ॥ २२ ॥

छाया—पद्ममोऽथ इन्द्रमूर्तिर्द्वितीयं पुनर्मवस्यमिमूर्तिरिति ।

तृतीयश्च पापुमूर्तिस्ततो व्यक्तं सुधमा च ॥ २२ ॥

दाशार्थ—(पद्मिस्थ) यहाँ महावीरक शारतमं पद्म गणधर (इंदमूर्धं) इन्द्रमूर्ति-गीतमस्वामी (पुण) फिर (धीप) धूमर (अग्गिभूइत्ति) अग्निमूर्ति नामवाह (दाह) हैं, (य) और (तद्द) तीसरे (वाउमूर्धं) पापुमूर्ति,

(तओ) बाद [चौथे] (वियत्ते) व्यक्तस्वामी, और [पांचवे] (सुहम्मे) सुधर्मस्वामी हैं ॥ १२ ॥

मूल—मंडिअ मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य ।

मेयज्जे य पहासे, गणहरा हुंति वीरस्स ॥ २३ ॥

छाया—मण्डितमौर्यपुत्रा,—वकम्पितश्चैवाचलभ्राता च ।

मेतार्यश्च प्रभासो, गणधराः सन्ति वीरस्य ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—(मंडियमोरियपुत्ते—) मण्डित व मौर्यपुत्र (चेव) और ऐसेही (अकंपिए) अकम्पित (चेव) और (अयलभाया) अचलभ्राता, (मेयज्जे) मेतार्यस्वामी (य) और (पहासे) प्रभासस्वामी—येसब— (वीरस्स) श्रीमहावीरस्वामीके (गणहरा) गणधर (हुंति) हैं ॥ २३ ॥

अब श्री जिनशासनकी स्तुति करते हैं—

मूल—निव्वुइ—पह—सासणयं, जयइ सया सब्बभाव—देसणयं ।

कुसमयमयनासणयं, जिणिंदवरवीरसासणयं ॥ २४ ॥

छाया—निर्वृतिपथशासनकं, जयति सदा सर्वभावदेशनकम् ।

कुसमय—मद—नाशनकं, जिनेन्द्रवरवीरशासनकम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—(निव्वुइपहसासणयं) निर्वाण—रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका शासक याने शासन करनेवाला, तथा (सब्बभाव देसणयं) संसारवर्ती सब पदार्थोंका सम्यग् वर्णन करनेवाला, एवं (कुसमयमयनासणयं) कुदर्शन—मिथ्यामतके मदको नष्ट करनेवाला ऐसा (जिणिंदवर वीर सासणयं) जिनेन्द्र—श्रेष्ठ श्रीमहावीरका शासन याने प्रवचन (सया) सदा (जयइ) जयवन्त हैं—सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ २४ ॥

अब स्थविरावली कहते हैं—

मूल—सुहम्मं अग्गिवेसाणं, जंबूनामं च कासवं ।

पभवं कच्चायणं वंदे, वच्छं सिज्जंभवं तथा ॥ २५ ॥

छाया—सुधर्माणमग्निवेश्यायनं, जम्बूनामानं च काश्यपम् ।

प्रभवं कात्यायनं वन्दे, वात्स्यं शय्यम्भवं तथा ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—श्रीमहावीरके प्रथम पट्टधर (अग्गिवेसाणं) अग्निवेश्यायन-गोत्री (सुहम्मं) श्रीसुधर्मास्वामीको (च) और (कासवं) काश्यपगोत्री (जंबूनामं) जंबूनामक द्वितीय पट्टधर आचार्यको, (तथा) तथा (कच्चायणं)

कात्यायनमोषी (पमर्ष) प्रमवस्वामीको च (वच्छं) घटसमोषी (सिञ्जमर्ष)
चतुर्थे आचार्ये श्री शिष्यमवस्वामीको (वंशे) वन्दन करता हूँ ॥ २५ ॥

मूल—जसमर्षं तुंगिर्य वन्दे, संमूय चैव मातर ।

महर्षाहुं च पाइर्षं, धूलमर्षं च गोयमं ॥ २६ ॥

छाया—यशोमर्षं तुङ्गिकं वन्दे, सम्मूर्तं चैव मातरम् ।

महर्षाहुं च प्राचीनं, स्पूलमर्षं च गीतमम् ॥ २६ ॥

शास्त्रार्थ—शाष्यमवस्वामीके शिष्य (तुंगिर्य) तुंगिकमोषी—[व्याघ्राप
त्यगोषी] (जसमर्ष) श्री यशोमर्षको (चैव) और इसी प्रकार यशोमर्षके
शिष्य (मातरं) मातरमोषी (संमूर्तं) समूर्तविषयको, (च) और (पाइर्षं)
प्राचीनमोषी (महर्षाहुं) महर्षाहुको (वंशे) वन्दन करता हूँ, (च) और
सम्मूर्तविषयके शिष्य (गोयमं) गीतमगोषी (धूलमर्षं) स्पूलमर्ष आचार्य
को भी नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

मूल—पलावञ्चसगोर्षं, वदामि महागिरिं सुहृत्पि च ।

ततो कोसियगोर्षं, बहुलस्स सरिष्वर्यं वन्दे ॥ २७ ॥

छाया—पलापत्यसगोर्षं, वन्दे महागिरिं सुहृस्तिनञ्च ।

तत* कौशिकगोर्षं, बहुलस्य सद्गुणवयस वन्दे ॥ २७ ॥

शास्त्रार्थ—(पलावञ्चसगोर्षं) स्पूलमर्षके शिष्य पलापत्य-गोत्रवासे
(महागिरिं) महामिरिको (च) और (सुहृत्पि) सुहृस्ती आचार्य बशिष्ठ-
गोषीको (वंशे) वन्दन करता हूँ, [यहाँ सुहृस्तीसे सुस्थित-सुप्रतिबद्ध भाषि
कमसे एक आचार्यावली चकती है । इस विषयको वशासुतस्कन्धके पहलवित
अध्ययन अर्थात् कस्यसूत्रसे जानना चाहिए । प्रस्तुत अध्ययनकी संकलना
करनेवाले श्री वेववाचकका उसमें सम्बन्ध नहीं होनेसे यहाँ महामिर्षावसिका-
काही उल्लेख किया गया है, महामिरि और सुहृस्ती ये दोनों स्पूलमर्षके शिष्य
हैं] (ततो) सुहृस्तीके भाष (कोसियगोर्षं) कौशिकगोषी (बहुलस्स) बहुल
मुनिके (सरिष्वर्यं) समानवयवासे बसिस्सहको (वंशे) वन्दन करता हूँ ।
अर्थात् महामिरि आचार्यके बहुल और बसिस्सह ये दो प्रधान शिष्य थे ।
ये दोनों वयस-एकसाय पैदा होनेवाले सोवर झाला होनेसे सगोषी ये प्रव-
चनकी प्रथमतासे पुनःप्रथम भी बसिस्सह आचार्यको नमस्कार किया जाता
है ॥ २७ ॥

मूल—हारियगुर्षं साइं च, वंदिमो हारियं च सामर्षं ।

वंदे कोसियगोर्षं, संठिहुं अज्जजीपघरं ॥ २८ ॥

छाया—हारीतगोत्रं स्वातिं च, वन्दे हारीतं च श्यामार्यम् ।

वन्दे कौशिकगोत्रं, शाण्डिल्यमार्यजीतधरम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—फिर बलिस्सहके शिष्य—(हारीयगोत्रं) हारीतगोत्री (साईं) श्रीस्वाति आचार्यको (च) और स्वातिआचार्यके शिष्य (हारियं) हारीत-गोत्री (सामज्जं) श्यामार्यको (वंदिमो) नमन करते हैं, तथा श्यामार्यके शिष्य (कोसियगोत्रं) कौशिकगोत्री (सांडिल्लं) शाण्डिल्य आचार्यको तथा (अज्जजीयधरं) आर्यजीतधर नामके आचार्यको (वंदे) वंदन करता हूं, [वृत्तिकारने 'आर्य जीतधर' इन दो पदोंको शाण्डिल्यका विशेषण माना है, विशेषणका अर्थ इस प्रकार किया है—आर्य—पापोंसे दूर रहनेवाले, जीतधर—मर्यादादर्शक सूत्रोंको धारण करनेवाले, ऐसे शाण्डिल्यको वन्दन करता हूं, ऐसा मुख्य अर्थ किया और गौण अर्थसे मतान्तरमें आर्यजीतधर नामक दूसरे आचार्यको माना है] ॥ २८ ॥

मूल—तिसमुद्द—खायकित्तिं, दीवसमुद्देशु गहिय-पेयालं ।

वंदे अज्जसमुद्दं, अक्खुभिय-समुद्द-गंभीरं ॥ २९ ॥

छाया—त्रिसमुद्दख्यातकीर्तिं, द्वीपसमुद्देषु गृहीतपेयालम् ।

वन्दे-आर्यसमुद्रम्, अक्षुभितसमुद्रगम्भीरम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—शाण्डिल्यके शिष्य—(तिसमुद्दखायकित्तिं) तीन समुद्र अर्थात् पूर्व, दक्षिण, पश्चिम इन तीनों दिशाओंमें स्थित एकही लवणसमु-द्रके तीन विभागकी अपेक्षासे इन तीन समुद्रपर्यन्त प्रख्यात कीर्तिवाले और (दीव समुद्देशु गहिय पेयालं) विविध द्वीप-समुद्रोंमें प्रमाणको प्राप्त करने-वाले, अर्थात् द्वीपसागर प्रज्ञातिके विद्वान् तथा (अक्खुभिय समुद्द गंभीरं) क्षोभराहित-स्थिर समुद्रकी तरह गम्भीर, ऐसे (अज्जसमुद्दं) आर्यसमुद्र नामक आचार्यको (वंदे) मैं वन्दन करता हूं ॥ २९ ॥

मूल—भणगं करगं झरगं, पभावगं णाणदंसणगुणाणं ।

वंदामि अज्जमंगुं, सुयसागरपारगं धीरं ॥ ३० ॥

छाया—भाणकं कारकं ध्यातारं, प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानाम् ।

वन्दे—आर्यमंगुं, श्रुतसागरपारगं धीरम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—(भणगं) कालिक आदि सूत्रोंको सदा पढनेवाले, (करगं) सूत्रोक्त क्रियाकलापको करनेवाले तथा (झरगं) धर्मध्यान ध्यानेवाले, अत-एव (णाणदंसण गुणाणं पभावगं) ज्ञान, दर्शन व चारित्र्य इन तीनोंके गुणोंको

विधानेवाङ्के, तथा (सुयसामरपारर्ग) श्रुतरूप समुद्रके पारगामी च (धीरं) धीर [पर्यगुणविशिष्ट] आर्यसमुद्र आचार्यके शिष्य (अउजमंगुं) श्री आर्य-मंगु आचार्यको (वंधामि) वन्दन करता हूँ ॥ ३० ॥

मूल—*वंधामि अज्जधम्मं, ततो धेवु य मद्दगुत्तं च ।

ततो य अज्जवद्दरं, तव-नियम-गुणेहिं वद्दरसमं ॥ ३१ ॥

छाया—वन्दे—आर्यधर्मं, ततो वन्दे च भद्रगुत्तं च ।

ततश्चार्यवद्दं, तपोनियमगुणैर्वद्दसमम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—फिर-(अउजधम्मं) श्री आर्यधर्माचार्यको (ध) धीर (ततो) उसके बाध (भद्रगुत्तं) भद्रगुताचार्यको (वंधामि) वन्दन करता हूँ, (च) और (ततो) तवमत्तर (तव नियम गुणेहिं) तप नियम आदि गुणोंसे (वद्दर समं) वन्दके समान बलशाली ऐसे (अउजवद्दरं) आर्यधर्मस्वामीको (वंधे) वन्दन करता हूँ ॥ ३१ ॥

मूल—*वंधामि अज्जरक्षितय,—सवणे रक्षितय-चारित्तसव्यस्से ।

रयणकरंङ्गमूओ, अणुओगो रक्षितओ जेहिं ॥ ३२ ॥

छाया—वन्दे आर्यरक्षितक्षपणान्, रक्षितचारित्रसर्वस्वान् ।

रत्नकरणङ्कमूतो,—अणुयोगो रक्षितो ये ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—(अज्जरक्षितयसवणे) श्रीआर्यरक्षित तपस्विराजको (वंधामि) वन्दन करता हूँ, जिन्होंने (रक्षितय चारित्तसव्यस्से) उस समयके सभी मुनिओंके ध अपने चारित्रसर्वस्व-सधमजीवनकी रक्षा की, तथा (जेहिं) जिन्होंने (रयणकरंङ्गमूओ) विचाररूपरत्नोंके करणङ्क-पेटीके समान (अणुओगो) अणुयोगकी (रक्षितओ) रक्षा की थी ॥ ३२ ॥

तीसरी गाथासे सम्बन्धित आर्यमंगुके शिष्य—

मूल—नाणम्मि वंसणम्मि य, तव-विणए णिञ्चकालमुज्जुत्तं ।

अज्जं नंविट्ठसवणं, सिरसा वदे पसन्नमणं ॥ ३३ ॥

छाया—ज्ञाने वर्द्धने च तपो-विनये नित्यकालमुद्युक्तम् ।

आर्यं नन्दिट्ठक्षपणं, शिरसा वन्दे प्रसन्नमनसम् ॥ ३३ ॥

आर्यमंगुके शिष्य—

शब्दार्थ—(नाणम्मि) ज्ञानमें, (वंसणम्मि) वर्द्धन-सम्यक्त्वमें (ध)

१ मद् इति पाठ्यत्वत् आ ही । २ अन्ने इति पाठ्यत्वत् । *११ १२ गाथापूर्व परलुम्माननेऽपि तत्समस्तुत्रप्रपञ्चसूत्रोक्तं इत्यत्र, क्षेत्रकचतुष्टौ श्लोकात् ।

और (तव विणए) तपस्यामें व विनयमें (निञ्चकालं) सर्वदा (उज्जुत्तं) तत्पर-प्रमादरहित, तथा (पसन्नमणं) रागद्वेषसे रहित होनेके कारण प्रसन्नचित्त ऐसे (अज्जं-नन्दिलखवणं) आर्य नन्दिलक्षपणको (सिरसा) मस्तकसे (वंदे) वन्दन करता हूँ ॥ ३३ ॥

श्रीआर्य नन्दिलक्षपणके शिष्य—

मूल—वड्डु उ वायगवंसो, जसवंसो अज्जनागहत्थीणं ।

वागरणकरणभंगिय,—कम्मप्पयडीपहाणाणं ॥ ३४ ॥

छाया—वर्द्धतां वाचकवंशो, यशोवंश आर्यनागहस्तिनाम् ।

व्याकरणकरणभाङ्गिक—कर्मप्रकृतिप्रधानानाम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—(वागरण) व्याकरण-संस्कृत शब्दानुशासन अथवा प्रश्न-व्याकरण, (करण) पिण्डविशुद्धि आदि, (भंगिय) भांगाओंकी विशेषता-वाले, (कम्मप्पयडी) कर्मप्रकृति-श्रुतकी रचनासे या इनकी विशिष्टप्ररूपणा करनेमें (पहाणाणं) प्रधान ऐसे (अज्जनागहत्थीणं) आर्यनागहस्ती आचार्यका (वायगवंसो) वाचकवंश (जसवंसो) मूर्तिमान् यशोवंशकी तरह (वड्डु) वृद्धि पावे-वर्द्धमान हो ॥ ३४ ॥

आर्यनागहस्तीके शिष्य—

मूल—जच्चंजणधाउसमप्पहाणं, मुद्दियकुवलयनिहाणं ।

वड्डु उ वायगवंसो, रेवइनक्खत्तनामाणं ॥ ३५ ॥

छाया—जात्याञ्जनधातुसमप्रभाणां, मृद्वीकाकुवलयनिमानाम् ।

वर्द्धतां वाचकवंशो, रेवतिनक्षत्रनाम्नाम् ॥ ३५ ॥

(जच्चंजणधाउसमप्पहाणं) जातिसम्पन्न अञ्जनधातुके समान शरीरकी कृष्णप्रभावले, तथा (मुद्दिय कुवलयनिहाणं) पकी हुई दाख व नीलकमलके समान कान्तिवाले, ऐसे (रेवइ नक्खत्तनामाणं) रेवतिनक्षत्र नामक आचार्यका (वायगवंसो) वाचकवंश (वड्डु) वर्द्धमान हो ॥ ३५ ॥

रेवतिनक्षत्र आचार्यके शिष्य—

मूल—अयलपुरा णिक्खंते, कालियसुअ-आणुओगिए धीरे ।

बंभदीवगसीहे, वायगपयमुत्तमं पत्ते ॥ ३६ ॥

छाया—अचलपुरान्निष्क्रान्तान्, कालिकश्रुताऽनुयोगिकान् धीरान् ।

ब्रह्मद्वीपिकसिंहान्, वाचकपदमुत्तमं प्राप्तान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—(अयलपुरा णिक्खंते) अचलपुरमें दीक्षा लेनेवाले, (कालियसुअ आणुओगिए) कालिकश्रुतके अनुयोगमे नियोगवाले तथा (धीरे)

धीर (वायमपयमुत्तमं पत्ते) तथा उत्तम वाचक पङ्को प्रातः करनेवाले ऐसे (बंमहीवमसीहे) ब्रह्मजीपकी शास्त्रासे उपलक्षित श्री सिंहाचार्यकी (वे) वन्दन करता हूँ ॥ ३१ ॥

श्रीसिंहाचार्यके शिष्य—

मूल—जेसिं इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अहुमरह्मि ।

बहुनयरनिग्गयजसे, ते वदे संद्विलायरिण् ॥ ३७ ॥

छाया—येयामयमनुयोगः, प्रचरस्यद्याप्यन्तुं भरते ।

बहुनगरनिर्गतयशसः, तान् वन्दे स्कन्दिलाचार्यान् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—(जेसिं) जिनका (इमो) वर्तमानमें मिलनेवाला यह (अणु ओमो) अनुयोग (अज्जावि) आजमी (अहुमरह्मि) आपसे भरतक्षेत्र-वृक्षिण भरतमें (पयरइ) प्रचलित है, (बहु नयर निग्गयजसे) बहुतसे नगरोंमें विस्तृत पशवाले (ते) उम (संद्विलायरिण्) सिंह वाचकके शिष्य श्री स्कन्दिलाचार्यकी (वे) वन्दन करता हूँ ॥ ३७ ॥

मूल—तसो हिमवंतमहंत, विक्कमे पिइपरकममंणंते ।

सज्जायमणंतघरे, हिमवंते वदिमो सिरसा ॥ ३८ ॥

छाया—ततो हिमवन्महाविक्रमान्, अनन्तधृतिपराक्रमान् ।

अनन्तस्वाध्यायधरान्, हिमवतो वन्दे शिरसा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—(तसो) स्कन्दिलाचार्यके बाहू इनके शिष्य (हिमवंत महंत विक्कमे) हिमवाचकी तरह बहुक्षेत्रव्यापी विहार करनेवाले (पिइ परकम मंणंते) अपरिमित धैर्यप्रधान पराक्रमवाले तथा (सज्जायमणंतघरे) अर्थकी दृष्टिसे अनन्तस्वाध्यायको धरनेवाले, ऐसे (हिमवंते) श्री हिमवन्नामक आचार्य को (शिरसा) मस्तकसे (वदिमो) वन्दन करता हूँ ॥ ३८ ॥

मूल—कालियसुय-अणुओगस्स, धारए धारए य पुव्वाण ।

हिमवंतसमासमणे, वदे णागज्जुणायरिण् ॥ ३९ ॥

छाया—कालिकभुताऽनुयोगस्य, धारकान् धारकांश्च पूर्वाणाम् ।

हिमवत* क्षमाधमणान्, वन्दे नागार्जुनाचार्यान् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—फिरभी उन्हीकी स्तुति करते हैं जैसे—(कालियसुयअणु-ओगस्स) कालिकशास्त्रसम्बन्धी अनुयोगके (धारए) धारक-धरनेवाले (य) भीर (पुव्वाण) उत्पाद आपसे पूर्वके (धारए) धारण करनेवाले इस प्रकारके गुणोंसे युक्त ऐसे (हिमवंतसमासमणे) श्रीहिमवन्तनामक क्षमाधम

१ प्राकृतस्य—अन्त इत्यत्र परिकल्पो मध्यरत्नस्यस्यसिद्धिः । ३० । २ पूर्वाणाम्—
इति कैनात्म्यस्यैवपूर्वस्यैव सर्वानेवत्येव इत् ।

णको तथा इन्हीके शिष्य (णागज्जुणायारिए) नागार्जुनाचार्यको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ३९ ॥

मूल—मिउमद्दवसंपन्ने, आणुपुब्बि^१ वायगत्तणं पत्ते ।

ओहसुयसमायारे, नागज्जुणवायए वंदे ॥ ४० ॥

छाया—मृदुमार्दवसम्पन्नान्, आनुपूर्व्या वाचकत्वं प्राप्तान् ।

ओघश्रुतसमाचारान्(चारकान्), नागार्जुनवाचकान् वन्दे ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—(मिउमद्दवसंपन्ने) मृदु-मनोह्र अर्थात् भव्य जीवोके सन्तोष-कारक ऐसे मार्दव आदि भावोसे युक्त, और (आणुपुब्बि) अवस्था व दीक्षा पर्यायसे (वायगत्तणं पत्ते) वाचकपदको पाए हुए, तथा (ओहसुयसमायारे) ओघश्रुत अर्थात् उत्सर्ग-विधि-मार्गका समाचरण करनेवाले, ऐसे गुणसे युक्त (णागज्जुणवायए) नागार्जुनवाचकको (वंदे) वन्दन करता हूं ॥ ४० ॥

श्रीगोविन्द आचार्य और भूतदिन्न आचार्यकी स्तुति—

मूल—गोविंदाणं पि नमो, अणुओगे विउलधारणिंदाणं ।

णिच्चं खंतिदयाणं, परूवणे दुल्लभिंदाणं ॥ ४१ ॥

तत्तो य भूयदिन्नं, निच्चं तवसंजमे अनिविण्णं ।

पंडियजणसम्माणं, वंदामो^२ संजमविहिण्णुं ॥ ४२ ॥

छाया—गोविन्देभ्योऽपि नमः, अनुयोगे विपुलधारणेन्द्रेभ्यः ।

नित्यं क्षान्तिदयानां, परूपणे इन्द्रदुर्लभेभ्यः ॥ ४१ ॥

ततश्च भूतदिन्नं, नित्यं तपःसंयमेऽनिर्विण्णम् ।

पण्डितजनसंमान्यं, वन्दामहे संयमविधिज्ञम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—(अणुओगे विउल धारणिंदाणं) अनुयोगकी विपुल धारणा-रखनेवालोंमे इन्द्रके समान, (खंतिदयाणं) क्षमा, दया आदि गुणोंकी (परूवणे) परूपणामें (निच्चं) सदा (दुल्लभिंदाणं) जो इन्द्रोके भी दुर्लभ ऐसे (गोविंदाणं पि) श्रीगोविन्द नामक आचार्यको भी (नमो) नमस्कार हो ॥ ४१ ॥

(य) और (तत्तो) तदनन्तर (तवसंजमे) तपसंयमकी आराधनामें (निच्चं) सदा (अनिविण्णं) निर्वेद-ग्लानिसे रहित (पंडियजणसम्माणं) पण्डितजनसे संमाननीय तथा (संजम विहिण्णुं) संयमविधिके विशेष जानकार ऐसे (भूयदिन्नं) श्रीभूतदिन्न आचार्यको (वंदामो) वन्दन करते हैं ॥ ४२ ॥

१ 'पुब्बि', 'पुब्बी' इति पाठान्तरम् । २ 'धारिणदाण' इति रा व मुद्रिते पाठ । ३ 'जुयाण' इति पाठान्तरम् । ४ 'दुल्लभिंदाणि', इत्यपि पाठ । प्राकृतत्वादिन्द्रशब्दस्य पर-निपात । ५ सामण्य-इति पाठ । ६ वदामि-इति पाठान्तरम् ।

मूल—धरकणगतद्वियखंपग,—विमउलवरकमलगभमसरिवधे ।
 मवियजणहिययदइए, क्यागुणविसारए धीरे ॥ ४३ ॥
 अहुमरहूप्यहाणे, बहुविह-सज्जाय-सुमुणियपहाणे ।
 अणुओगिअवरवसमे, नाइलकुलवसनेदिकरे ॥ ४४ ॥
 भूयहियप्यगभ्मे, धंवेह भूयविभमापरिए ।
 मवमयवुच्छेयकरे, सीसे नागज्जुणरिसीण ॥ ४५ ॥

छाया—वरतप्तकनकचम्पक,—विमुकुलवरकमलगर्मसहृगवर्णान् ।
 मविकजनहृदपदपितान्, क्यागुणविशारवान् धीरान् ॥ ४३ ॥
 अर्द्धमरतप्रधानान्, सुविज्ञातबहुविधस्वाध्यायप्रधानान् ।
 अनुयोजितवरवृपमान्, नागेन्द्रकुलवशनन्दिकरान् ॥ ४४ ॥
 मूतद्वितप्रगल्मान्, धन्वेऽहं मूतद्विभ्राषारिणान् ।
 मवमयवुच्छेयकरान्, शिष्यान् नागार्जुनर्षिणाम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—(धर कणग तद्विय खंपग विमउल वर कमल गभम सरिवधे)

तथाया ह्रआ उत्तम सुवर्ण या सुनहरी रंगवाला प्रधान चम्पाका फूल तथा
 खिलेगुप उत्तम कमलके मर्म इनके समान पीतवर्णवाले और (मवियजण
 दियय इए) मय्य जीविके चित्तमें प्रेम उत्पन्न करनेवाले याने जो धरम
 हैं तथा (क्यागुण विसारए) छीमके मनमें क्यागुणको उत्पन्न करनेमें परम
 निपुण य (धीरे) जो धीर हैं ॥ ४३ ॥

(अहुमरहूप्यहाणे) उस कालकी अपेक्षासे इक्षिणार्द्धमरतके युगप्रधान
 और (बहुविहसज्जाय सुमुणियपहाणे) आचारात् आदि बहुविध स्वाध्यायके
 जो अच्छीतरह जानकार हैं, (अणुओगियवरवसमे) अनेकतर वृपम-भेद
 साधुओंको स्वाध्याय बेयावृत्य आदि कार्योंमें रुमानेवाले, तथा (नाइल कुलवस
 नंदिकरे) नागेन्द्रकुलनामक वंशका जो प्रमत्त या यज्ञमान करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥

फिर (भूयदियप्यगभ्मे) प्राणिमात्रके हितमें प्रयत्न अर्थात् निर्भीकतासे
 उपवृत्तार्थक जो प्राणिहितको करनेवाले हैं, तथा (मवमयवुच्छेयकरे)
 संसारके मयको मष्ट करनेवाले हैं, [इस प्रकारके गुणोंसे विद्वान्] वेस
 (नागज्जुणरिसीण) श्रीनागार्जुनमहर्षिके (सीसे) शिष्य (भूयविभमापरिए)
 भी भूतविषय मामक आषाढको (अहं) में (धंवे) धन्य करता हूँ ॥ ४५ ॥

मूल—सुमुणिय—निचानिध, सुमुणिय—सुतरथधारय वेदे ।

सर्वमोनुभवावणया, तस्यं लोहियणामाणं ॥ ४६ ॥

१ सिम इति ह्यनन्वितं वाऽऽ । २ भूयदियप्यगभ्मे इति ह्यनन्वितं वाऽऽ ।
 अणुपरिह इति अणु नि इति ह्यनन्वितं वाऽऽ । ३ निधं-इति वाऽऽनन्वितं । ४ वेदेनं लोहियं
 गण्यनुभवावणयं-इति ह्यनन्वितं वाऽऽ ।

छाया—सुज्ञातनित्याऽनित्यं, सुज्ञातसूत्रार्थधारकं वन्दे ।

सद्भावोद्भावनया, तथ्यं लौहित्यनामानम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—(सुसुणिय निच्चानिच्चं) अच्छीतरह नित्य अनित्यरूपसे वस्तुको जाननेवाले, (सुसुणिय सुत्तत्थधारयं) सम्यक् समझे हुए सूत्रार्थको धारण करनेवाले (सव्भावुब्भावणया तथ्यं) और यथावस्थित वर्तमान भावोंके प्रकाशनमें आविसंवादी याने वस्तुतत्त्वोंका सत्य प्रतिपादन करनेवाले ऐसे उन (लौहिच्चणामाणं) श्रीभूतदिन्न आचार्यके शिष्य लौहित्यनामक आचार्यको (वंदे) वन्दन करता हू ॥ ४६ ॥

मूल—अत्यमहत्थखाणिं, सुसमणवक्खाणकहणनिव्वाणिं ।

पयईए महुरवाणिं, पयओ पणमामि दूसगणिं ॥ ४७ ॥

छाया—अर्थमहार्थखनिं, सुश्रमणव्याख्यानकथननिर्वृत्तिम् ।

प्रकृत्या मधुरवाणीकं, प्रयतः प्रणमामि दूष्यगणिनम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—(अत्यमहत्थखाणिं) जो अर्थ व महार्थकी खानकी तरह खान याने भाषा विभाषा वार्तिक आदि भेदोंसे अनुयोगविधिमें अत्यन्त कुशल हैं, तथा (सुसमण वक्खाण कहण निव्वाणिं) मूलोत्तर गुणसम्पन्न सुसाधुओंके लिये अपूर्व शास्त्रार्थका व्याख्यान करने व पूछे हुए विषयोंको कहनेमें जो समाधि अनुभव करनेवाले हैं, उन (पयईए) स्वभावसे (महुरवाणिं) मधुरभाषी (दूसगणिं) श्री दूष्यगणी आचार्यको (पयओ) सम्मानपूर्वक (पणमामि—) प्रणाम करता हूँ ॥ ४७ ॥

मूल—तवनियमसच्चसंजम, विणयज्जवखंतिमद्दवरयाणं ।

सीलगुणगद्वियाणं, अणुओगजुगप्पहाणाणं ॥ ४८ ॥

छाया—तपोनियमसत्यसंयम, विनयार्जवशान्तिमार्दवरतानाम् ।

शीलगुणगर्दितानाम्, अनुयोगयुगप्रधानानाम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—(तवनियम सच्च संजम विणयज्जव खंतिमद्दवरयाणं—) तप, नियम, सत्य, संयम, विनय, आर्जव—सरलभाव, शान्ति, और मार्दव—कोमलता आदि गुणोंमें रत—लगे रहनेवाले तथा (सीलगुणगद्वियाणं) शीलगुणोंसे प्रख्यात होनेवाले, (अणुओग जुगप्पहाणाणं) अनुयोग करनेमें उस समयकी अपेक्षासे जो युगप्रधान हैं ॥ ४८ ॥

मूल—सुकुमालकोमलतले, तेसिं पणमामि लक्खणपसत्थे ।

पाए पावयणीणं, पडिच्छयसयएहिं पणिवइए ॥ ४९ ॥

छाया—सुकुमारकोमलतलान्, तेषां प्रणमामि लक्षणप्रशस्तान् ।

पादान् प्रावचनिकानां, प्रातीच्छिंकशतैः प्रणिपतितान् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—(पादयणीषं) प्रथम प्रवचन करनेवाले (तिथिं) पूर्वोक्त गुण-
वाले जन्म सूच्यणीके (लक्षणप्रशस्तये) लक्षणोंसे प्रशस्त-उत्तम, व (सुकु-
मास कीमलतले) मृदु और सुन्दर तल-तलने-वाले (पाप) चरणोंको (प्रण-
मामि) प्रणाम करता हूँ, जो पैर (पविष्मय सयप्पहिं) सैकड़ों शिष्योंसे
(पविष्मय) ममस्कार पाप हुए हैं ॥ ४९ ॥

मूल—जे अझे भगवन्ते, कालिपसुय-आणुओगिण् धीरे ।

ते पणमिऊण सिरसा, नाणस्स परुवणं बोच्छं ॥ ५० ॥

छाया—येऽन्ये भगवन्तः, कालिकधुतानुयोगिनो धीराः ।

तान् प्रणम्य क्षिरसा, ज्ञानस्य परूपणां वक्ष्ये ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—(अथे) स्तुतिके विषय हुए आचार्योंके सिवाय मी (जे) जो
(कालिपसुय आणुओगिण्) कालिकशास्त्रके अनुयोगवाले (धीरे) धीर
(भगवन्ते) विशेषसुतधारी आचार्य भगवान् हैं, (ते) जन्मको (सिरसा) मस्त
कसे (पणमिऊण) प्रणाम करके, (नाणस्स) ज्ञानकी (परुवणं) प्ररूपणाको
(बोच्छं) कहूँगा ॥ ५० ॥

इति स्वविरावली समाप्ता ।

श्रीदेवर्षिगणिकिरकितायैः स्वविरावली समाप्ता ।



१ ज्ञानप्रतिके छिमे जो शिष्य सुखी अज्ञान वृत्ते पण्ये वाकर वृत्ते अनुयोगवालेकी स्वीकृतिसे इनकी इच्छानुसार रहते हैं, उनसे प्रतीच्छिंक रहते हैं । (अण्यत्र)

२ एकस्य पञ्चासत्संज्ञानसु पापसु १४१५१२११२१२४५५५ संज्ञानय यथाः पूर्णि हारि मदीनदुष्कोर्मैकमयिरित्तौ य व अण्यथाता समित्तुद्वितेऽपि य समित् इत्यत्र इत्तच्छिन्दे रामचन्द्रसिद्धिस्तुतिं पूज्य-वृत्तिसम्पारिते य विवन्दे अत्यन्तदुष्कृतिसुखीपिष्यो य समासते । यथायैरपि ता संस्कन्ते इतिहासैत्येववृत्तिसन्ते । यथा पुरातनाचार्याना पञ्चमस्वरवाऽऽर्षा यथात् प्रामाण्यं विविच्य विवेको निर्येनो विवेका । (अण्यत्र)

अथ नन्दीसूत्रम्



सच्छायं



सभाषाटीकं प्रारभ्यते



अनुवादकका मङ्गलाचरण—

श्रोताओंके लिये १४ दृष्टान्त.

जगमें कषायोंपर विजयकर, केवली जो बनगए,
परमार्थ जिनवाणी बना, सर्वार्थहित जो करगए ।
उन तीर्थपतिको नमन कर, गुरुभक्तिको मनमें धरूं,
भाषार्थ नन्दीसूत्रका, चूर्ण्यादि आश्रयसे करूं ॥ १ ॥

मङ्गलके हेतु अर्हत् आदि स्तुतिरूपका आवलिका कहचुके, अब नन्दी-
सूत्रके कथित अर्थोंको ग्रहण करनेमें योग्य श्रोता कौन? तथा कैसी
परिषद् योग्य होती है, इस दृष्टिसे पहले १४ दृष्टान्तोंसे श्रोताके अधिकारको
कहते हैं—

मूल—सेल घण कुडग चालिणि, परिपुण्णग हंस महिस—मेसे य ।

मसग जलूग बिराली, जाहग गो भेरी आभीरी ॥

छाया—शैल—घन—कुडक—चालनी,—परिपूर्णक—हंस—महिष—मेषाश्च ।

मशक—जलौक—बिडाली,—जाहक—गो—भेर्याऽऽभीर्यः ॥

टीका—१ शैल—चिकना गोल पत्थर—मुद्गशैल, और घन—पुष्करावर्त
मेष, २ कुडग—घडा, ३ चालनी, ४ परिपूर्णक, ५ हंस, ६ महिष, ७ मेष, ८
मशक, ९ जलौका, १० और बिडाली, ११ जाहक, १२ गौ, १३ भेरी, तथा १४
आभीरी इनके समान श्रोता होते है ।

श्रोताके लिये शैल आदिके दृष्टान्त—

१ सेल—किसी समय मुद्गशैल और पुष्करावर्त महामेघमें विवाद
खडा हुआ, मुद्गशैल बोलने लगा कि मुझे कोई नहीं गला सकता । यदि

तम मुझे तिलरूपमात्र भी खण्डित करसको या गीला भी करसको तो तुम्हारा पुष्करावर्त नाम सच्चा समझूँ। पुष्कर मेघ बोला—अरे तू हमारी एक बारा भी नहीं सह सकेगा, यदि हमारे घारा-पातोंके सामने तू टिक गया तो मैं भी समझूँगा कि तू सच्चा मुद्गशील है। एसा कहकर मेघ मूसलभार बरसने लगा और लगातार ७ विनोतक बरसकर सीचा कि अब तो शैल नष्ट होमया होगा ऐसा समझकर वर्षा बन्द करदी और देखने लगा तो मुद्गशील अधिक चाकचिक्यपुल बिसपडा, वह मेघको देखतेही बोला—'क्यों जी। तुम्हारा बल पूरा हुआ या नहीं। तम तो मुझे गलाते थे।' मेघ चुनके लज्जित हो चला गया। इसीप्रकार मुद्गशीलके समान अयोग्य भोता-शिम्यको उपदेश(शिक्षा) देते हुए अतिशयज्ञानी-वचन-संपत्तिपुल आचार्यको भी खण्डित एवं हाताश होना पडता है। जैसे बिकना मोल पत्थर पुष्करावर्त मेघके सात अहोरात्र बरसनेपर भी नहीं भीजता, वैसे प्रयत्न पूर्वक अतिशय ज्ञानीके किये गये उपदेशोंसे भी जिसके हृदयपर असर नहीं होता, वह शैलसम भोता अयोग्य है। प्रतिपक्षमें—जैसे कृष्ण मिट्टी अपने उपर बरसे हुए पानीको बाहर नहीं जाने देती वैसे योग्य भोता बहुसुत आचार्यके उपदेशको स्पर्ध नहीं जाने देते किन्तु उसे धारण करलेते हैं। ऐसे भोता योग्य होते हैं।

१ कुडम-कुट-बडा-ये चार प्रकारके होते हैं—(१) टूटा मरवणबाहा, (२) बाजूमें एक तरफसे फूटा हुआ, (३) नीचेसे फूटा, (४) न टूटा न फूटा। जैसे-किनारपर फूटे हुए घडेमें थोडा-कुछ कम पानी रहता है, नीचेसे फूटे हुए घडेमें पहलेसे थोडा पानी कम रहता है, नीचेसे फूटे हुए घडेमें कुछ भी पानी नहीं रहता और छिन्नरहित घडेमें सब जल टकरता है, ऐसेही (१) भोता कुछ कम धारण करता (२) बहुत थोडा धारण करता, (३) कुछ भी नहीं धारण करता, (४) चुना हुआ सब धारण कर रखता, यही भोता पूर्ण योग्य है, और जो कुछ भी धारण नहीं करता वह पूर्ण अयोग्य है; बाँकी दो किंशतः शास्त्रप्रवचनमें योग्य हैं, बटका इत्यास्त वृक्षरे प्रकारसे भी है, जैसे—एक भावित वृक्षरा अभावित। इसमें जो भावित है, उसके भी दो भेद हैं—एक प्रशस्त भावित और वृक्षरा अप्रशस्त भावित। पुष्प कर्पूर ववैरह से जो भावित है वह प्रशस्त भावित कहलाता है, तथा मदिरा तैल आदिसे जो भावित है, वह अप्रशस्त भावित है। प्रशस्त भावित भी धाम्य और अवाम्य भेदसे दो तरहका होता है—जो बडे, रूप और मज्ज आदिसे बढ़ाये जा सकें से धाम्य और जो नहीं बढ़ाये जासके वे अवाम्य हैं, इनमें प्रशस्त भावित अवाम्य और अप्रशस्त भावित धाम्य घडोंकी तरहके भोता योग्य हैं क्योंकि सम्यक् तत्त्वकी धृतिसे भावित होकर जो स्थिर विचारवासे हैं और कृष्ण तिके उपदेशसे भावित होकर भी जो धाम्य-परिवर्तनीय हैं, ये दोनों प्रकारके भोता योग्य हैं।

३ चालिणि-चालनी-जैसे चालनी एक वाजूसे पानी लेकर दूसरी वाजूसे निकाल देती है, ऐसे जो आचार्यके उपदेशको कुछ भी ध्यानमें नहीं रखता वह चालनीके समान श्रोता भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य है।

४ चालनीके प्रतिपक्षमें-जैसे तापसका कमण्डलु विन्दुमात्र भी जल नहीं गिरने देती ऐसे जो श्रोता उपदेशके तत्त्वको कुछ भी नहीं छोड़ता वह शास्त्रश्रवणमें योग्य है।

४ परिपुण्णग-परिपूर्णक (घृत आदि छाननेका तृणमय साधन) इसमें जैसे सारसार निकलजाता व मल ठहरता है ऐसे जो श्रोता गुणोंको निकालकर दोषोंको रखता है वह भी शास्त्रश्रवणमें अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

५ हंस-जैसे हंस मिले हुए दूध व पानीमेंसे पानीको अलगकर दूधही पीता है ऐसे जो शिष्य दोषोंको छोड़कर गुण ग्रहण करता है वह श्रोता उपदेशश्रवणके योग्य है।

६ महिस-माहिष-जैसे जलाशयमें पानी पीनेको गया हुआ महिस-भैंसा पानीको डुलाकर-मलिन बनाके न तो खुद स्वच्छ जल पीता और न दूसरेकोही पीने देता है, ऐसे जो शिष्य अनेक तरहके कोलाहलद्वारा न तो खुद अच्छीतरह शास्त्रोपदेशको सुनता और न दूसरोंकोही सुनने देता वह शास्त्रश्रवणके अयोग्य है। इसके प्रतिपक्षमें-

७ भेड (भेड)-जैसे भेड गौके खुर डुबे उतने पानीमें भी अपने घुटने टेक, पानीको बगैर मलिन किये हुए खुद इच्छाभर पी लेती है तथा दूसरोंको भी पीने देती है, ऐसे जो श्रोता शान्तभावसे स्वयं भी शास्त्र-उपदेश सुनता तथा दूसरोको भी सुनने देता है वह शास्त्रग्रहणके योग्य है।

८ मसग-मशक-मच्छर-डांस-जैसे मच्छर शरीरपर बैठतेही दुःख पैदा करता है ऐसे जो श्रोता आचार्यको उद्वेग व कष्ट पहुँचाता है वह भी उपदेशके लिये अयोग्य होनेसे मशककी तरह हटानेयोग्य है। प्रतिपक्षमें-

९ जलूगा-जलौका (जौक)-जैसे जलौका विना कष्ट पहुँचाये खराब रक्त पी लेती है ऐसे जो श्रोता आचार्यको विना कष्ट पहुँचाये शास्त्रवाणीका पान करते हैं वे योग्य हैं।

१० बिराली-बिडाली (मार्जारी)-जैसे मार्जारी भाजनसे नीचे गिराके घूलयुक्त दूधको पीती है ऐसे जो श्रोता अहंकारवश आचार्यके पास उपदेशामृतका पान नहीं करके ऊठकर जाते हुए श्रोताओंके परस्पर संभाषणसे निकले हुए वचनोंको सुनता है, वह भी उपदेशदानके अयोग्य है। प्रतिपक्षमें-

११ जाहग-जाहक (उन्दिरकी जातिका एक जन्तुविशेष)-जैसे जाहक भाजनमेंसे थोड़ा २ दूध पीकर वाजूके भागको चाटता है और फिर पीता है

देखेही जो भ्रोता पूर्वभूत उपदेशको मनमकर फिर पूछता है किन्तु गुरुको सिख नहीं करता वह उपदेशानके योग्य है।

११ गो-गी: (गाय)-अैसे किसी गृहस्थने चार ब्राम्हणोंको एक गाय दानमें दी, उसको वे लोग एक १ दिन क्रमशः बूहने लगे तथा उसको सिखा नेके समयमें ऐसा विचार करने लगे कि कल तो इसका बोहम बूहरा करेगा फिर आज मैं इसका पोषण क्यों करूं? इस विचारसे चारोंने उसको सिखाना छोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि कुछही दिनोंके बाद भूखसे पीड़ित हो गाय मरगयी, वे चारों ब्राम्हण लोगोंमें मित्राके पात्र हुए तथा सायही माय और बूधसे भी उनको हाथ भोना पडा। इसीप्रकार जो शिष्य आचार्यसे भुतग्रहण तो करता है किन्तु सेवा-शुभूपाके समय यह समझता है कि जिनको अभी आचार्यसे विशेष लाभ लेना है, वे सेवा करें, मैं क्यों करूं? ऐसा शिष्य बहुत समयतक आचार्यसे लाभ नहीं ले सकता। स्वार्थभावप्रधान होनेसे इस प्रकारका शिष्य भी शास्त्रग्रहणके विषयमें अयोग्य होता है। इसके विपरीत निस्स्वार्थ बुद्धिसे आचार्यकी सेवा-भक्ति करनेवाला शिष्य आचार्यकी मीरी-मता-समाधिसे विशापरूपमें भुतज्ञानकी प्राप्ति करता है और शास्त्रग्रहणमें योग्य अधिकारी होता है।

११ भेरी-भेरी-श्रीकृष्णके गुणघाहीपनकी परीक्षासे प्रसन्न होकर किसी बेघने उनको अशिवोपदामक-विघ्ननिवारक एक भेरी दी जिसके बजानेपर जहाँ १ उसक दाघ सुनपडे, वहाँ १ छमासपर्यन्त किसीको कोइ रोग नहीं होता तथा पहसका गुभा रोग नष्ट हो जाता इसप्रकार दिव्य प्रभावयुक्त भेरीकी घात सुनकर बुरदूरसे रोमी आने लगे। एक समय मस्तककी बेवनासे व्याकुल एक धनी वहाँ चला आया, उसको घेघने मारीर्यबन्धन उपचारमें बताया जो कहीं भी न मिला। भेरी छमासमें बजायी जाती थी मगर उसको ती एक दिन भी बिताना कठिन था। पसी बशामें उसने भेरीरत्नक पुरुषको गुतरूपसे बहुमूल्य पुरस्कार देकर भेरीका दुछ सण्ड (टुकडा) प्राप्त करलिया। भेरी रत्नकने उस टूटे हुए भागपर बूसरा टुकडा लगा दिया। इस प्रकार अन्य १ सण्ड इत हुए यह भेरी कन्यासी बन गई। इससे उसका बह गभीर घाघ नहीं दाता भीर रोग भी शास्त नहीं दात। छागोंमें बने हुए रोगोंको जानकर य भेरीका पदल जैसा दाघ नहीं सुनकर श्रीकृष्ण उसका निरीक्षण किया जब पता चला कि भेरी तो छिन्नमिष कन्यासम हीगई है, तब आवाज कहाँसे आये? इसल कष्ट होकर श्रीकृष्णने पदल रत्नकको हटाकर उसक बबलमें बुरेको जिपुक्त किया तथा अन्न तपकी आराधनाम नवीन भेरी प्राप्त की। अिस बह भेरीरत्नक भेरीका रचित करनेमें दटा दिया गया और छिन्नमिष कन्या बनकर भेरी भी प्रमापगुन्य बनगई परम जा शिष्य जिमपार्थीको रण्डितकर म थोक वाक्य मिलाकर कन्या बनावता है, यह भी शास्त्रज्ञानम अयोग्य ज्ञानस आचार्यक

द्वारा हटा दिया जाता है, प्रतिपक्षमें—जैसे दूसरे भेरीरक्षकने अच्छीतरह भेरीका रक्षण किया, जिससे प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसका बहुत सन्मान बढ़ाया व वंशपरम्परातक खा सके, ऐसी जीविका चालू करदी। ऐसे जो शिष्य जिनवाणीका रक्षण करते हैं, वे आचार्यसे सन्मान पाकर जन्मान्तरमें भी सुखके भागी बनते हैं।

१४ आभीरी-आभीरी—जैसे एक आभीरी अपने पतिके साथ नगरमें घी बेचनेको गई। गांवके अन्य आभीर भी अपनी २ गाड़ी लेकर घी बेचने और कुछ सामान लेनेको साथ आये थे। नगरके बाजारमें आकर आभीरने गाड़ीपरसे घड़े उतारने शुरू किये और आभीरी नीचे लेने लगी, दोनोंकी असावधानीसे एकाएक एक घड़ा गिरगया, जिससे कुछ घी जमीनपर गिर पड़ा, इसपर दोनों झगडने लगे, आभीर बोला कि तूने अच्छीतरह घड़ा नहीं पकड़ा छोड़दिया, आभीरी बोलने लगी कि मैं तो पकडनेपरही थी कि तुमने छोड़दिया इसीसे गिरगया। इसतरह दोनों वादविवाद करते रहे, तबतक गिरे हुए घड़ेका घी कुत्ते चट करगये और दूसरे २ आभीर घी बेचकर अपने २ गांव चले आये। आखिर शामको उन दोनोंने भी बचे हुए घीको बेचा तथा रात हो जानेपर घरकी ओर चले, रास्तेमें चोरोंने घेरलिया और साथके पैसे लूट। लिये इसप्रकार घी भी गया और पैसे भी खोये, प्रतिपक्षमें—दूसरी आभीरी जब नगरमें घी बेचनेको पतिके साथ गई तथा असावधानीसे घी गिरगया तो बोली—पतिदेव ! तुम्हारा कोई दोष नहीं, मैंने अच्छीतरह घड़ा नहीं पकड़ा, इससे गिरगया अतः क्षमा करो, इसप्रकार शान्तभावसे पतिको संतुष्ट कर शीघ्रही गिरे हुए घीको व साथ साथ घड़ेको सम्हालने लगी और उष्ण पानीसे वालूको तपाकर बहुत कुछ घी भी निकाल लिया तथा बेचकर सबके साथ गांव भी चली गई। इसीप्रकार जो शिष्य सूत्रार्थको अच्छीतरह ग्रहण किये विना आचार्यके कहनेपर कलह करने लगता है वह भी श्रुतज्ञानरूप घीको खो बैठता है अतएव अयोग्य है। विपरीत—जो सूत्रार्थके ग्रहणमें चूक हो जानेपर आचार्यसे प्रेरणा पाया हुआ अपनी चूक स्वीकार करके क्षमा चाहलेता है, वह आचार्यको सन्तुष्ट कर सूत्रार्थके लाभको प्राप्त करता है इससे वह योग्य कहा जाता है।

“श्रोताओंके समूहको सभा कहते हैं, यह सभा कितनी प्रकारकी है ? इसको दिखाते हैं—

मूल—सा समासओ तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जाणिया, अजाणिया,
दुब्बियद्धा । जाणिया जहा—

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टन्ति इह गुरुगुणसमिद्धा ।

दोसे अ विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं ॥ ५२ ॥

अजाणिया जहा—

जा होइ पगइमहुरा, मियछावय-सीह- कुक्कुडयमूआ ।
रयणमिव असठविआ, अजाणिया सा भवे परिता ॥ ५३ ॥

दुष्विअइहा जहा-

न च कस्यह निम्माओ, न च पुच्छह परिभवस्स बोसेणं ।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुहह गामिह्वय विअइओ ॥ ५४ ॥

छाया-सा समासतन्निविधा भक्षता, तद्यथा-ज्ञापिका, अज्ञापिका,
दुर्विदग्धा । ज्ञापिका [नाम] यथा-

क्षीरमिव यथा हंसा, ये घुहन्ति-इह गुरुगुणसमुद्धा* ।
दोषोश्च विवर्जयन्ती, तां आनीहि ज्ञापिकां(का) परिपक्वम्(व्) ॥ ५२ ॥
अज्ञापिका यथा-"

या भवति प्रकृतिमधुप, भृगसिंहकुर्कुटशावकभृता ।
रत्नमिवाऽसंस्थापिता, अज्ञापिका सा भवेत् पर्यव् ॥ ५३ ॥
दुर्विदग्धा यथा-

न च कुघ्राऽपि निर्माते, न च घृच्छति परिभवस्य बोयेण ।
वस्तिरिव वातपूर्णं, स्फुटति ग्रामेयको विदग्ध* ॥ ५४ ॥

टीका-वह पर्यव-समा संज्ञापमें तीन प्रकारकी है, जैसे-ज्ञापिका अज्ञा-
यिका व दुर्विदग्धा । (१) ज्ञापिका-विद्वत्समा, जैसे-उत्तम ईस पानीको छोड़कर
जैसे सूचका पाम करते हैं ऐसे जो गुणसम्पन्न पुरुष गुणोंको ग्रहण करते और
दोषोंको छोड़ते हैं उनको यहाँ पर्यवके प्रकरणमें ज्ञापिका पर्यव समझो । (२)
अज्ञापिका जैसे-जो भ्रोता भ्रम सिंह और कुर्कुटके बच्चोंके समान प्रकृतिसे
भोले-भोमस होते हैं अर्थात् भ्रम अथिके बच्चोंको जिसप्रकार भ्रम या भ्र-
जैसा बनाना चाहें इच्छानुसार बना सकते हैं तथा असंस्थापित रत्न जिस-
प्रकार जहाँ चाहे बिठा सकते हैं उसीप्रकार जो किसी भी मार्गमें सगई जा
सक यह अज्ञापिका समा है । स्वामीकरण-जो कुमारमें नहीं सवे और सन्मार्ग
क तत्त्वस भी अनभिज्ञ-अनजान हैं ऐसे भ्रोताओंको यिमा कष्टके समझाया
जा सकता है । (३) दुर्विदग्धा समा जैसे-कोई ग्रामीण पंडित किसी भी
विषयमें या शास्त्रमें बिद्वत्स नहीं रहता और न अनाइरके सयाखस किसी
विद्वानकोही कुछ पूछता है किन्तु केवल पापुसे पूरित मन्त्रके समान लोगोंसे
अपने पण्डितपनके प्रवाइको सुनकर मानो पैठ फुट रहा हो इसतरह जो फुला
हुआ रहता है, पन लोगोंके समूहको दुर्विदग्धा समा करते हैं । इति ।

सूत्रम्—[से किं तं नाणं ?] नाणं पंचविहं पन्नत्तं, तंजहा—आभिणि-
बोहियनाणं, सुयनाणं, ओहिनाणं, मण-पज्जवनाणं, केवल-
नाणं ॥ सू. १ ॥

छाया—[अथ किं तज्ज्ञानं ?] ज्ञानं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—१
आभिनिबोधिकज्ञानं, २ श्रुतज्ञानं, ३ अवधिज्ञानं, ४ मनः-
पर्यवज्ञानं, ५ केवलज्ञानम् ॥ सू. १ ॥

टीका—[शिष्य-भगवन् ! वह ज्ञान कौनसा है ?] ज्ञान पांच प्रकारका है,
जैसे—१ आभिनिबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनःपर्ययज्ञान,
और ५ केवलज्ञान ॥ सू. १ ॥

मूल—तं समासओ दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—पच्चक्खं च परोक्खं च
॥ सू. २ ॥

छाया—तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रत्यक्षञ्च परोक्षञ्च ॥ सू. २ ॥

टीका—इसप्रकार पांच भेदवाला भी वह ज्ञान संक्षेपमें दो प्रकारका है,
जैसे—१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष ॥ सू. २ ॥

मूल—से किं तं पच्चक्खं ? पच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं, तंजहा—इंदिय-
पच्चक्खं, नोइंदियपच्चक्खं च ॥ सू. ३ ॥

छाया—अथ किं तत्प्रत्यक्षं ? प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—इन्द्रिय-
प्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षञ्च ॥ सू. ३ ॥

टीका—शि०—उस प्रत्यक्षका क्या स्वरूप है ? उ.-प्रत्यक्षके दो भेद हैं,
जैसे—इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष ॥ सू. ३ ॥

मूल—से किं तं इंदियपच्चक्खं ? इंदियपच्चक्खं पंचविहं पण्णत्तं,
तंजहा—१ सोइंदियपच्चक्खं, २ चक्खिंदियपच्चक्खं, ३ घाणिं-
दियपच्चक्खं, ४ जिब्बिंदियपच्चक्खं, ५ फासिंदियपच्चक्खं,
से तं इंदियपच्चक्खं ॥ सू. ४ ॥

छाया—अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षम् ? इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञप्तं,
तद्यथा—(१) श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं, (२) चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षं, (३)
घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्षं, (४) जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्षं, (५) स्पर्शेन्द्रियप्रत्यक्षं,
तदेतद् इन्द्रियप्रत्यक्षम् ॥ सू. ४ ॥

टीका—श्री०—बह इन्द्रियप्रत्यक्ष कितने प्रकारका है। उ—इन्द्रियप्रत्यक्ष पांच प्रकारका है, जैसे—श्रुत-इन्द्रिय-कर्णसे होनेवाला ज्ञान-श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष (१), नाकसे होनेवाला ज्ञान-घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष (२), नाकसे होनेवाला ज्ञान-घ्राणेन्द्रिय-प्रत्यक्ष (३), जीभसे होनेवाला ज्ञान-जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष (४), स्पर्शासे होनेवाला ज्ञान-स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष (५), इसप्रकार यह इन्द्रियप्रत्यक्ष हुआ ॥ सू. ४ ॥

मूल—से किं तं नोऽप्यिन्द्रियप्रत्यक्षं ? नोऽप्यिन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं पण्णत्तं, तंजहा—ओहिनाणपच्चक्खं (१), मणपज्जवनाणपच्चक्खं (२), केवलनाणपच्चक्खं (३) ॥ सू. ५ ॥

छाया—अथ किं तन्नोऽप्यिन्द्रियप्रत्यक्षं ? नोऽप्यिन्द्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञत्तं, तद्यथा—अवधिज्ञानप्रत्यक्षं (१), मनपर्व्ववज्ञानप्रत्यक्षं (२), केवलज्ञानप्रत्यक्षम् (३) ॥ सू. ५ ॥

टीका—श्री०—नोऽप्यिन्द्रियप्रत्यक्ष किसको कहते हैं। उ—नोऽप्यिन्द्रिय प्रत्यक्ष [बिना किसी इन्द्रिय व मनरूप बाह्य करणकी सहायताके साक्षात् आत्मासे होनेवाला ज्ञान] तीन प्रकारका है, जैसे—अवधिज्ञानप्रत्यक्ष (१) मनपर्व्ववज्ञानप्रत्यक्ष (२) केवलज्ञानप्रत्यक्ष (३) ॥ सू. ५ ॥

मूल—से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ? ओहिनाणपच्चक्खं दुविधं पण्णत्तं, तंजहा—मवपच्चइयं च साओवसमिपं च ॥ सू. ६ ॥

छाया—अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षम् ? अवधिज्ञानप्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञत्तं, तद्यथा—मवप्रत्ययिकञ्च सायोपशमिकञ्च ॥ सू. ६ ॥

टीका—श्री०—बह अवधिज्ञानप्रत्यक्ष किसप्रकार है। उ—अवधिज्ञान-प्रत्यक्ष दो प्रकारका है, जैसे—मवप्रत्ययिक (१), और सायोपशमिक (२) ॥ सू. ६ ॥

मूल—से किं तं मवपच्चइयं ? मवपच्चइयं दुण्हं, तंजहा—देवाण य, नेरुयाण य ॥ सू. ७ ॥

छाया—अथ किं तद् मवप्रत्ययिकं ? मवप्रत्ययिकं द्वयोः, तद्यथा—देवानाञ्च नेरयिकाणाञ्च ॥ सू. ७ ॥

टीका—श्री०—बह मवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कीमता है। उ०—मव-प्रत्ययिक-अत्मसे होनेवाला-अवधिज्ञान दोको होता है, जैसे—देवोंका और मारक जीवोंका अवधिज्ञान मवप्रत्ययिक है ॥ सू. ७ ॥

मूल—से किं तं खाओवसमियं ? खाओवसमियं दुण्हं, तंजहा—मणु-
स्साण य पंचेदिय-तिरिक्खजोणियाण य । को हेऊ खाओ-
वसमियं ? खाओवसमियं तयावरणिज्जाणं कम्माणं उदि-
ण्णाणं खएणं अणुदिण्णाणं उवसमेणं ओहिनाणं समुप्पज्जइ
॥ सू. ८ ॥

छाया—अथ किं तत् क्षायोपशमिकं ? क्षायोपशमिकं द्वयोः, तद्यथा—
मनुष्याणाञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिजानाञ्च, को हेतुः क्षायोप-
शमिकं ? क्षायोपशमिकं तदावरणीयानां कर्मणाम्—उदीर्णानां
क्षयेण, अनुदीर्णानामुपशमेन, अवधिज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू. ८ ॥

टीका—शि०—वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान किसप्रकार होता है ? उ०—
क्षायोपशमिक अवधि दोको, जैसे—मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यचोको होता है ।
शि०—क्षायोपशमिक अवधिज्ञान इस नाममें क्या हेतु है ? उ०—अवधिज्ञानके जो
आवरक (आवरण करनेवाले) कर्म हैं उनमें उदयावलिका प्राप्तको क्षय करने,
और जो उदयमे नहीं आये हैं उनका उपशमन करनेसे जो अवधिज्ञान उत्पन्न
होता है उसे क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते हैं ॥ सू. ८ ॥

मूल—अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ, तं
समासओ छुव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—आणुगामियं १, अणाणु-
गामियं २, वड्डमाणयं ३, हीयमाणयं ४, पडिवाइयं ५,
अप्पडिवाइयं ६ ॥ सू. ९ ॥

छाया—अथवा गुणप्रतिपन्नस्याऽनगारस्याऽवधिज्ञानं समुत्पद्यते, तत्स-
मासतः षड्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आनुगामिकं १, अनानुगामिकं
२, वर्द्धमानकं ३, हीयमानकं ४, प्रतिपातिकं ५, अप्रति-
पातिकम् ६ ॥ सू. ९ ॥

टीका—अथवा ज्ञानदर्शनचारित्रके गुणसम्पन्न अनगार—मुनिको जो
अवधिज्ञान प्रकट होता है यह भी क्षायोपशमिक है, वह संक्षेपमें ६ प्रकारका
है, जैसे—आनुगामिक (१), अनानुगामिक (२), वर्द्धमान (३), हीयमान
(४), प्रतिपाति (५), अप्रतिपाति (६) ॥ सू. ९ ॥

आनुगामिक आदिका क्रमश विवरण करते हैं—

मूल—से किं तं आणुगामियं ओहिनाणं ? आणुगामियं ओहिनाणं
दुव्विहं पण्णत्तं, तंजहा—अंतगयं च मज्झगयं च । से किं तं अंत-

गय ? अंतगयं त्रिविधं पण्णसं, तंजहा—पुरओ अंतगयं (१), मग्गओ अंतगयं (२), पासओ अंतगयं (३) ।

से किं तं पुरओ अंतगयं ? पुरओ अंतगयं—से जहानामप केइ पुरिसे उक्कं वा, चड्डुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोई वा, पुरओ काठं पणुहेमाणे २ गच्छेज्जा, से तं पुरओ अंतगयं ।

से किं तं मग्गओ अंतगयं ? मग्गओ अंतगयं, से जहानामप केइ पुरिसे उक्कं वा, चड्डुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोई वा, मग्गओ काठं अणुकड्डेमाणे २ गच्छिज्जा से तं मग्गओ अंतगयं ।

से किं तं पासओ अंतगयं ? पासओ अंतगयं, से जहानामप केइ पुरिसे उक्कं वा, चड्डुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोई वा, पासओ काठं परिकड्डेमाणे २ गच्छिज्जा से तं पासओ अंतगयं, से तं अंतगयं ।

छाया—अथ किं तद्—आनुगामिकमवधिज्ञानम् ? आनुगामिकमवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—अन्तगतञ्च मध्यगतञ्च । अथ किं तदन्तगतम् ? अन्तगतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—पुरतोऽन्तगतं (१), मार्गतोऽन्तगतं (२), पार्श्वतोऽन्तगतम् (३) । अथ किं तद् पुरतोऽन्तगतं ? पुरतोऽन्तगतं—स यथानामकं कश्चित् पुरुषः—उक्कां वा, चड्डुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पुरताः कृत्वा प्रणुषन् २ गच्छेत्, तदेतद् पुरतोऽन्तगतम् ।

अथ किं तन्मार्गतोऽन्तगतं ? मार्गतोऽन्तगतं, स यथानामकं कश्चित्पुरुषः—उक्कां वा, चड्डुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मार्गतं कृत्वाऽनुकल्पन् २ गच्छेत्, तदेतन्मार्गतोऽन्तगतम् ।

१ मार्गतं—द्वारा—द्वारम् । २ अन्त—दीपिका । ३ चड्डुलीं—पर्वतस्थित-सुन्दरी ।

अथ किं तत्पार्श्वतोऽन्तगतं ? पार्श्वतोऽन्तगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, पार्श्वतः कृत्वा परिकर्षन् २ गच्छेत्, तदेतत्पार्श्वतोऽन्तगतं, तदेतदन्तगतम् ।

टीका—शि०—गुरुवर ! वह आनुगामिक अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०—आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकारका है, जैसे—अंतगत और मध्यगत, वह अंतगत अवधि किसप्रकार है ? उ०—अंतगत अवधिज्ञान तीन प्रकारका कहा गया है, जैसे—पुरतोऽन्तगत (१), मार्गतोऽन्तगत (२), पार्श्वतोऽन्तगत (३) ।

अब वह पुरतोऽन्तगत अवधि कैसा है ? उ०—जैसे कोई पुरुष दीपिका या चटुली वा तृणाग्रवर्ती अग्नि या मणि वा प्रदीप तथा ऐसेही विजली, बॅटरी आदि किसी तरहकी अग्निको आगे करके बढ़ाता हुआ चला जाता है, [उसके अग्रगामी प्रकाशकी तरह जो ज्ञान आगेके प्रदेशको प्रकाशित करते हुए साथ चलता है] उसे पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञान कहते हैं ।

वह मार्गतोऽन्तगत अवधि किसप्रकार है ? उ०—मार्गतोऽन्तगत, जैसे—कोई पुरुष उल्का—दीपिका, चटुली, अलातक वा मणि या प्रदीप तथा अन्य इसी प्रकारकी अग्निकी ज्योतिको पीछे करके खींचता हुआ जाता है [ऐसेही जो आत्मा पीछेके क्षेत्रको अवधिज्ञानसे प्रकाशित करता—जानता हुआ जाता है] उसका वह पृष्ठगामी—पीछे चलनेवाला अवधिज्ञान मार्गतोऽन्तगत कहाता है ।

वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०—पार्श्वतोऽन्तगत, जैसे—कोई पुरुष दीपिका, चटुली, अलातक वा मणि या प्रदीप आदि पूर्वोक्त प्रकाशकारी पदार्थोंको अपने बगलमें करके साथ ले चलता हुआ बाजूके प्रदेशको प्रकाशित करते जाता है, [ऐसेही जिसका अवधिज्ञान बाजूके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए साथ चलता है] वह पार्श्वतोऽन्तगत अवधिज्ञान है, इसप्रकार यह अन्तगत अवधिका वर्णन हुआ ।

मूल—से किं तं मज्झगयं ? मज्झगयं से जहानामए केइ पुरिसे उक्कं वा, चटुलियं वा, अलायं वा, मणिं वा, पईवं वा, जोइं वा, मत्थए काउं समुव्वहमाणे २ गच्छिज्जा, से तं मज्झगयं ।

छाया—अथ किं तन्मध्यगतं ? मध्यगतं, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः—उल्कां वा, चटुलीं वा, अलातं वा, मणिं वा, प्रदीपं वा, ज्योतिर्वा, मस्तके कृत्वा समुद्रहन् २ गच्छेत्, तदेतन्मध्यगतम् ।

टीका—शि०—मध्यगत अवधि किसको कहते हैं ? उ०—मध्यगत अवधि—जिसप्रकार कोई पुरुष उल्का, चटुली, अलातक वा मणि व प्रदीप आदि पूर्वोक्त

प्रकाशकारी द्रव्योंको मस्तकपर रखके उठाता हुआ जाता है, [इसप्रकार चारों ओरके पदार्थोंका ज्ञान कराते हुए जो ज्ञान हाताक साथ चलाता है] उसको मध्यगत अवधिज्ञान कहते हैं।

मूल—अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ? [गोयमा !] पुर-
ओ अंतगएणं ओहिनाणेणं पुरओ चेव संस्सिज्जाणि वा असंस्से
ज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, मग्गओ अंतगएणं
ओहिनाणेणं मग्गओ चेव संस्सिज्जाणि वा असंस्सिज्जाणि वा
जोयणाइं जाणइ पासइ, पासओ अतगएणं ओहिनाणेणं पास
ओ चेव संस्सिज्जाणि वा असंस्सिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ
पासइ, मज्झगएणं ओहिनाणेणं सम्भओ समंता संस्सिज्जाणि वा
असंस्सिज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, से सँ आणुगामिरियं
ओहिनाणं ॥ सू. १० ॥

छाया—अन्तगतस्य मध्यगतस्य च कं प्रतिविशेषं ? [गौतम !] पुर-
तोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पुरतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येया-
नि वा योजनानि जानाति पश्यति, मार्गतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञाने-
नेन मार्गतश्चैव संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि
जानाति पश्यति, पार्श्वतोऽन्तगतेनाऽवधिज्ञानेन पार्श्वतश्चैव
संख्येयानि वा, असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति,
मध्यगतेनाऽवधिज्ञानेन सर्वतः समन्तात् संख्येयानि वा असंख्ये-
यानि वा योजनानि जानाति पश्यति, तदेतद्दानुगामिकमवधि-
ज्ञानम् ॥ सू. १० ॥

टीका—अन्तगत और मध्यगत अवधिमें क्या विशेषता है ? उ०—
पुरतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे हाता संख्यात तथा असंख्यात योजन आयेके
पदार्थोंको ही जानता व देखता है, मार्गतोऽन्तगत अवधिज्ञानसे संख्यात या
असंख्यात योजन पीछेके द्रव्योंकोही आत्मा जानता व देखता है, ऐसे पार्श्व-
तोऽन्तगत अवधिज्ञानसे दोनों बाजूमें रहे हुए पदार्थोंकोही संख्यात वा अ-
ख्यात योजनतक जानता व देखता है, किन्तु मध्यगत अवधिज्ञानसे तो सभी
ओरके संख्यात व असंख्यात योजनमध्यवर्ती पदार्थोंको आत्मा जानता व
देखता है, [यही दोनोंकी विशेषता है] यह आनुगामिक-उत्पत्तिक्रमसे साथ
चलनेवाला अवधिज्ञान हुआ ॥ सू. १० ॥

मूल—से किं तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ? अणाणुगामिअं ओहिनाणं—से जहानामए केइ पुरिसे एगं महंतं जोइद्वाणं काउं तस्सेव जोइद्वाणस्स परिपेरंतेहिं परिपेरंतेहिं, परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे तमेव जोइद्वाणं पासइ, अन्नत्थगए न जाणइ न पासइ, एवामेव [अज्जो !] अणाणुगामिअं ओहिनाणं जत्थेव समुप्पज्जइ तत्थेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ, अन्नत्थगए ण पासइ, से तं अणाणुगामिअं ओहिनाणं ॥ सू. ११ ॥

छाया—अथ किं तदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ? अनानुगामिकमवधिज्ञानं, स यथानामकः कश्चित्पुरुष एकं महत्—ज्योतिःस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य परिपर्यन्तेषु २ परिघूर्णन् २ तदेव ज्योतिःस्थानं पश्यति, अन्यत्र गतान् न जानाति न पश्यति, एवमेवाऽनानुगामिकमवधिज्ञानं—यत्रैव समुत्पद्यते तत्रैव संख्येयानि वा असंख्येयानि वा सम्बद्धानि वाऽसम्बद्धानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अन्यत्र गतान् पश्यति, तदेतदनानुगामिकमवधिज्ञानम् ॥ सू. ११ ॥

टीका—शि०—वह अनानुगामिक अवधिज्ञान किसप्रकार है ? उ०—अनानुगामिक अवधिज्ञान, जैसे—कोई पुरुष एक बड़े अग्निस्थानमें अग्निको प्रदीप्त करके उस अग्निस्थानकेही आजूबाजू घूमता हुआ उसी अग्निस्थानको देखता है, दूसरी जगह रहे हुए पदार्थोंको अन्धकारके कारण वहाँ जाकर भी नहीं जानता व नहीं देखता है, इसीप्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्रमें उत्पन्न होता है, उसी क्षेत्रमें संख्यात या असंख्यात योजनतक संबद्ध वा परस्पर सम्बन्धरहित (असम्बद्ध) पदार्थोंको जानता व देखता है, उससे बाहरके पदार्थोंको [नहीं जानता व] नहीं देखता है, इसप्रकार यह अनानुगामिक अवधिज्ञान हुआ ॥ ११ ॥

वर्द्धमान अवधिज्ञान—

मूल—से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ? वड्ढमाणयं ओहिनाणं पसत्थेसु अज्झवसायद्वाणेषु वड्ढमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सब्बओ समंता ओही वड्ढइ,

- गाथा-५५ जावइआ तिसमया-हारगस्त सुहुमस्त पणगजीवस्त ।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीसिचं जहर्षं तु ॥ १ ॥
- ५६ सव्व-महु-अगणिजीवा, निरन्तरं जत्तिरं मरिज्जंसु ।
सिचं सव्वविसागं, परमोही सिचनिद्विट्ठो ॥ २ ॥
- ५७ अंगुलमावलियाणं, मागमसंसिज्ज वीसु संसिज्जा ।
अंगुलमावलिअंतो, आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ ३ ॥
- ५८ हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाउअम्मि वीण्डुव्वो ।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पक्खीसाओ ॥ ४ ॥
- ५९ मरुत्थम्मि अहुमासो, अंबुहीवाम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोप, वासपुहुत्तं च रुयगम्मि ॥ ५ ॥
- ६० संसिज्जम्मि उ काले, वीवसमुद्दा वि हुंति संसिज्जा ।
कालम्मि असंसिज्जे, वीवसमुद्दा उ मइयव्वा ॥ ६ ॥
- ६१ काले चउण्ह बुद्धी, कालो मइअव्वु सिचवुद्धीए ।
बुद्धीए वव्वपज्जव, मइयव्वा सिचकाला उ ॥ ७ ॥
- ६२ सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमपरं हवइ सिचं ।
अंगुलसेठीमिचे, ओसप्पिणिओ असंसिज्जा ॥ ८ ॥
- से च वहुमाणये ओहिनाणं ॥ सू १२ ॥

छाया-मथ किं तद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ? वर्द्धमानकमवधिज्ञानं
प्रशस्तेषु अप्यवसायस्थानेषु वर्द्धमानस्य वर्द्धमानचारिष्यस्य
विशुद्धममानस्य विशुद्धममानचारिष्यस्य सर्वतः समन्तादव-
धिर्वर्धते,

- गाथा-५५ यावती तिसमया,-ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना जघन्या, अवधिक्षेत्रं जघन्यं तु ॥ १ ॥
- ५६ सर्ववह्निजीवा, निरन्तरं यावद् भूतवन्तः ।
क्षेत्रं सर्वविधं, परमावधि क्षेत्रनिर्विहं ॥ २ ॥

- ५७ अङ्गुलमावलिकायोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम् ।
अङ्गुलमावलिकान्तः, आवलिकामङ्गुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥
- ५८ हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गंव्यूते बोद्धव्यः ।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥
- ५९ भरतेऽर्द्धमासो, जम्बुद्वीपे साधिको मासः ।
वर्षञ्च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वञ्च रुचके ॥ ५ ॥
- ६० संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ॥
कालेऽसंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥
- ६१ काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्ध्या (द्वौ) ।
वृद्ध्या(द्वौ) द्रव्यपर्याययोः, भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥
- ६२ सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्योऽसंख्येयाः ॥ ८ ॥
तदेतद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १२ ॥

टीका—शि०-वर्द्धमान अवधिज्ञानका वह स्वरूप किस प्रकार है? उ०-
जो पवित्र-उत्तम विचारोंमें वर्तमान व वर्द्धमान चारित्रवाला है तथा परिणा-
मोंकी विशुद्धिसे जिसका चरित्र विशुद्ध हो रहा है याने जो आत्मविकाशके
मार्गमें प्रगति कर रहा है, उसके ज्ञानकी चारों ओरसे सीमा बढती है, इसीको
वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

गाथार्थ-अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र-जितनी तीन समयके आहारक
सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना होती है, उतना जघन्य-सबसे
थोडा अवधिज्ञानका क्षेत्र है ॥ १ ॥

अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं—जैसे-सर्वबहु अग्निजीवोंने
जितना क्षेत्र निरंतर भरा है याने सूक्ष्मवादरूप सर्वबहु-सबसे अधिक अग्नि-
कायिक जीवोंसे विना अन्तरके चारों दिशाका जितना क्षेत्र भरा है, उतना
सब दिशामे परमावधिज्ञानका क्षेत्र है, याने इतने क्षेत्रमें रहे हुए रूपी द्रव्य-
मात्रको परमावधिज्ञानसे जानता है ॥ २ ॥

अवधिज्ञानका मध्यम क्षेत्र कहते हैं—अंगुल-प्रमाणांगुल या उच्छेदां-
गुल, और आवलिकाके असंख्यातवंग भागको [क्षेत्र तथा कालकी दृष्टिसे अव-
धिज्ञानी इतने क्षेत्रको] जानता है, तथा दोनोंमें याने आवलिका और अंगुलमें

१ जैनागमप्रसिद्ध गाउयशब्दस्य पर्यायो गव्यूतशब्द' क्रीशाऽर्थेऽस्ति ।

- गाथा-५५ जावइआ तिसमया-हारगस्त सुहुमस्त पणगजीवस्त ।
ओगाहणा जहन्ना, ओहीसित्तं जहन्तं तु ॥ १ ॥
- ५६ सध्व-बहु-अगणिजीवा, निरतरं जत्तिर्यं मरिज्जंसु ।
सित्तं सध्वविसागं, परमोही-सित्तनिद्धिदो ॥ २ ॥
- ५७ अंगुलमावलियाणं, मागमसंसिज्ज दोसु संसिज्जा ।
अंगुलमावलिअंतो, आवलिया अंगुलपुहत्तं ॥ ३ ॥
- ५८ हत्थम्मि मुहुत्तंतो, दिवसंतो गाठअम्मि बोन्नुध्वो ।
जोयण दिवसपुहुत्तं, पक्खंतो पन्नवीसाओ ॥ ४ ॥
- ५९ मरहम्मि अहुमासो, जंबुहीवम्मि साहिओ मासो ।
वासं च मणुयलोए, वासपुहुत्तं च हयगम्मि ॥ ५ ॥
- ६० संसिज्जम्मि उ काले, धीवसमुह्वा वि हुंति संसिज्जा ।
कालम्मि असंसिज्जे, धीवसमुह्वा उ महपव्वा ॥ ६ ॥
- ६१ काले चउण्ह पुट्ठी, कालो महअध्वु सित्तपुट्ठीए ।
पुट्ठीए ध्वपज्जव, महपव्वा सित्तकाला उ ॥ ७ ॥
- ६२ सुहुमो य होइ कालो, तत्तो सुहुमपरं हवइ सित्तं ।
अंगुलसेहीमिचे, ओसप्पिणिओ असंसिज्जा ॥ ८ ॥
- से चं वहुमाणयं ओहिनाणं ॥ सू १२ ॥

छाया-अथ किं तद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ? वर्द्धमानकमवधिज्ञानं
प्रदास्तेषु अध्ववसायस्थानेषु वर्द्धमानस्य वर्द्धमानचारिष्यस्य
विशुद्धचमानस्य विशुद्धचमानचारिष्यस्य सर्वतः समन्ताद्भव
धिर्वर्धते,

- गाथा-५५ यावती तिसमया,-ऽऽहारकस्य सूक्ष्मस्य पनकजीवस्य ।
अवगाहना अधन्या, अवधिक्षेत्रं अधन्यं तु ॥ १ ॥
- ५६ सर्वबहुमिजीवा, निरन्तरं यावद् मृतवन्तः ।
क्षेत्रं सर्वदिक्, परमावधिः क्षेत्रनिर्दिष्टः ॥ २ ॥

- ५७ अङ्गुलमावलिकायोः, भागमसंख्येयं द्वयोः संख्येयम् ।
अङ्गुलमावलिकान्तः, आवलिकामङ्गुलपृथक्त्वम् ॥ ३ ॥
- ५८ हस्ते मुहूर्तान्तो, दिवसान्तो गव्यूते बोद्धव्यः ।
योजनदिवसपृथक्त्वं, पक्षान्तः पञ्चविंशतिम् ॥ ४ ॥
- ५९ भरतेऽर्द्धमासो, जम्बुद्वीपे साधिको मासः ।
वर्षञ्च मनुष्यलोके, वर्षपृथक्त्वञ्च रुचके ॥ ५ ॥
- ६० संख्येये तु काले, द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः ॥
कालेऽसंख्येये, द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः ॥ ६ ॥
- ६१ काले चतुर्णां वृद्धिः, कालो भजनीयः क्षेत्रवृद्ध्या (ङ्गुलैः) ।
वृद्ध्या(ङ्गुलैः) द्रव्यपर्याययोः, भाज्यौ क्षेत्रकालौ तु ॥ ७ ॥
- ६२ सूक्ष्मश्च भवति कालः, ततः सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रम् ।
अङ्गुलश्रेणिमात्रे, अवसर्पिण्योऽसंख्येयाः ॥ ८ ॥
तदेतद् वर्द्धमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू १२ ॥

टीका—शि०-वर्द्धमान अवधिज्ञानका वह स्वरूप किस प्रकार है? उ०-
जो पवित्र-उत्तम विचारोंमें वर्तमान व वर्द्धमान चारित्रवाला है तथा परिणा-
मोंकी विशुद्धिसे जिसका चरित्र विशुद्ध हो रहा है याने जो आत्मविकाशके
मार्गमें प्रगति कर रहा है, उसके ज्ञानकी चारों ओरसे सीमा बढ़ती है, इसीको
वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

गाथार्थ—अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र-जितनी तीन समयके आहारक
सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना होती है, उतना जघन्य-सबसे
थोड़ा अवधिज्ञानका क्षेत्र है ॥ १ ॥

अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र दिखाते हैं—जैसे-सर्वबहु अग्निजीवोंने
जितना क्षेत्र निरंतर भरा है याने सूक्ष्मवाटरूप सर्वबहु-सबसे अधिक अग्नि-
कायिक जीवोंसे बिना अन्तरके चारों दिशाका जितना क्षेत्र भरा है, उतना
सब दिशामे परमावधिज्ञानका क्षेत्र है, याने इतने क्षेत्रमें रहे हुए रूपी द्रव्य-
मात्रको परमावधिज्ञानसे जानता है ॥ २ ॥

अवधिज्ञानका मध्यम क्षेत्र कहते हैं—अंगुल-प्रमाणांगुल या उच्छेदां-
गुल, और आवलिकाके असंख्यातवें भागको [क्षेत्र तथा कालकी दृष्टिसे अव-
धिज्ञानी इतने क्षेत्रको] जानता है, तथा दोनोंमें याने आवलिका और अंगुलमें

संख्येय माय वेत्ता है अर्थात् अंगुलके संख्येय भागमात्र क्षेत्रको जानता हुआ आबलिकाके भी संख्येय भागतकही जानता है, अंगुलको वेत्ता हुआ कुछ कम आबलिकातक जानता है, यदि कालस आबलिकाप्रमाण कालको वेत्ता है तो क्षेत्रसे अंगुलपृथक्त्व परिमित क्षेत्रमें वेत्ता है ॥ ३ ॥

इस्तमात्र क्षेत्रके जाननेपर कालसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण वेत्ता है, तथा कालसे कुछ कम एक दिवसको वेत्ता हुआ क्षेत्रसे एक गल्पपर्यन्त अबधिज्ञान होता है, ऐसेही योजनपर्यन्त क्षेत्र वेत्ता हुआ कालसे दिवसपृथक्त्व वेत्ता है, य कुछ कम पक्ष वेत्ता हुआ क्षेत्रसे पक्षीस योजनतक वेत्ता है ॥ ४ ॥

मरतक्षेत्रविषयक अबधिज्ञान होनेपर कालसे अर्धमासतक [भूतमविष्यको] अबधिज्ञानी वेत्ता है, सम्बुद्धीविषयक अबधिके होनेपर साधिक-कुम्भभिक एकमास आगेपीछे वेत्ता है, मनुष्यक्षेत्रपरिमित अबधिके होनेपर एक वर्षतक और रुचकक्षेत्रपरिमित क्षेत्रमें अबधिके होनेपर वर्षपृथक्त्व घाने वैसे नव वर्षतक वेत्ता है ॥ ५ ॥

संख्यातकाल घाने हजार वर्षसे उपर अबधिके विषय होनेपर क्षेत्रसे संख्यातक्षेत्रपरिसमुद्र भी अबधिके विषय होते हैं, और अबधिज्ञानके असंख्य कालिक होनेपर द्वीपसमुद्र भजनासे होते हैं अर्थात् संख्यात, असंख्यात या किसीको द्वीपसमुद्रक पकड़ेवाही अबधिज्ञानका विषय होता है ।

[जब किसी मनुष्यको असंख्यकालविषयक अबधिज्ञान उत्पन्न होता है, तब असंख्य द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानके विषय होते हैं, और जब मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके किसी समुद्र व द्वीपमें तिर्यङ्गको असंख्यकालका अबधिज्ञान होता है तब संख्यात द्वीपसमुद्र उसके ज्ञानविषय होते हैं । एवं स्वयम्भूरमज द्वीप वा समुद्रके किसी तिर्यङ्गको जब असंख्यकालविषयक अबधिज्ञान होता है, तब उसको उस द्वीप या समुद्रके पकड़ेवाहा ज्ञान होता है] ॥ ६ ॥

इसप्रकार क्षेत्र और कालकी परस्पर अपेक्षाको रक्षते हुए वर्तमान अब पिछा वर्णन किया अब द्रव्य क्षेत्र, काल और भावमें किसकी बुद्धिसे किसकी बुद्धि होती है य किसकी नहीं होती इस विषयको कहते हैं—कालके बढनेपर चारोंकी बुद्धि होती है, क्षेत्रकी बुद्धिम कालकी भजना समझनी चाहिये, घाने कमी तो काल बढता है और कमी २ नहीं बढता है, इसप्रकार पिकस्य सम ज्ञाना चाहिये, द्रव्य और पर्यायकी बुद्धिमें क्षेत्र व काल पिकस्यसे कहने चाहिये याने कदाचित् बढते कदाचित् नहीं बढते हैं [क्यों कि क्षेत्रसे भी द्रव्य अति सूक्ष्म है, एक आकाशप्रदेशमें अनन्त स्कन्ध रहते हैं और द्रव्यसे भी पर्याय अत्यन्त सूक्ष्म है] ॥ ७ ॥

कौन किससे सूक्ष्म है इस बातको बिजाते हैं—

१ दो से बलाग्दी संख्याके रूपरूप करते हैं ।

काल सूक्ष्म होता है और कालसे क्षेत्र सूक्ष्मतर याने अधिक सूक्ष्म होता है; एक प्रमाण अंगुलमात्र क्षेत्रकी श्रेणिमें श्रेणिरूपसे प्रत्येक क्षेत्रप्रदेशको समयकी गणनासे गिना जाय तो असंख्य अवसर्पिणी पूरी हो जाती हैं [एक प्रमाणांगुलमात्र श्रेणिके आकाशखण्डमें अवसर्पिणीके जितने समय है उतने प्रमाणमें असंख्य आकाश-प्रदेश होते हैं अर्थात् एकसौ उत्पलपत्रके भेदनमें प्रत्येक पत्रके पीछे असंख्य समय लगते हैं, अतः काल सूक्ष्म है; कालसे क्षेत्र असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म है, क्षेत्रसे भी द्रव्य अनन्तगुण और द्रव्यसे भी अवधिज्ञान-विषयक पर्याये संख्यातगुण या असंख्यगुण अधिक सूक्ष्म होती हैं] ॥ ८ ॥

यह वर्द्धमान अवधिज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. १२ ॥

मूल—से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ? हीयमाणयं ओहिनाणं अप्प-सत्थेहिं अज्झवसायट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सच्चओ समंता ओही परिहायइ, से तं हीयमाणयं ओहिनाणं ॥ सू. १३ ॥

छाया—अथ किं तद्धीयमानकमवधिज्ञानं ? हीयमानकमवधिज्ञानम्—अप्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्तमानचारित्रस्य संक्लिश्यमानस्य संक्लिश्यमानचारित्रस्य सर्वतः समन्ताद्वधिः परिहीयते, तदेतद्धीयमानकमवधिज्ञानम् ॥ सू. १३ ॥

टीका—श्लो०-वह हीयमान अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०-अप्रशस्त-अशुभ विचारस्थानोंमें वर्तमान साधु जब संक्लिश्यमान अर्थात् अशुभ विचारोंसे शुभ परिणामके मलिन होनेपर संक्लिश्यमान चारित्रवाला होता है उस समय चारों ओरसे उसके ज्ञानकी अवधि हीन होती है, इसीको हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं ॥ सू. १३ ॥

मूल—से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं ? पडिवाइ ओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं वा, संखिज्जइभागं वा, बालगं वा, बालगपुहुत्तं वा, लिक्खं वा, लिक्खपुहुत्तं वा, जूयं वा, जूय-पुहुत्तं वा, जवं वा, जवपुहुत्तं वा, अंगुलं वा, अंगुलपुहुत्तं वा, पायं वा, पायपुहुत्तं वा, विहत्थिं वा, विहत्थिपुहुत्तं वा, रयणिं वा, रयणिपुहुत्तं वा, कुच्चिं वा, कुच्चिपुहुत्तं वा, धणुं वा, धणुपुहुत्तं वा, गाउयं वा, गाउयपुहुत्तं वा, जोयणं वा, जोयण-

पुनर्त्तं वा, जोअणसयं वा, जोयणसयपुनर्त्तं वा, जोयणसहस्स
वा, जोयणसहस्सपुनर्त्तं वा, जोयणलक्खं वा, जोयणलक्खपुनर्त्तं
वा, [जोयणकोटिं वा, जोयणकोटिपुनर्त्तं वा, जोयणकोटिकाकोटिं
वा, जोयणकोटिकाकोटिपुनर्त्तं वा, जोअणसंसिज्ज वा, जोअण-
संसिज्जपुनर्त्तं वा, जोअणअसंसिज्ज वा, जोअणअसंसिज्जपुनर्त्त
वा], उक्कोसेणं लोणं वा पासित्ताणं पडिवाइज्जा, से चं पडिवाइ
ओहिनाणं ॥ सू १४ ॥

छाया—अथ किं तत्प्रतिपाति—अवधिज्ञानं ? प्रतिपाति—अवधिज्ञानं
जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयमागं वा, संख्येयमागं वा, बालाग्र
वा, बालाग्रपृथक्त्वं वा, छिन्नां वा, छिन्नापृथक्त्वं वा, यूकां
वा, यूकापृथक्त्वं वा, पर्वं वा, यवपृथक्त्वं वा, अङ्गुलं वाऽङ्गुल
पृथक्त्वं वा, पादं वा, पादपृथक्त्वं वा, वितस्तिं वा, वितस्ति
पृथक्त्वं वा, रत्तिं वा, रत्तिपृथक्त्वं वा, कुक्षिं वा, कुक्षिपृथक्त्वं
वा, धनुर्वा धनुःपृथक्त्वं वा, गम्पूतं वा गम्पूतपृथक्त्वं वा,
योजनं वा, योजनपृथक्त्वं वा, योजनशतं वा, योजनशत
पृथक्त्वं वा, योजनसहस्रं वा, योजनसहस्रपृथक्त्वं वा, योजन-
लक्षं वा, योजनलक्षपृथक्त्वं वा, [योजनकोटिं वा, योजनकोटि-
पृथक्त्वं वा, योजनकोटीकोटिं वा, योजनकोटीकोटिपृथक्त्वं
वा, योजनसंख्येयं वा, योजनसंख्येयपृथक्त्वं वा, योजनाऽसंख्येयं
वा, योजनाऽसंख्येयपृथक्त्वं वा,] उक्कर्षेण लोके वा हृद्वा
प्रतिपतेत्, तदेतत्प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १४ ॥

टीका—श्री०—बह प्रतिपाति अवधिज्ञान किञ्चकार ई ! उ०—जघन्य अंगु-
लका असंख्यमाम वा सख्यातमान वासाम वा बालामपृथक्त्व, छिन्न अथवा
छिन्नपृथक्य यूकां (यु) वा यूकापृथक्त्व, जब वा जबपृथक्त्व, अंगुल
अथवा अंगुलपृथक्य पौष अथवा १ से ९ पौष परिमित क्षेत्र, वितस्ति (बैत) वा
वितस्ति—पृथक्य रत्ति (दाद्य) वा दस्तपृथक्त्व, कुक्षि—बी दाद्य वा कुक्षिपृथक्य
धनुष वा धनुपृथक्य, काश वा कानापृथक्त्व, योजन वा योजनपृथक्य
दातयोजन वा दातयोजनपृथक्य, योजनसहस्र वा योजनसहस्रपृथक्य,

योजनलक्ष वा योजनलक्षपृथक्त्व, यावत् संख्यात, असंख्यात वा उत्कृष्ट सम्पूर्ण लोकको देखकर जो फिर गिरजाता है वह प्रतिपाति अवधिज्ञान है ॥ सू. १४ ॥

मूल—से किं तं अपडिवाइ ओहिनाण ? अपडिवाइ ओहिनाणं जेणं अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं, से तं अपडिवाइ ओहिनाणं ॥ सू. १५ ॥

छाया—अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ? अप्रतिपात्यवधिज्ञानं येनाऽलोकस्यैकमप्याकाशप्रदेशं जानाति पश्यति तेन परमप्रतिपात्यवधिज्ञानं, तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥ सू. १५ ॥

टीका—वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान कौनसा है ? उ०—अप्रतिपाति अवधिज्ञान—जिस अवधिज्ञानसे आत्मा अलोकके एक मी आकाश-प्रदेशको जानता व देखता है, उसके बाद वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान होता है । यह अप्रतिपाति अवधिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू. १५ ॥

मूल—तं समासओ चउव्विहं पणत्तं, तंजहा-द्व्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ द्व्वओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणं-ताइं रूविद्व्वाइं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं सव्वाइं रूविद्व्वाइं जाणइ पासइ । खित्तओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाइं अलोगे लोगप्पमाणमित्ताइं खंडाइं जाणइ पासइ । कालओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं आवालिआए असंखिज्जइभागं जाणइ पासइ, उक्कोसेणं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ अईयमणागयं च कालं जाणइ पासइ । भावओ णं ओहिनाणी जहन्नेणं अणंते भावे जाणइ पासइ, उक्कोसेण वि अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणमणंतभागं जाणइ पासइ ॥ सू. १६ ॥

छाया—तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञतं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः (नु) अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति, उत्कर्षेण सर्वाणि रूपिद्रव्याणि जानाति पश्यति । क्षेत्रतोऽवधिज्ञानी जघन्येनाद्भुलस्याऽसंख्येय-

मार्गं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽसंख्येयान्यलोके लोकप्रमाण-
मात्राणि खण्डानि जानाति पश्यति । कालतोऽवबिज्ञानी जघन्ये
नाऽऽवलिकाया असंख्येयमार्गं जानाति पश्यति, उत्कर्षेणाऽ-
संख्येया उत्सर्पिणीरवसर्पिणी—अतीतमनागतञ्च कालं जानाति
पश्यति । भावतोऽवबिज्ञानी जघन्येनाऽनन्तान् भावान् जानाति
पश्यति, उत्कर्षेणाऽपि—अनन्तान् भावान् जानाति पश्यति,
सर्धभावानामनन्तमार्गं जानाति पश्यति ॥ सू. १६ ॥

टीका—पूर्वोक्त वह अवबिज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहामया है, जैसे—
द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), उन चार भेदोंमें द्रव्यसे
अवबिज्ञानी जघन्य—कमसेकम अनन्त रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है और
उत्कृष्ट सभी रूपी द्रव्योंको जानता व देखता है । क्षेत्रसे अवबिज्ञानी जघन्य
अंगुष्ठके असंख्यातभागमात्र क्षेत्रको जानता देखता है, उत्कृष्टसे सौकजितने
प्रमाणके असंख्यखंडोंको असोकमें जानता और देखता है । कालसे अवबिज्ञानी
जघन्य आकृतिकाके असंख्यभागमात्र कालकी बात जानता देखता है, उत्कृष्ट
असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप अतीत अनामत [मूल—मविष्य]
कालको जानता व देखता है, भावसे अवबिज्ञानी जघन्य अनन्तभावोंको
जानता देखता है और उत्कृष्टसे भी अनन्तभावों [पर्याय आदि] को जानता
व देखता है, सब भावोंके अनन्तबै भावको जानता देखता है ॥ सू. १६ ॥

मूल—गाथा—६६

ओही भवपञ्चइओ, गुणपञ्चइओ य वणिणओ दुविहो ।

तस्स य बहुविगप्पा, दृष्ये सिसे अ काले य ॥ १ ॥

६४ नेरइयदेवतित्थकरा य, ओहिस्सऽवाहिरा हुंति ।

पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति ॥ २ ॥

से र्त्त ओहिनाणपरुक्कस्स ।

छाया—गाथा—६७

अवधिर्मवप्रत्ययिको,—गुणप्रत्ययिकञ्च वर्णितो द्विविध ।

तस्य च बहुविकल्पा, दृष्ये क्षेत्रे च फाले च ॥ १ ॥

६४ नैरपिकदेवतीर्थकराञ्च, अवधेरवाह्या भवन्ति,

पश्यन्ति सर्वतः खलु, शोषा देशेन पश्यन्ति ॥ २ ॥

तदेतदवधिज्ञानप्रत्यक्षम् ।

टीका—पूर्वोक्त वर्णनका संग्रहगाथासे उपसंहार कहते हैं—भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक इसप्रकार अवधिज्ञान दो प्रकारका वर्णन किया गया है, द्रव्य क्षेत्र और कालके सम्बन्धसे उसके बहुत विकल्प होते हैं ॥ १ ॥ नैरयिक जीव देव और तीर्थकर अवधिज्ञानके अबाह्य होते हैं अर्थात् इनको नियमसे अवधिज्ञान होता है और ये निश्चय सभी ओरसे देखते हैं, शेष जीव एकदेशसे देखते हैं ॥ २ ॥ इसप्रकार यह अवधिज्ञान-प्रत्यक्षका वर्णन हुआ ।

मूल—से किं तं मणपज्जवनाणं ? मणपज्जवनाणे णं भंते ! किं मणु-
स्साणं उप्पज्जइ अमणुस्साणं ? गोयमा ! मणुस्साणं नो
अमणुस्साणं ।

छाया—अथ किं तन्मनःपर्यवज्ञानं ? मनःपर्यवज्ञानं नु भदन्त ! किं
मनुष्याणामुत्पद्यते, अमनुष्याणां [वा] ? गौतम ! मनुष्याणां
नो अमनुष्याणाम् ।

टीका—शि०-गुरुजी ! वह मनःपर्यवज्ञान कौनसा है ! मनःपर्यवज्ञान क्या मनुष्योंको उत्पन्न होता है या अमनुष्योंको याने मनुष्यभिन्न देव नारक तिर्यञ्चोंको ? उ०-गौतम ! यह ज्ञान मनुष्योंकोही होता है, अमनुष्योंको नहीं ।

मूल—जइ मणुस्साणं किं संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?,
गोयमा ! नो संमुच्छिममणुस्साणं गब्भवक्कंतियमणुस्साणं
उप्पज्जइ ।

छाया—यदि मनुष्याणां किं सम्मूर्च्छिममनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकमनु-
ष्याणां [वा] उत्पद्यते ? गौतम ! नो सम्मूर्च्छिममनुष्याणां
गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणामुत्पद्यते ।

टीका—यदि मनुष्योंको उत्पन्न होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्योंको उत्पन्न होता है या गर्भज मनुष्योंको ? गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्योंको नहीं किन्तु गर्भज मनुष्योंकोही उत्पन्न होता है ।

मूल—जइ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं किं कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतिय-
मणुस्साणं, अकम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अंतर-

१ गर्भसे उत्पन्न १०१ क्षेत्रके मनुष्योंके मलमूत्र आदि १४ स्थानोंमें सम्मूर्च्छनरूपसे पैदा होनेवाले मनुष्योंको सम्मूर्च्छिम-मनुष्य कहते हैं, इनका शरीर अगुलके असंख्य भागका होता है और अतर्भुद्धतके बहुत थोड़े समयमें ये मर जाते हैं । देखें । टिप्पण ।

दीवग-गर्भवक्कतियमणुस्साणं ? , गोयमा ! कम्ममूमिय-
गर्भवक्कतियमणुस्साणं, नो अकम्ममूमिय-गर्भवक्कतिय-
मणुस्साणं, नो अंतरदीवग-गर्भवक्कतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां किं कर्ममूमिजगर्मभ्युत्क्रान्तिक
मनुष्याणाम्, अकर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अन्त
र्हीपिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? , गौतम ! कर्ममूमिज-
गर्मभ्युत्क्रान्तिक-मनुष्याणां, नो अकर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिक-
मनुष्याणां, नो अन्तर्हीपिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर गर्मावकान्त मनुष्योंको होता है तो क्या कर्ममूमिज-
मर्मावकान्त मनुष्योंको या अकर्ममूमिज-गर्मावकान्त मनुष्योंको अथवा
अन्तरहीपके मर्मावकान्त मनुष्योंको होता है ? गौतम ! कर्ममूमिज-मर्मावकान्त
मनुष्योंको होता है किन्तु अकर्ममूमि वा अन्तरहीपके मर्मज मनुष्योंको यह
ममपर्यवहान नहीं होता है ।

मूल—जइ कम्ममूमिय गर्भवक्कतियमणुस्साणं, किं संसिज्जवासाउ
य-कम्ममूमिय-गर्भवक्कतियमणुस्साणं असंसिज्जवासाउय-
कम्ममूमिय-गर्भवक्कतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सस्सेज्जवासा
उय-कम्ममूमिय-गर्भवक्कतियमणुस्साणं, नो असंसिज्जवा
साउय-कम्ममूमिय-गर्भवक्कतियमणुस्साण ।

छाया—यदि कर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संस्येयवर्षा
पुष्क-कर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असस्येयवर्षा-
पुष्क-कर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम !
सस्येयवर्षापुष्क-कर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो
असस्येयवर्षापुष्क-कर्ममूमिज-गर्मभ्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर कर्ममूमिके मर्मज मनुष्योंको होता है तो क्या संख्यात
वर्षकी आयुवालेको होता है या असंख्यातवर्षकी आयुवालेको ? गौतम !
संख्यातवर्षकी आयुवालेको होता है किन्तु असंख्यातवर्षकी आयुवालेको
नहीं होता ।

मूल—जइ संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो अपज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अपर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अपर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—यदि संख्यातवर्षकी आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको मनःपर्यवहान होता है तो क्या पर्याप्तकको होता है या अपर्याप्तकको ? गौतम ! पर्याप्तकको होता है अपर्याप्तकको नहीं होता है ।

मूल—जइ पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, किं सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, मिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, सम्मामिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ? गोयमा ! सम्मदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो मिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नोसम्मामिच्छदिट्ठि—पज्जत्तग—संखेज्जवासाउय—कम्मभूमिय—गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्मव्युत्क्रान्तिकमनु-
 प्याणां, किं सम्यग्गृह्णति—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज
 गर्मव्युत्क्रान्तिकमनुप्याणां, मिथ्याहृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क
 कर्मभूमिज—गर्मव्युत्क्रान्तिकमनुप्याणां, सम्यक्मिथ्याहृष्टि—पर्या-
 त्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्मव्युत्क्रान्तिकमनुप्याणाम् ?
 गौतम ! सम्यग्गृह्णति—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्म
 व्युत्क्रान्तिकमनुप्याणाम् [उत्पद्यते], नो मिथ्याहृष्टि—पर्या-
 त्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—गर्मव्युत्क्रान्तिकमनुप्याणाम्,
 नो सम्यक्मिथ्याहृष्टि—पर्याप्तक—संख्येयवर्षायुष्क—कर्मभूमिज—
 गर्मव्युत्क्रान्तिकमनुप्याणाम् ।

टीका—अत्र पूर्वकथित पर्याप्त मनुष्यको होता है तो क्या सम्यग्गृह्णति
 पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्मज मनुष्यको होता है या मिथ्याहृष्टि पर्याप्त
 संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्मव्युत्क्रान्तिकको होता है अथवा मिथ्याहृष्टि
 पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्मज मनुष्यको होता है । गौतम ! सम्य-
 ग्गृह्णति पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्मज मनुष्यको होता है किन्तु
 मिथ्याहृष्टि व मिथ्याहृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्मज मनुष्यको
 नहीं होता है ।

मूळ—जह सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—गग्म-
 वक्कतियमणुस्साणं [उत्पज्जई], किं सजय—सम्मविद्धि—
 पञ्चत्तग—संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—गग्मवक्कतियमणुस्सा-
 णं, असंजय—सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—
 गग्मवक्कतियमणुस्साणं, संजयासंजय—सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—
 संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—गग्मवक्कतियमणुस्साणं ? गोपमा!
 सजय—सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—गग्म-
 वक्कतियमणुस्साणं, नो असंजय—सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—संलेज्ज-
 वासाठय—कम्मभूमिय—गग्मवक्कतियमणुस्साणं, नो संजयासं-
 जय—सम्मविद्धि—पञ्चत्तग—संलेज्जवासाठय—कम्मभूमिय—गग्मव-
 क्कतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो संयताऽसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमि गर्भज मनुष्यको यह ज्ञान होता है तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको अथवा संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है ? गौतम ! पूर्वोक्त ज्ञान संयत (साधु) सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क गर्भज मनुष्यको होता है, असंयत या संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्योंको नहीं होता ।

मूल—~~इ~~ संजय-सम्मदिट्टि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं [उप्पज्जई], किं पमत्तसंजय-सम्मदिट्टि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, अपमत्तसंजय-सम्मदिट्टि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ?) गोयमा ! अपमत्तसंजय-सम्मदिट्टि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं, नो पमत्तसंजय-सम्मदिट्टि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गब्भवक्कंतियमणुस्साणं ।

छाया—यदि संयतसम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् [उत्पद्यते], किं प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-

कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ! गौतम ! अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ।

टीका—अगर साधुओंको होता है तो क्या प्रमत्तसंयत (साधु)को होता है, या अप्रमत्तसंयत (साधु) को ! गौतम ! यह ज्ञान अप्रमत्तसंयत (साधु)को होता है प्रमत्त साधुको नहीं होता ।

सूत्र—जइ अप्रमत्तसंयत-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संसेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गम्भवक्कंतिमणुस्साणं, किं इड्डीपत्त-अप्रमत्तसंयत-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संसेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गम्भवक्कंतिमणुस्साणं, अणिड्डीपत्त-अप्रमत्तसंयत-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संसेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गम्भवक्कंतिमणुस्साणं ? गोयमा ! इड्डीपत्त-अप्रमत्तसंयत-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संसेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गम्भवक्कंतिमणुस्साणं, नो अणिड्डीपत्त-अप्रमत्तसंयत-सम्मदिट्ठि-पज्जत्तग-संसेज्जवासाउय-कम्मभूमिय-गम्भवक्कंतिमणुस्साण मणपज्जवनाणं समुप्पज्जइ ॥ सू १७ ॥

छाया—यदि अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, किं अद्विषाताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम्, अनुद्विषाताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणाम् ? गौतम ! अद्विषाताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां, नो अनुद्विषाताऽप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्याणां मनःपर्यवज्ञानं समुत्पद्यते ॥ सू १७ ॥

टीका—यदि अप्रमत्त संयतको यह ज्ञान पैदा होता है तो क्या अद्विषाता अप्रमत्त साधुको होता है या अद्विषाता-कृषिपद्मन्य अप्रमत्त साधुको

होता है ! गौतम ! ऋद्धि-आमर्षौषध्यादि शक्ति-प्राप्त अप्रमत्त संयतकोही मनः-पर्यवज्ञान होता है, ऋद्धिशून्य अप्रमत्त साधुओंको यह ज्ञान उत्पन्न नहीं होता [मनोवर्गणासे गृहीत मनोयोग्य पुद्गलोंका आश्रयण-अवलम्बन लेकर मान-सिक भावोंको जानना इसको मनः पर्यवज्ञान कहते हैं] ॥ सू. १७ ॥

मनःपर्यवज्ञानके प्रकार—

मूल— तं च दुविहं उप्पज्जइ, तं जहा—उज्जुमई य विउलमई य, तं समा-सओ चउव्विहं पन्नत्तं, तं जहा—द्ववओ, खित्तओ, कालओ, भाव-ओ, तत्थ द्ववओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ, ते चेव विउलमई अब्भहियतराए विउलतराए विसुद्ध-तराए वितिमिरतराए जाणइ पासइ । खित्तओ णं उज्जुमई य जह-न्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेद्विल्ले खुड्डगपयरे, उड्ढं जाव जोइ-सस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तिसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचिंदियाणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहियतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतराणं खेत्तं जाणइ पासइ । कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं उक्को-सेणावि पलिओवमस्स असंखिज्जय भागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतराणं विउल-तराणं विसुद्धतराणं वितिमिरतराणं (कालं) जाणइ पासइ । भावओ ण उज्जुमई अणंते भावे जाणइ पासइ, सव्वभावाणं अणंतभागं जाणइ पासइ, तं चेव विउलमई अब्भहियतराणं विउलतराणं विसुद्धतराणं वितिमिरतराणं (भावं) जाणइ पासइ ।

गाहा—६५ मणपज्जवनाणं पुण, जणमणपरिचिंतिअत्थपागड्डणं । माणुसखित्तनिबद्धं, गुणपच्चइअं चरित्तवओ ॥ १ ॥

से तं मणपज्जवनाणं ॥ सू १८ ॥

छाया—तच्च द्विविधमुत्पद्यते, तद्यथा—ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, तत्र समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो मावतः, तत्र द्रव्यतो नु ऋजुमतिरनन्तान् अनन्तप्रदेशिकान्

स्कन्धान् जानाति पश्यति, तान् चैव विपुलमतिरम्यधिकतरान्
 विपुलतरान् विशुद्धतरकान् वितिमिरतरकान् जानाति पश्यति।
 क्षेत्रतो नु ऋजुमतिश्च जघन्येनाऽङ्गुलस्याऽसंख्येयभागम्, उत्कर्षेणाऽधो यावत्स्या रत्नप्रभाया' पृथिव्या उपरितनानधस्त-
 नान् सुल्लक्षप्रतरान्, ऊर्ध्वं यावज्ज्योतिष्कस्योपरितनतलम्,
 तिर्यग्यावदन्तोमनुष्यक्षेत्रे-अर्द्धसुतीपिपु, द्वीपसमुद्रेषु, पञ्च
 वशासु कर्मभूमिषु, त्रिंशत्कर्मभूमिषु, पट्टपंचाशदन्तर्द्वीपेषु,
 संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् जानाति
 पश्यति, तत्रैव विपुलमतिरर्द्धसुतीयैरङ्गुलैरम्यधिकतरं विपुलतरं
 विशुद्धतरं वितिमिरतरं क्षेत्रं जानाति पश्यति। कालतो नु ऋजु
 मतिर्जघन्येन पल्योपमस्याऽमख्येयभागमुत्कर्षेणाऽपि पश्यति
 पमस्याऽसंख्येयभागमतीतमनागतं वा कालं जानाति पश्यति,
 तत्रैव विपुलमतिरम्यधिकतरकं विपुलतरकं विशुद्धतरकं
 वितिमिरतरकं (कालं) जानाति पश्यति। भावतो नु ऋजुमति-
 रनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, सर्वभावानामनन्तमार्गं
 जानाति पश्यति तत्रैव विपुलमतिरम्यधिकतरकं विपुलतरकं
 विशुद्धतरकं वितिमिरतरकं जानाति पश्यति।

गाथा-६५ मनःपर्यवज्ञानं पुनः-र्जनमनःपरिचिन्तितार्थप्रकटनम्।

मानुषक्षेत्रनिघञ्जं, गुणप्रत्ययिकं चरित्रवत ॥ १ ॥

तदेतन्मनःपर्यवज्ञानम् ॥ सू. १८ ॥

टीका-और वह मनःपर्यवज्ञान दो प्रकारका उत्पन्न होता है, जैसे-ऋजुमति
 और विपुलमति दोनों प्रकारवाला वह मनःपर्यवज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका
 कहा गया है, जैसे-मध्य (१) क्षेत्र (१) काल (१) और भाव (४) है, इनमें
 मध्यकी अपेक्षासे ऋजुमति अनन्तप्रदेशी अनन्त स्कन्धोंको जानता देखता है
 और उसीको विपुलमति कुछ अधिक विपुल और विशुद्ध तथा अ-प्रकाररहित
 जानता व देखता है। क्षेत्रसे ऋजुमति जघन्य अंगुलके अर्द्धस्यातमाम और
 उक्तपु नीचे-इस रत्नप्रभापृथ्वीके उपरी भागके नीचेके छोटे प्रतरोंतक जानता
 है, उपर ज्योतिष्क बिमानके उपरी तलपर्यन्त तथा तिर्यक्-मनुष्यक्षेत्रके भीतर
 अर्द्ध द्वीपसमुद्रपर्यन्त घाने पन्द्रह कर्मभूमि तीस अकर्मभूमि और छप्यम
 अन्तर्द्वीपोंमें रहे हुए सही वधेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके मनोयत भावोंको जानता
 व देता है, और विपुलमति उसीको अर्द्ध अंगुल अधिक विपुल विशुद्ध

तथा अन्धकाररहित क्षेत्रकी दृष्टिसे जानता व देखता है। कालसे ऋजुमति जघन्य और उत्कृष्टसे भी पत्योपमके असंख्यातवाँ भाग भूत व भविष्यकालको जानता देखता है, और विपुलमति उसीको कुछ अधिक विस्तारयुक्त तथा विशुद्ध जानता व देखता है। भावसे ऋजुमति अनन्त भावोंको जानता देखता है, (विशेष स्पष्ट—) सभी भावोंके अनन्तवें भागको जानता देखता है, और विपुलमति उसीको कुछ अतिविस्तीर्ण तथा विशुद्धतर जानता व देखता है। उपसंहार—गाथार्थ—६५ मनःपर्यवज्ञान सभी जीवोंके मनमें सोचे हुए अर्थको प्रकट करनेवाला है, और मनुष्यक्षेत्रमें सीमित तथा चारित्रयुक्त साधुके क्षयोपशम गुणसे उत्पन्न होनेवाला है। इसप्रकार मनःपर्यवज्ञानका वर्णन हुआ ॥ सू १८ ॥

मूल—से किं तं केवलनाणं ? केवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—
भवत्थकेवलनाणं च सिद्धकेवलनाणं च ।

छाया—अथ किं तत् केवलज्ञानम् ? केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञत्तं, तद्यथा—
भवस्थकेवलज्ञानञ्च सिद्धकेवलज्ञानञ्च ।

टीका—वह केवलज्ञान किस प्रकार है ? केवलज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—भवस्थकेवलज्ञान और सिद्धकेवलज्ञान ।

मूल—से किं तं भवत्थकेवलनाणं ? भवत्थकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं, तं
जहा—सजोगिभवत्थकेवलनाणं च अजोगिभवत्थकेवलनाणं च ।

छाया—अथ किं तद् भवस्थकेवलज्ञानम् ? भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञ-
त्तम्, तद्यथा—सयोगिभवस्थकेवलज्ञानञ्च, अयोगिभवस्थकेवल-
ज्ञानञ्च ।

टीका—वह भवस्थ केवलज्ञान कौनसा है ? उ०—भवस्थ केवलज्ञान (संसारमें रहे हुए अर्हन्तोंका केवलज्ञान) दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—सयोगिभवस्थकेवलज्ञान और अयोगिभवस्थकेवलज्ञान ।

मूल—से किं तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ? सजोगिभवत्थकेवलनाणं
दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च
अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं च । अहवा चरमसमयस-
जोगिभवत्थकेवलनाणं च अचरमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणं
च, से तं सजोगिभवत्थकेवलनाणं ।

छाया—अथ किं तत् सयोगिमवस्थकेवलज्ञानम् ? सयोगिमवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च अप्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च । अथवा चरमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च अचरमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतत् सयोगिमवस्थकेवलज्ञानम् ।

टीका—यह सयोगिमवस्थकेवलज्ञान किस प्रकार है । उ०—सयोगिमवस्थकेवलज्ञान भी प्रकारका है, जैसे—प्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान । अथवा सयोगिमवस्थकेवलज्ञानके दूसरी तरफसे दो प्रकार हैं, जैसे—चरमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान और अचरमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान । इसप्रकार यह सयोगिमवस्थकेवलज्ञान हुआ ।

मूल—से किं तं अजोगिमवस्थकेवलनार्ण ? अजोगिमवस्थकेवलनार्णं बुविर्हं पण्णत्तं, तं जहा—पहमसमयअजोगिमवस्थकेवलनार्णं च अपहमसमयअजोगिमवस्थकेवलनार्णं च । अह्वा चरमसमयअजोगिमवस्थकेवलनार्णं च अचरमसमयअजोगिमवस्थकेवलनार्णं च, से तं अजोगिमवस्थकेवलनार्णं, से तं मवस्थकेवलनार्णं ॥ सू० १९ ॥

छाया—अथ किं तत्सयोगिमवस्थकेवलज्ञानम् ? अयोगिमवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—प्रथमसमयाऽयोगिमवस्थकेवलज्ञानं चाऽप्रथमसमयाऽयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च । अथवा चरमसमयाऽयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्चाऽचरमसमयाऽयोगिमवस्थकेवलज्ञानञ्च, तदेतत्सयोगिमवस्थकेवलज्ञानम्, तदेतत् मवस्थकेवलज्ञानम् ॥ सू० १९ ॥

टीका—यह अयोगिमवस्थकेवलज्ञान भीनसा है । उ०—अयोगिमवस्थकेवलज्ञान (भी) भी प्रकारका कहा गया है, जैसे—प्रथमसमयका अयोगिमवस्थकेवलज्ञान और अप्रथमसमयका अयोगिमवस्थकेवलज्ञान, अथवा चरमसमय अयोगिमवस्थकेवलज्ञान और अचरमसमय अयोगिमवस्थकेवलज्ञान (इस प्रकार भी दो भेद होते हैं), यह हुआ अयोगिमवस्थकेवलज्ञान, इसके साथ मवस्थकेवलज्ञान भी पूर्ण हुआ ॥ सू० १९ ॥

मूल—से किं तं सिद्धकेवलनाणं ? सिद्धकेवलनाणं दुविहं पण्णत्तं,
तंजहा—अणंतरसिद्धकेवलनाणं च परंपरसिद्धकेवलनाणं च
॥ सू. २० ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानम् ? सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं
प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानञ्च परम्परसिद्ध-
केवलज्ञानञ्च ॥ सू. २० ॥

टीका—वह सिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है ? सिद्धकेवलज्ञान दो प्रकार-
का कहा गया है, जैसे—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान और परम्परसिद्धकेवल-
ज्ञान ॥ सू. २० ॥

मूल—से किं तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ? अणंतरसिद्धकेवलनाणं
पण्णरसविहं पण्णत्तं, तं जहा—तित्थसिद्धा (१), अतित्थ-
सिद्धा (२), तित्थयरसिद्धा (३), अतित्थयरसिद्धा (४),
सयंबुद्धसिद्धा (५), पत्तेयबुद्धसिद्धा (६), बुद्धबोहियसिद्धा
(७), इत्थिलिंगसिद्धा (८), पुरिसालिंगसिद्धा (९), नपुंसग-
लिंगसिद्धा (१०), सलिंगसिद्धा (११), अन्नलिंगसिद्धा
(१२), गिहिलिंगसिद्धा (१३), एगसिद्धा (१४), अणेग-
सिद्धा (१५), से त्तं अणंतरसिद्धकेवलनाणं ॥ सू. २१ ॥

छाया—अथ किं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानम् ? अनन्तरसिद्धकेवल-
ज्ञानं पञ्चदशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—तीर्थसिद्धाः (१), अतीर्थ-
सिद्धाः (२), तीर्थकरसिद्धाः (३), अतीर्थकरसिद्धाः (४),
स्वयंबुद्धसिद्धाः (५), प्रत्येकबुद्धसिद्धाः (६), बुद्धबोधित-
सिद्धाः (७), स्त्रीलिङ्गसिद्धाः (८), पुरुषलिङ्गसिद्धाः (९),
नपुंसकलिङ्गसिद्धाः (१०), स्वलिङ्गसिद्धाः (११), अन्य-
लिङ्गसिद्धाः (१२), गृहिलिङ्गसिद्धाः (१३), एकासिद्धाः
(१४), अनेकसिद्धाः (१५), तदेतदनन्तरसिद्धकेवल-
ज्ञानम् ॥ सू. २१ ॥

टीका—वह अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है ? अनन्तरसिद्धकेवल-
ज्ञान पन्द्रह प्रकारका कहा गया है, जैसे—तीर्थसिद्ध (१), अतीर्थसिद्ध

(१), तीर्थकरसिद्ध (१), अतीर्थकरसिद्ध (४), स्वयंबुद्धसिद्ध (५), प्रत्येक बुद्धसिद्ध (६) बुद्धबोधितसिद्ध (७), श्रीलिङ्गसिद्ध (८), पुरुषलिङ्गसिद्ध (९), मयुषकलिङ्गसिद्ध (१०), स्वलिङ्गसिद्ध (११), अन्यालिङ्गसिद्ध (११) युद्धलिङ्गसिद्ध (११), एकसिद्ध (१४) अनेकसिद्ध (१५), इतिका केवल ज्ञान अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान है, यह हुआ अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान ॥ सू. २१ ॥

मूल—से किं तं परंपरसिद्धकेवलनाण ? परंपरसिद्धकेवलनाणं अणे गविहं पण्णत्तं, त जहा—अपइम समयसिद्धा, दुसमयसिद्धा, तिसमयसिद्धा, चउसमयसिद्धा, जाव वससमयसिद्धा, संसिज्जसमयसिद्धा, अससिज्जसमयसिद्धा, अणंतसमयसिद्धा, से चं परंपरसिद्धकेवलनाण, से चं सिद्धकेवलनाणं ।

तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, त जहा—व्वओ, सित्तओ, कालओ, मावओ, तत्थ व्वओ णं केवलनाणी सव्वव्व्वाइ आणइ पासइ । सित्तओ णं केवलनाणी सव्वं सित्तं जाणइ पासइ । कालओ णं केवलनाणी सव्वं काल जाणइ पासइ । मावओ णं केवलनाणी सव्वे मावे जाणइ पासइ ।

गाहा—६६

अह सव्वव्वपरिणाम,—मावविण्णत्तिकारणमणंतं ।

सासयमप्पच्चिवाइ, एगविहं केवलं नाणं ॥ सू. २२ ॥

छाया—अथ किं तत्परम्परसिद्धकेवलज्ञानम् ? परम्परसिद्धकेवलज्ञान-मनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अप्रथमसमयसिद्धा, द्विसमयसिद्धा, त्रिसमयसिद्धा, चतुसमयसिद्धा, यावद्दशसमयसिद्धा, संस्येयसमयसिद्धा, असंस्येयसमयसिद्धा अनन्तसमयसिद्धा, तदेतत्परम्परसिद्धकेवलज्ञान, तदेतत्सिद्धकेवलज्ञानम् ।

तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—व्वयत्तं, क्षेत्रत्तं, कालतो, मावत्तं, तत्र व्वयत्तं केवलज्ञानी सर्वव्वव्व्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रत्तं केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालं जानाति पश्यति, मावत्तं केवलज्ञानी सवान् भावान् जानाति पश्यति ।

गाथा-६६

अथ सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणमनन्तम् ।

शाश्वतमप्रतिपाति, एकविधं केवलं ज्ञानम् ॥ सू. २२ ॥

टीका—वह परम्परसिद्धकेवलज्ञान किस प्रकार है ? उ०- परंपरसिद्ध-केवलज्ञान अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे-अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमय-सिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत् दशसमयसिद्ध, संख्येयसमय-सिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध, अनन्तसमयके सिद्ध, इस प्रकार इनका केवलज्ञान परम्परसिद्धकेवलज्ञान कहाता है, यह परम्परसिद्धकेवलज्ञान हुआ, साथही भवस्थ व परम्परकेवलज्ञानके वर्णनसे यह सिद्धकेवलज्ञान भी पूर्ण हो चुका ।

ऊपर कहा गया वह केवलज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका है, जैसे-द्रव्य (१) क्षेत्र (२) काल (३) और भाव (४), इनमें द्रव्यसे केवलज्ञानी सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे केवलज्ञानी लोकालोकरूप सब क्षेत्रको जानता व देखता है, कालसे केवलज्ञानी सब काल-तीनों काल-के द्रव्योंको जानता और देखता है, भावसे केवलज्ञानी अनन्तपटर्थात्मक द्रव्योंके सब भावोंको जानता व देखता है । उपसंहार-गाथा-६६ सभी द्रव्योंके परिणाम और भाव-औद्यिकादि व वर्णगन्धादिको जाननेका कारण है अर्थात् सब द्रव्योंके परिणाम और भावोंको जाननेवाला है, अन्तरहित तथा शाश्वतसदा-कालस्थायी व अप्रतिपाति-नहीं गिरनेवाला ऐसा यह केवलज्ञान एकप्रकारका है ॥ सू. २२ ॥

मूल-६७

केवलनाणेणऽत्थे, नाउं जे तत्थ पणवणजोगे ।

ते भासइ तित्थयरो, वइजोगसुअं हवइ सेसं ॥ १ ॥

से तं केवलनाणं, से तं नोइंदियपच्चक्खं, से तं पच्चक्खनाणं
॥ सू. २३ ॥

छाया-६७

केवलज्ञानेनार्थान्, ज्ञात्वा ये तत्र प्रज्ञापनयोग्याः ।

तान् भाषते तीर्थकरो, वाग्योगश्रुतं भवति शेषम् ॥ १ ॥

तदेतत्केवलज्ञानं, तदेतन्नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, तदेतत्प्रत्यक्षज्ञानम्
॥ सू. २३ ॥

टीका—केवलज्ञानसे सब पदार्थोंको जानकर उनमें जो पदार्थ वर्णनयोग्य हैं तीर्थकर महाराज उनको वर्णन करते हैं, शेषभाव वाग्योगश्रुत होता है यह हुआ केवलज्ञान, इसके साथ ही यह नोइन्द्रियप्रत्यक्ष व प्रत्यक्षज्ञानका भी वर्णन हुआ ॥ सू. २३ ॥

मूल—से किं तं परुक्खनानाणं ? परुक्खनानाणं बुविहं पण्णत्त, तं जहाँ-
आमिणिबोहियनाणपरुक्खं च, सुयनाणपरुक्खं च, जत्थ
आमिणिबोहियनाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाण तत्थामिणि-
बोहियनाणं, वोऽवि एयाइ अण्णमण्णमणुगयाइ, तह्ववि पुण
इत्थ आयरिआ नाणत्तं पण्णवयति, अमिणिबुज्झइ त्ति आमि
णिबोहियनाणं सुणेइत्ति सुर्यं, मइपुब्बं जेण सुअ न मई सुय-
पुच्चिवा ॥ सू. २४ ॥

छाया—अथ किं तत्परोक्षज्ञानम् ? परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-
आमिनिबोधिकज्ञानपरोक्षञ्च श्रुतज्ञानपरोक्षञ्च, यथाामिनि-
बोधिकज्ञान तत्र श्रुतज्ञान, यत्र श्रुतज्ञानं तत्रामिनिबोधिकज्ञानं,
हे अपि एते अन्यदन्पवज्जगते, तथापि पुनरत्राऽऽचार्या नानात्वं
प्रज्ञापयन्ति—अमिनिबुध्यत इत्यामिनिबोधिकज्ञानम्, श्रुणोति-
इति श्रुतम् मतिपूर्वं येन श्रुतं न मतिः श्रुतपूर्विका ॥ सू. २४ ॥

टीका— वह परोक्षज्ञान कौनसा है ! परोक्षज्ञान दो प्रकारका कहा गया है,
जैसे—आमिनिबोधिकज्ञानपरोक्ष और श्रुतज्ञानपरोक्ष यहाँ आमिनिबो-
धिकज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, और यहाँ श्रुतज्ञान होता है यहाँ आमिनिबोधिकज्ञान
होता है, इस प्रकार ये दोनों परस्पर अनुगत हैं, तो भी फिर आचार्य्य यहाँ
विशेषता बिलाते हैं—अभिमुख आये हुए पशुपुष्पा जो नियमित बोध करता
है उस (इन्द्रिय और मनसे होयेवाले) ज्ञानको आमिनिबोधिकज्ञान कहते हैं,
सुमा आय वह श्रुतज्ञान है, जिसलिये श्रुतज्ञान (शब्दजन्य ज्ञान) मतिपूर्वक
होता है किन्तु मति श्रुतपूर्विका नहीं होती, इसलिये मति श्रुत दोनोंमि मति
ज्ञानका ही पूर्वप्रयोग होता है ॥ सू. २४ ॥

मूल—अविसेसिया मई महनानाणं च मइअण्णाणं च । विसेसिया
सम्मदिट्ठिस्स मई महनाण, मिच्छदिट्ठिस्स मई मइअण्णाणं ।
अविसेसियं सुर्यं सुयनाण च सुयअण्णाणं च । विसेसिअं सुर्यं
सम्मदिट्ठिस्स सुअं सुयनाणं, मिच्छदिट्ठिस्स सुर्यं सुय
अण्णाणं ॥ सू. २५ ॥

छाया—अविशेषिता मतिर्मतिज्ञानञ्च, मत्स्यज्ञानञ्च, विशेषिता सम्पगृहे
मतिर्मतिज्ञानं, मिच्छादृष्टेर्मतिमत्स्यज्ञानम् । अविशेषितं श्रुतं श्रुत

ज्ञानञ्च श्रुताज्ञानञ्च, विशेषितं श्रुतं सम्यग्दृष्टेः श्रुतं श्रुतज्ञानं,
मिथ्यादृष्टेः श्रुतं श्रुताज्ञानम् ॥ सू २५ ॥

टीका—विना विशेषताकी मति मतिज्ञान और मतिअज्ञान उभयरूप है, विशेषतायुक्त वही मति सम्यग्दृष्टिके लिए मतिज्ञान है व मिथ्यादृष्टिकी मति, मति-अज्ञान कहाती है। विशेषताकी अपेक्षासे रहित श्रुत श्रुतज्ञान और श्रुतअज्ञान उभयरूप कहाता है, एवं विशेषता पाकर वही सम्यग्दृष्टिका श्रुत श्रुतज्ञान तथा मिथ्यादृष्टिका श्रुत श्रुत-अज्ञान कहाता है ॥ सू २५ ॥

मूल—से किं तं आभिणिबोहियनाणं ? आभिणिबोहियनाणं द्विविहं
पण्णत्तं, तं जहा—सुयनिस्सियं च, असुयनिस्सियं च । से किं तं
असुयनिस्सियं ? असुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा—

गाहा-६८

उप्पत्तिया १ वेणइआ २, कम्मया ३ परिणामिया ४ ।

बुद्धी चउव्विहा वुत्ता, पंचमा नोवल्लर्म्मई ॥ सू २६ ॥

छाया—अथ किं तदाभिनिबोधिकज्ञानम्, आभिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं
प्रज्ञप्तं, तद्यथा—श्रुतनिश्चितञ्च, अश्रुतनिश्चितञ्च । अथ किं तद-
श्रुतनिश्चितम् ? अश्रुतनिश्चितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

गाथा-६८

औत्पत्तिकी १ वैनयिकी २, कर्मजा ३ पारिणामिकी ४ ।

बुद्धिश्चतुर्विधोक्ता, पंचमी नोपलभ्यते ॥ सू २६ ॥

टीका—वह आभिनिबोधिकज्ञान किस प्रकार है ? उ०—आभिनिबोधिक
ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—श्रुतनिश्चित और अश्रुतनिश्चित। स्वल्प
याच्य होनेसे पहले अश्रुतनिश्चित मतिज्ञानको कहते हैं—वह अश्रुतनिश्चित मति
कैसी है ? उ०—अश्रुतनिश्चित मति चार प्रकारकी कही गई है, जैसे—गाथार्थ-
औत्पत्तिकी (१) वैनयिकी (२) कर्मजा (३) पारिणामिकी (४) इस तरह
बुद्धि चार प्रकारकी कही गई है, पांचवाँ प्रकार नहीं मिलता है ॥ सू २६ ॥

मूल—गाहा-६९

पुव्वमदिट्ठमस्सुय,—मवेइय—तक्खण-विसुद्धगहियत्था ।

अव्वाहयफलजोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥ १ ॥

१—कम्मिया—इति समितिसुद्धितमल्लयगिरिवृत्तौ ।

३ आ नि गा ९३८—त ५१ पर्यन्ता १४ गाथा बुद्धि-सिद्ध-प्रतिपादके प्रकारणे

छाया-गाथा-६९

पूर्वमहटाऽमुताऽवेदिततत्क्षणविशुद्धगृहीतार्था ।

अभ्याहतफलयोगा, बुद्धिरौत्पत्तिकी नाम ॥ १ ॥

औत्पत्तिकी-पहले बिना कैसे विना सुने और बिना जाने पढ़ाईको तरकाखटी (उसी क्षणमें) विशुद्ध यथाधरूपसे ग्रहण करनेवाली तथा अबाधित फलके योगवाली बुद्धि औत्पत्तिकी नामवाली है याने (जो बुद्धि पहले विना कैसे, विना सुने विना जाने विषयोंको उसी क्षणमें विशुद्ध यथावस्थित ग्रहण करती है य अबाधितफलके सम्बन्धवाली है वह औत्पत्तिकी नामकी बुद्धि है) अर्थात् दादाभ्यास य अजुमव आदिके बिना केवल उत्पातहीस जो उत्पात होती है यह औत्पत्तिकी बुद्धि कहाती है।

औत्पत्तिकी बुद्धिके विषयमें रोहक हमारेके ११ ब्रह्मन्तोंका पहला उदाहरण गाथारूपसे कहते हैं—

मूल-गाथा-७०

मस्त्रसिल १ मिठ २ कुक्कुड ३, तिल ४ घालुप ५ हस्त्रि ६
अगड ७ वणसठे ८ । पायस ९, अह्मा १० पसे ११, खाड
हिला १२ पत्रपियरो य १३ ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७०

भरतशिसा १ मेण्ड २ कुक्कुट ३, तिल ४ वालुका ५ हस्त्यगड
६, ७ वनखण्डा ८ । पायसाऽतिग ९, १० पत्राणि ११,
खाडहिला १२ पत्रपितरश्च १३ ॥ २ ॥

टीका-गाथार्थ-७०-भरत शिसा-उज्जयिनीके पास नटोंका एक गांव था जिसमें भरत नामका एक नट रहता था। उसकी स्त्री किसी रोगसे मर गई किन्तु पीछे रोदा नामके एक छोटे बालकको छोड गई, तब उस भरत-नटने अपनी य शिशु रोदाकी सेवाके लिए वृक्षी शायी की। किन्तु वह सपत्नी माँ रोहकके साथ प्रेमप्रवणार ठीक २ नहीं करती, जिससे बुझी हो रोहकने एक दिन उसको कहा कि माँ! तू मेरेस बराबर प्रेमका व्यवहार नहीं करती यह अच्छा नहीं है। इसपर माँ बोली कि अरे रोहक! मैं अगर ठीक नहीं करती तो तू मर ब्या करेगा। रोहक बोला कि मैं ऐसा करूंगा जिससे तुमको मेरे पाँपपर गिरना पड़ेगा। अरे! पाँपपर गिरानेवाले। बर बने हो। जा तुसे जो करना हो करलना पसा कदके माँ चुप हो गई। और रोहक भी अपनी बात पूरी करनेका अवसर पाने लगा, एकदात कुछ समयके बाद यह अपने पिताके पास मोया हुआ था अचानक बालक लगा कि ओ काका! यह कैसे मोया (अन्य पुरुष) बीटा जाता है बालककी यह बात तुमकर नटको अपनी स्त्रीके

प्रति शंका हो गई। उसी रोजसे वह स्त्रीके साथ अच्छी तरह संभाषण भी नहीं करता, तथा दूर होकर सोने लगा। इस प्रकार पतिको अपनेसे मुह मोडे हुए देखकर वह समझ गई कि यह सब बालककी ही करामात है, बिना इसको प्रसन्न किए काम नहीं चलेगा, ऐसा सोचकर उसने अनुनय पूर्वक भविष्यके सद्व्यवहारका विश्वास दिलाते हुए बालकको संतुष्ट किया, प्रसन्न होकर रोहकने भी पिताकी शंकाको दूर करनेके लिए किसी चांदनी रातमें अंगुलीके अग्रभागसे अपनी छायाको दिखाते हुए पितासे बोला कि ओ पिता! देखो यह गोहा (अन्य पुरुष) जा रहा है। सुनते ही उस नटने गोहा (अन्य पुरुष) को मारनेके लिए क्रोधमे आकर म्यानसे तलवार निकाली, और बोला कि कहाँ है वह लंपट गोहा, जो मेरे घरमे धर्म नष्ट करता है! दिखा, अभी उसको इस लोकसे विदा कर देता हू। रोहकने उत्तरमें अंगुलीसे अपनी छायाको दिखाते हुए कहा कि वह गोहा है। छायाको गोहा कहके समझानेकी बालचेष्टा देखते ही भरत तो लज्जित हो गया और सोचने लगा कि अहो! मैंने झूठेही बालकके कहनेसे अपनी स्त्रीके साथ अप्रीतिका व्यवहार किया। इस प्रकार पश्चात्तापके बाद भरत पूर्ववत् ही स्त्रीसे प्रेमव्यवहार करने लगा, तब रोहाने सोचा कि मेरे दुर्व्यवहारसे अप्रसन्न हुई माता कदाचित् मुझे विष आदि देकर मार देगी, इसलिए अब अकेले भोजन नहीं करना चाहिये, ऐसा सोचके वह अपना खाना पीना पिताके साथ ही करता तथा सर्वदा पिताकेही साथ रहता। एक दिन कार्यवश रोहा अपने पिताके साथ उज्जयिनी गया। नगरीको देवपुरीकी तरह देखके रोहा बहुत विस्मित हुआ और अपने मनमें उसका पूर्ण चित्र खींचलिया, पीछे जब पिताके साथ घरकी ओर आने लगा तब नगरीके बाहर निकलते ही भरतको कुछ भूली हुई चीजकी याद आई और उसे लेनेके लिए रोहकको सिप्राके तीरपर बिठाके वह फिर शहरमें चला गया। इसी बीचमे रोहाने नदीके किनारेकी बालूपर अपनी बालचचलतासे कोटपूर्ण नगरी लिख डाली। इधर फिरनेको आया हुआ राजा संयोगवश साथियोंके मार्ग भूल जानसे अकेला होकर उस रास्तेसे चला आया, उसको अपनी लिखी हुई नगरीके बीचसे आते देख रोहा बोला—ऐ राजपुत्र! इस रास्तेसे मत आओ, राजा बोला क्यों क्या है! रोहक बोला—देखते नहीं! यह राजभवन है, जहाँ हरएक प्रवेश नहीं कर सकता। यह सुनते ही कौतुकवश ही राजाने उसकी लिखी हुई सारी नगरी देखी और उस बालकसे पूछा—अरे! पहले भी तुमने कभी यह नगरी देखी है? या नहीं! कभी नहीं, आजही भ्रामसे यहाँ आया हूँ, रोहक बोला। बालककी अपूर्व धारणाशक्ति व चातुरीकी देखकर वह राजा चकित हो गया और मनही मन उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगा। कुछ समयके बाद राजाने रोहकसे पूछा—वत्स! तुम्हारा नाम क्या है? और कहाँ रहते हो? वह बोला—राजन्! मेरा नाम रोहक है और मैं इस पासके नदोंके भ्राममें रहता

हैं। इस तरह दोनोंकी बात बलही रही थी कि इसी बीचमें रोहकका पिता आ पहुँचा और दोनों पितापुत्र भ्रामको चलेगए। राजा भी अपने भवम चला आया और सोचने लगा कि मुझको एक कम पौंचसी मंत्री हैं, यदि मन्त्रिमंडलमें मूर्धन्य अत्यन्त बुद्धिमान एक बड़ा मन्त्रि और दो आये तो मेरा राज्य दुखसे चलेगा। क्यों कि अन्य बसके कम रहते भी बुद्धिबली राजा शत्रुसे कष्ट नहीं पाता और खेलाही खेलमें शत्रुपर विजय पा छेता है, इसप्रकार विचार कर राजाने कुछ दिनोंतक रोहककी बुद्धिपरीक्षा करनी शुरू की। (१) शिखा (शिखा)—सर्व प्रथम उस गाँवके लोगोंको राजाने आदेश दिया कि तुम सभी एक राजाके योग्य मंडप बनाओ जिसपर भ्रामके बाहरवासी वह बड़ी शिखा दिना उलाढे आच्छादनके रूपमें बन जाये। राजाके उपरोक्त आदेशको सुनकर सभी भ्रामवाले आकुल हो उठे, व भ्रामके बाहर समामें इकट्ठे होकर परस्पर विचार करने लगे कि, अब क्या करना चाहिए। राजाकी इच्छा हम सबोंपर आ पड़ी है और उसका पाछन करना असंभव है, तथा आज्ञा पूरी नहीं करनेपर राजा अवश्य मारी इण्ड देगा। इस तरह चिन्तासे व्याकुल उन सबोंको विचार करते १ मध्यदिन (दोपहर) हो आया। जघर रोहक पिताके दिना नहीं खाता और पिता भ्रामके मेलेमें था। इसलिये वह मूलसे व्याकुल होकर पिताके पास आया व बोला कि पिताजी मैं मूलसे बहुत इस्सी हूँ इसलिये भोजनक छिप जल्दी घर चलो। भरतने कहा- वत्स! तुम सुनी ही जिसलिये कि भ्रामके कुछ भी कष्टको नहीं जानते हो। रोहक बोला-पिताजी! भ्रामको क्या कष्ट है। इसपर भरतने राजाकी आज्ञा व उसकी कठिनार्थ कह डाली। सब बात सुन लेनेपर हैंसते हुए रोहाने कहा-क्या यही कष्ट है तो मैं अभी दूर कर देता हूँ, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है आप लोग मंडप बनानेके छिप शिखाके चारों बाजू नीचेकी भूमिकी खोदो और फिर यथास्थान आपार खंभोंको लगाकर मध्यवर्ती जमीनको भी खोदलो और चारों ओर अति सुन्दर विवाह कर दो। मंडप बन जायगा मंडप निर्माणके इस उपायको सुनकर सभी भ्रामके प्रधान पुरुष घोसमें लगे, हँसीं। यह ती ठीक है, पिसा दी करना चाहिए। इसप्रकार निर्णय कर सब भोजनके छिप अपने १ घर गए और भोजन कर फिर छीट आए। शिखाके नीचे खोदका काम आरम्भ किया और कुछही दिनाके बाद मण्डपका काम भी सम्पूर्ण हो गया आदेशके अनुसार ही शिखाकी छत बना ही गई तब भ्रामके लोगोंने जाकर राजासे नियमन कर दिया कि श्रीमानकी आज्ञा पूरी कर ही गई है। राजाने पूछा-कैसे! तब सबने मण्डप बनानेकी सारी कथा कए शाली। राजाने पूछा-यह किसकी बुद्धि है! सबने कहा कि वेय! यह भरत-पुत्र रोहककी बुद्धि है। यह रोहककी उत्पातबुद्धिका प्रथम उदाहरण हुआ १।

मिष्ट- मंत्रिका उदाहरण—कुछ समयके बाद फिर राजाने रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके छिप एक मंडा भिजा और सायही यह सूचना भी देनी

कि यह मेढा आज जितना वजनमें है एक पक्षके बाद भी उतना ही रहना चाहिए, न घटे और न बढ़े ही, बराबर वजनसे पीछे हमको सोंप देना। उपरोक्त हुकम मिलते ही सब गामवाले व्याकुल हो गए कि यह कैसे हो सकता है ! अगर खानेको अच्छा देंगे तो बढ़ेगा और खानेको नहीं देंगे तो घटेगा ही। फिर क्या करना चाहिए ? उपाय नहीं दिखनेपर सर्वोंने रोहकको बुलाया और कहा कि वत्स ! पहले भी अपने बुद्धिरूप बांधसे राज-दण्डरूप सागरसे तुमनेही हम सबोंको पार किये थे, आज फिर समय आया है कि तुम अपने उस बुद्धिवलसे गांवको कष्टसे मुक्त कर दो। इसप्रकार भूमिकाके साथ ग्रामवासियोंने जिस आज्ञाको पूर्ण करना उनकी शक्तिके बाहर था वह आज्ञा रोहकको सुना दी। इसपर रोहकने बुद्धिवलसे ऐसा मार्ग निकाला कि जिससे, एक पक्षको कौन गिने, कई पक्षतक मेढा उतनाही वजनमें रहा जितना कि आज है, सब लोग इससे प्रसन्न हो गए और रोहकके कहे मुताबिक व्यवस्था कर दी। मेढेको प्रतिदिन पर्याप्त घास व जव आदि समय २ पर खिलाया जाता और सामने एक वृक (हुरार) भी रख दिया गया जिससे डरता रहे, भोजनकी अधिकता एवं वृकका भय दोनोंने मिलकर उस मेढेको न तो घटने दिया न बढ़नेही दिया। एक पक्ष बीतनेपर मेढा उसी हालातमें पीछा राजाको लौटा दिया गया। राजाने वजन किया तो पूरा निकला, (घटा बढ़ा कुछ नहीं), यह उत्पातबुद्धिका दूसरा उदाहरण हुआ ॥ २ ॥

कुक्कुट-मुर्गा-कुछ दिनोंके बाद फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिये राजाने ग्रामवालोंके पास एक कुक्कुट भेजा, और उसके साथ ऐसी आज्ञा भेजी कि विना दूसरे कुक्कुटके इस कुक्कुटको लडाकू बनाकर भेजो। ऐसी राजाज्ञाको सुनकर फिर सभी रोहकके पास आए, तथा सारी बातें उससे कह सुनाई। इसपर रोहकने एक साफ तथा बड़ा दर्पण मंगवाया, उस दर्पणको कुक्कुटके सामनेमें रखवा दिया, दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको दूसरा कुक्कुट समझकर उसके साथ वह राजकुक्कुट लडने लगा, क्यों कि तिर्यग्जाति जडबुद्धि होती है। इस प्रकार दूसरे कुक्कुटके अभावमें भी राजकुक्कुटको लडते देख ग्रामवासी लोग रोहककी बुद्धिपर मुग्ध हो गए। कुछ कालके बाद राजकुक्कुट राजाको लौटा दिया गया। अकेला ही कुक्कुट लडाकू बना, इस बातकी राजाने परीक्षा की, सब्जी घटना देखकर राजा बहुत खुश हुआ ॥ ३ ॥

तिल-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर रोहककी बुद्धि-परीक्षा करनेके लिए उस गांवके लोगोंको अपने यहां बुलाया, तथा कहा कि तुम सबोंके सामने जो तिलके ढेर पड़े हैं उन्हें विना गिने कहो कि ये कितने हैं ! मगर देखो इसमें अधिक देर न लगे। इसपर सभी ग्रामीण लोग चिन्तित हो गये तथा उत्तरके लिए रोहकके पास दौड़ आए। रोहकने कहा कि राजा पगला है, ऐसा भी कहीं प्रश्न होता है ? अस्तु, जाओ और उससे बोली कि महाराज !

हम गणितज्ञ तो नहीं हैं जिससे आपको तिलोंकी एक संख्या कहें। फिर भी आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके उपमासे कहते हैं—गाँवके ऊपर इस आकाशमें जितने तारे हैं वस उतनी संख्यामेंही इस ढेरमें तिल हैं। सबोंने राजाके पास आकर ऐसाही कह सुनाया। राजा मनही मन लज्जित हो गया ॥ ४ ॥

बालुक-बालू-कुछ विनोके बाबू राजाने रोहककी परीक्षाके लिए फिर एक आज्ञा गाँववालोंके नाम निकाली कि तुम्हारे गाँवके पास सबसे बड़ियाँ बालू हैं, इसलिये उस बालूसे एक मोटी डोरी बनाके शीघ्र भेज दो। लोगोंने रोहकसे कहा तब रोहकने अपन बुद्धिबलसे राजाको जवाब भेजा कि हम सब नव हैं, माधमा जानते हैं, किन्तु डोरी बनाना नहीं जानते लेकिन राजाका आदेश अवश्य पालनीय है इसलिये प्रार्थना है कि आपके राज मदनमें कोई पुरानी बालूमय डोरी हो तो ममूनेके तीरपर भेज दें जिससे कि हम उसके अनुसार नवीन डोरी बनाकर भेज दूँगे। गाँववालोंने इसी प्रकार रोहककी बात राजासे निवेदन कर दी। राजा भी निरुत्तर हो चुप रह गया ॥ ५ ॥

हाथी-हाथी-कुछ विनोके बाबू फिर राजाने एक पुराना मरम्भ्राय हाथी गाँववालोंके पास भेजा तथा ऐसा आदेश दिया कि यह हाथी मरा है ऐसा नहीं कहना तथा उसकी दैनिक चार्जा निवेदन करते रहना अन्यथा भारी दण्ड मिलेगा। इस तरह राजाकी आज्ञा सुनकर सभी लोग समासे बाहर आए और रोहकसे इसका उपाय पूछने लगे। रोहकने जबाब दिया कि इस हाथीको बराबर भान्म खानेको देते रहो पिछे जो होगा उसे मैं समझूँगा। इस प्रकार रोहककी बातसे गाँववालोंने हाथीको भान्म भाड़ि खिलाया किन्तु वह तो रातको ही सुरपुर सिंघार गया। तब रोहकके कथनानुसार सबोंने राजासे आकर निवेदन किया कि देव। आज हाथी न तो घिटता है, न उठता है, न खाना खाता है, न मलमत्याग करता है, न श्वासोच्छ्वास ही लेता है, विशेष क्या कहूँ सचेतनताकी एक भी चेष्टा नहीं करता है। तब राजाने पूछा अरे! क्या तो हाथी मरगया? ग्रामीणोंने जवाब दिया कि देव। श्रीचरण ऐसा कह सकते हैं हम लोग नहीं। इसपर राजा चुप हो गया, और ग्रामीण लोग सद्यः अपने घर चले आए ॥ ६ ॥

अगब-कूप-कुछ विनोके बाबू राजाने फिर आदेश निकाला कि तुम्हारे ग्रामका जो सुस्ताइ जसपूर्ण कूप है उसको शीघ्रही यहाँ भेज दो। आदेशको सुनकर सभी चकित हुए, और रोहकसे इसका उपाय पूछने आए। रोहक घोला-राजासे आकर यह भर्ज करो कि ग्रामीण कूप स्वमायसे ही भर पाक होता है और सजातीयके बिना उसको अन्य किसीपर विश्वास भी नहीं होता। इसलिये एक सामरिक कूप भेज दें, जिसपर विश्वास कर यह उसके साथ यहाँतक चला आया। छेनेके लिये आवे हुए राजपुरुषने जाकर राजासे

इसी प्रकार निवेदन करदिया । राजा भी अपने मनमें रोहककी बुद्धिमत्ताको विचारकर चुप रह गया ॥ ७ ॥

घणसंडे-वनखंड-कुछ दिनोंके बाद राजाने फिर हुक्म दिया कि ग्रामके पूर्व दिशामें वर्त्तमान वनखण्डको पश्चिम दिशामें कर दो । उसी समय रोहकके बुद्धिबलसे ग्रामीण लोग वनखण्डके पूर्वदिशामे ठहर गए (याने पूर्वकी तरफही गांव बना लिया) फिर तो वनखंड गांवके पश्चिममें हो गया । आदेशको पूरा हुए देखकर राजपुरुषने राजासे निवेदन करदिया ॥ ८ ॥

पायस-खीर-फिर कुछ दिनोंके बाद राजाने आदेश दिया कि विना अग्नि-संयोगके ही पायस (खीर) पकाके भेजो । इस अपूर्व बातको सुनकर सभी ग्रामीण लोक क्षुब्ध हुए और रोहकसे पूछने लगे, तब रोहक बोला कि जलमें अच्छी तरह चावलोंको भींगोके सूर्यकी किरणोंसे खूब तपे हुए कोयले या पत्थरपर चावलोंकी थाली रखदो, इससे कुछ समयमें खीर बनकर तैयार हो जायगी । लोगोंने ऐसाही किया और पायस तैयार कर राजासे निवेदन कर दिया, राजा भी रोहककी बुद्धिमत्ता देखकर बड़ा विस्मित हुआ ॥ ९ ॥

अहय-अतिग-इसप्रकार रोहककी तीव्र बुद्धि समझकर राजाने उसको अपने पास बुलाया, मगर यह शर्त रखी कि मेरे आदेशोंको पूरा करनेवाला बालक न शुक्ल पक्षमें आवे न कृष्णपक्षमें, न रात्रिमें और न दिनमें, तथा छाया व धूपमें भी नहीं आवे, न आकाशसे आवे न पांवसे, न मार्गसे आवे न उन्मार्गसे, न नहाके आवे और न विना नहाए, किन्तु आवे जरूर । उपरोक्त आदेशको सुनकर रोहकने कण्ठस्नान किया और रथके चक्रकी धाराके ऊरणपर बैठकर संध्यासमयमें चालनीका छत्र धारण किए हुए अमावस्या व प्रतिपतके संयोगमें वह राजाके पास चला गया । 'खाली हाथ राजासे नहीं मिलना चाहिए', इस लोकोक्तिको विचारकर रोहकने एक मिट्टीका पिण्ड हाथमें ले लिया और राजाके पास जाकर प्रणामके बाद वह पृथ्वी-पिण्ड अग्नि रख दिया । राजाने पूछा-अरे रोहा ! यह क्या ? तब रोहा बोला-महाराज ! आप पृथ्वीपति हैं इसलिए मैं पृथ्वी लाया हूँ । प्रथम-दर्शनमें इसप्रकार मंगल-वचन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गांवके लोग सब प्रभुदित हो चले गए ॥ १० ॥

अजे-अजा-राजाने प्रसन्न होकर रोहकको रातमें अपने पासही सुलाया और शेष लोग भी बाजूमें सुलाये गये । रातके प्रथम पहर बीतनेपर राजाने रोहकसे पूछा-क्या रे ! जगा है या सोया ? रोहक बोला-महाराज ! जगा हूँ ।

१ (यद्यपि घृत्तिकारने अजाका उदाहरण १२ वां और पत्रका दृष्टान्त ११ वां दिया है, लेकिन मूलमें पहले अजाका निर्देश किया है, इसलिए यहाँ अजोदाहरणके बाद पत्रका दृष्टान्त दिया जायगा) ।

राजा-तब क्या सोचता है ? वह बोला देव ! अजा-बकरो-के पेटमें चकसे उतरी हुईकी तरह गोछ ९ मोलियां क्यों होती हैं ! उसके ऐसा बोलनेपर संशययुक्त हो राजाने कहा-तुमही कहो क्यों होती है ! वह बोला-देव ! संवर्त्तनामक पाण्डुविशेषसे बेसा होता है । ऐसा कहकर रोहक सो गया ॥११०

पसे-यम-रातको वो पहर बीत जानेपर फिर राजाने कहा कि अरे ! सोता दे या जगा दे ! वह बोला-देव ! जागता हूँ । तब क्या सोचता है ! वह बोलाकि देव ! पीपलके पसेका वण्डका भाग बडा है या आगेका भाग-शिसा ! उसके ऐसा कहनेपर संशयाकुल हो राजाने कहा-अच्छा सोचा किन्तु इसमें निर्णय क्या हुआ ? तू ही कह । रोहक बोला कि देव ! जबतक की आगेका भाग नहीं सूखता है तबतक दोनों समान हैं । इसपर राजाने पासके दूसरे छोर्गोंसे पूछा उन सबमें भी कहा ठीक है । इसके बाद रोहक सो गया ११ ।

स्वाबहिष्ठा—रातक तीसरे पहर बीतनेपर राजाने फिरसे पूछा-क्यों रे ! जागता है या सोता ! उसने जवाब दिया-महाराज ! जागता हूँ । तब क्या सोचता है ! वह बोला-देव ! स्वाबहिष्ठा जीवको जितना बडा शरीर होता है उतना ही बडा पुच्छ है या कुछ कम विशेष ! इसके निर्णयमें भी अपनेको असमर्थ देख राजाने कहा-अच्छा, तो तुमने क्या निर्णय किया है ! वह बोला-देव ! दोनों बराबर होते हैं ऐसा कह कुछ समय रोहक सो गया ॥११०

पञ्चपियर-पञ्चपितर-इपर सुबहके मंगलमय घाघ सुनकर राजा अगा तथा रोहकको पुकारा । वह माह निद्रामें लीन होनेके कारण जवाब नहीं दे सका । तब राजाने उसको गीली घेतसे तमिक स्पर्श कर दिया जिससे वह जग उठा । राजाने पूछा-क्या रे ! सोता है ! वह बोला-नहीं जागता हूँ । अच्छा तो फिर क्या सोचते हुए मीन दे ! बोस क्या सोचता है ! यह बोला कि देव ! यही सोचता हूँ कि आप कितनेसे पैदा हुए हैं । रोहकके ऐसा कहनेपर राजा दार्माकर कुछ समय चुप रहा और फिर बोला कि अच्छा ! कष्ट मैं कितनेसे पैदा हुआ हूँ ! यह बोला-आप पाँचसे पैदा हुए हैं । राजाने फिर पूछा-किस किससे ! रोहक बोला-देव ! एक तो कुधेरसे क्यों कि उसके सबदाही आपकी वामप्रति है । दूसरे चाँदालम्, क्यों कि पीरीसमूहके प्रति आप चाँदालयत् ही बूर हैं । तीसरे भोषीसे, क्यों कि भोषीकी तरह दूसरेको पीडा पहुँचाके उसका सब भग दर छेते हैं । चौथे बिच्यूसे क्यों कि बिच्यूकी तरह निद्रापीन बालकको भी लाल ब्रिचिकाग्रने १३ मार आपने जगा दिया । पाँचवें अपने पितासे, क्यों कि पितायत् आपभी न्यायका परिपालन करते हैं । उपरोक्त सदेहक वार्ता सुनकर राजा चुप हो गया और प्राप्तकाल दीक्षादि कृत्य कर माँको प्रणाम करने गया । प्रणामके बाद माँसे अपनी असाक्षियत के लिए प्रभ किया व रोहककी बर्दा सारी बात बह टाठी । माताने उत्तर दिया कि विकारी इच्छासे हेतना यदि तेरे संस्कारका कारण दो तो ऐसा जरूर हुआ है । नहीं तो सकलजगत्

सिद्ध असलियतमें तो तुम्हारे एकही पिता हैं। इसप्रकार मांकी बात पूर्ण हो जानेपर राजा प्रणाम कर रोहककी बुद्धिपर विशेष चकित होता हुआ अपने महलको चला आया और समयपर रोहकको सब मन्त्रियोंमें मूर्खन्य बना दिया १४। ये रोहककी औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण हैं।

मूल—गाथा—७१

भरहसिल १ पणिय २ रुक्खे ३, खुड्डग ४ पड ५ सरड ६
काय ७ उच्चारे ८। गय ९ घयण १० गोल ११ खंभे १२,
खुड्डग १३ मग्गि १४ त्थि १५ पइ १६ पुत्ते १७ ॥३॥

७२ ॥ महुसित्थ १८ मुद्दि १९ अंके २०, (अ) नाणए २१ भिक्खु
२२ चेडगनिहाणे २३। सिक्खा २४ य अत्थसत्थे २५,
इच्छा य महं २६ सयसहस्से २७ ॥ ४ ॥

छाया—गाथा—७१

भरतशिला १ पणित २ वृक्षाः ३ क्षुल्लक ४ पट ५ सरट ६
काकोच्चाराः ७, ८। गज ९ घयण (भाण्ड) १० गोलक
११ स्तम्भाः १२, क्षुल्लक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति १६
पुत्राः १७ ॥ ३ ॥

७२ ॥ मधुसिक्थ १८ मुद्रिका १९ अङ्काः २०, ज्ञायक २१ भिक्षु
२२ चेटकनिधानानि २३। शिक्षा २४ च अर्थशास्त्रम् २५,
इच्छा च महत् २६ शतसहस्रम् २७ ॥ ४ ॥

टीका—गाथार्थ ७१—७२ भरतशिला १ पणित (जूआबाजी) २ वृक्ष ३
क्षुद्रक ४ पट-वस्त्र ५ सरट (जन्तुविशेष) ६ काक ७ उच्चार ८ हाथी ९
और घृतभांड १० गोलक ११ स्तम्भ १२ क्षुद्रक १३ मार्ग १४ स्त्री १५ पति
१६ और पुत्र १७ ॥ ३ ॥

इन सब उदाहरणोंसे भी औत्पत्तिकी बुद्धिका परिचय दिया गया है,
जो इसप्रकार है।

१ भरतशिला—इसका उदाहरण पहले रोहककी बुद्धिके उदाहरणोंमें
दे आए हैं।

२ पणित—कोई ग्रामीण किसान अपने ग्रामसे ककडिँ लेंकर नगरमें
बेचनेको गया। नगरके द्वारपर जातेही उसे एक धूर्त नागरिक मिल गया। उस
धूर्त नागरिकने ग्रामीण किसानको बोला समझकर ठगना चाहा और इसलिये
धूर्ततासे बोला कि क्या! एक आठ्मी इन सब ककडिँओंको नहीं खा सकता
है! इसपर ग्रामीण बोला—किसकी ताकत है जो इतनी ककडिँ खा लेगा!

नागरिक बोला—अगर मैं खा जाऊँ तो क्या दोगे ! इस बातको असंभव मानते हुए ग्रामीणने कहा कि अगर खा आओ तो जो इस द्वारसे नहीं आसके ऐसा बड़ा छद्म इनाम दूंगा । इसपर उन दोनोंने साक्षी बनाकर प्रतिज्ञा कर ली । बाद उस नागरिकने ग्रामीणकी सारी ककड़ियाँ जूँटी करके छोड़ दी और ग्रामीणसे कहा कि मैंने सारी ककड़ियाँ खा ली हैं अतः अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार द्वारसे नहीं आनेलायक बड़ा सद्गृह मुझको दो । इसपर ग्रामीण बोला कि तुमने मेरी सारी ककड़ी खाईही नहीं फिर मैं उतना बड़ा मोड़क कैसे दूँ ! इसपर नागरिक बोला कि मैंने तुम्हारी सारी ककड़ियाँ खा खाई फिर भी विश्वास नहीं हो तो बाजारमें रखकर परीक्षा कर लो । इसको ग्रामीणने कबूछ किया । तब दोनोंने ककड़ियाँ सजाकर बाजारमें बेचनेके लिये रखदी । खरीदनेवाले आप मगर कहने लगे कि अजी ! ये तो सारी ककड़ियाँ खाई हुई हैं । इस तरह लोगोंके कहनेपर नागरिकने ग्रामीणको तथा साक्षीको विश्वास उत्पन्न करा दिया । अब ग्रामीण तो झुग्ग हो गया कि मैं इसको द्वारमें नहीं आ सके उतने परिणामका मोड़क कैसे दूँ ! तब इसप्रकार ब्याकुल हो उस ग्रामीणने नागरिकपूर्तसे पीछा छुड़ानेके लिये भयसे उसको एक रुपया देना चाहा, किन्तु वह पूर्त इतनेपर राजी नहीं हुआ । आखिर ग्रामीणने १०० रुपयातक देना कपूछ कर लिया, किन्तु पूर्तको कुछ अधिक मिलनेकी आशा थी, अतः उसने उतनेको स्वीकार नहीं किया । इसपर वह ग्रामीण सोचने लगा कि हाथी हाथीसेही हटाया जाता है वास्ते किसी पूर्त नागरिककी शरण लेनी चाहिए । ऐसा सोचकर उस ग्रामीणने नागरिकसे कुछ दिनोंका अवकाश लिया तथा मगरमें घूमकर किसी पूर्त नागरिकसे मित्रता करली एवं अपनी सारी घटना कहकर उससे बचनेकी उचित सम्मति माँगी । उसने ग्रामीणको उस पूर्तसे छूटनेका उपाय बता दिया जिसके अनुसार ग्रामीणने बाजारसे एक छद्म छेकर मगरके दरवाजेके बीच रख दिया और प्रतिपक्षी नागरिक पूर्त एवं साक्षियोंको बुला लिया तथा उनके सामने बोला कि अरे मोड़क ! बड़े आओ बड़े आओ, किन्तु मोड़क द्वारसे तिछमर भी विचलित नहीं हुआ, तब ग्रामीणने उपस्थित लोगोंसे कहा कि मैंने आप लोगोंके सामने यही प्रतिज्ञा की थी कि अगर पराजित हो जाऊँगा तो ऐसा मोड़क दूँगा जो इस द्वारसे नहीं आ सके छो यह मोड़क द्वारसे नहीं आता आप भी बुला कर देख सकते हैं । अतः अब मैं प्रतिज्ञासे मुक्त हो गया हूँ साक्षी एवं इतर लोगोंके ऐसा स्वीकार कर देनेपर वह पूर्त नागरिक भी लज्जित हो घर गया । तथा ग्रामीण भी पूर्तसे पीछा छूट जानेसे प्रसन्न होता हुआ मौबको चला गया । यह प्रतिज्ञाही पूर्त तथा नागरिक पूर्तकी औत्पत्तिकी पुष्टि हुई ।

१ ककड़े—पूरा—पूराका उदाहरण इस प्रकार है—किसी जंगलमें काम देनेके इच्छुक कुछ बजोहियोंको एक बन्दर बाधा देने लगा । इसपर बजोहीने सुझावसे उपाय सोचा और बन्दरके ऊपर पत्थर फेंकना शुरू किया । बन्दरने

भी बदलेमें रोपयुक्त होकर बटोहीको मारनेके लिये आमके फल तोड़कर फेंकना आरम्भ कर दिया। बटोहियोंके अभीष्ट मनोरथ अनायासही पूरे हो गये। यह पथिककी औत्पत्तिकी बुद्धिका उदाहरण हुआ।

४ खुहुग—अंगुलीयाभरण—(अंगूठी) इसका उदाहरण इस प्रकार है, अट्ठाई हजार वर्षसे पूर्व राजगृह नगरमें प्रसेनजित नामका राजा राज्य करता था। उसको बहुतसे पुत्र थे। किन्तु उन सबमें केवल एक श्रेणिकही राजाको राजलक्षणसम्पन्न पुत्र मालूम हुआ। श्रेणिकको अधिक आदर व प्यार करनेसे शेष राजकुमार ईर्ष्यावश उसे मार देगे इसलिये प्रसेनजित उसको न तो कुछ अच्छी वस्तु देता और न बातसे ही लारप्यार करता। केवल अंतरंगरूपसे उसका ध्यान रखता था। पिताके इस व्यवहारसे खिन्न होकर एक दिन श्रेणिक विना कुछ साथ लिएही राजभवनसे निकल पडा तथा चलते चलते कुछही समयमें वह वेत्तातट नगरमें जा पहुँचा, और विभवसे क्षीण निर्धन बने हुए एक शेटकी दुकानपर जाके बैठ गया। शेटने उसी रात स्वप्नमें अपनी लडकीका विवाह किसी रत्नाकरसे होते देखा था। इधर श्रेणिकके पुण्य-प्रभावसे शेटके यहाँ कई दिनोंकी खरीदके रखी हुई चीजे एकदम बिकने लगी। इससे उस दिन शेटको बहुत आशातीत लाभ हुआ। इसके सिवाय म्लेच्छोंके द्वारा लाये गए कई बहुमूल्य रत्न भी अल्प मूल्यमें ही मिल गये। सहसा इस प्रकारके अचिन्त्य लाभको देखकर शेटको विस्मय हुआ। उसने इसका कारण सोचा तो मालूम हुआ कि यह जो मेरी दुकानके बाहरी बाजूमें पुण्यवान पुरुष बैठा है उसीके अतिशय पुण्यका यह प्रभाव है। जबसे यह आके बैठा है, तभीसे मुझको व्यापारमें अधिक लाभ होने लगा है। इसका ललाट एवं भव्याकार भी इसके पुण्यातिशयकी साक्षी देता है। मैंने जो गत रातमें अपनी कन्याका रत्नाकरसे पाणिग्रहण होनेका स्वप्न देखा है वह रत्नाकर वास्तवमें यही है। इस प्रकार विचार करनेके बाद शेटने विनयपूर्वक हाथ जोड़ श्रेणिकसे पूछा कि महाभाग! आप किसके यहाँ पाहुने हैं? व कहाँसे पधारे हैं? श्रेणिकने भद्रतासे जबाब दिया कि अभी तो आपहीके यहाँ आया हूँ। श्रेणिकके उपरोक्त इष्ट वचनको सुनकर शेट बहुत प्रसन्न हुआ और बहुमानके साथ श्रेणिकको अपने घर ले गया। तथा अपने भोजनसे भी विशिष्ट भोजनके द्वारा उसका सत्कार किया। शेटके यहाँ प्रतिदिन विशेष धनवृद्धि होने लगी। कुछ दिनोंके बाद प्रसन्न होकर शेटने अपनी लडकी नन्दाके साथ श्रेणिकका सम्बन्ध-विवाह कर दिया। श्रेणिक भी उस नन्दाके साथ सांसारिक सुखको अनुभव करता हुआ रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद नन्दाको गर्भाधान हुआ। उधर राजा प्रसेनजित श्रेणिकके चले जानेपर कुछ चिन्तातुर बन गया तथा खोज करते २ प्रसेनजितको ऐसा मालूम हुआ कि श्रेणिकका वेत्तातटके किसी शेटकी कन्यासे विवाह हो गया और वह वहाँ सुखपूर्वक रहता है। जब प्रसेन-

मितको ऐसा मासूम हुआ तब अपना अन्तिम समय मञ्जीक जानकर राजाने श्रेष्ठिकको बुलानेके लिये आक्मी भेजे। भेजे हुए राजपुरुषोंने वेनातठमें आकर श्रेष्ठिकसे विनती की कि देय। महाराज प्रसेनजित आपको जल्दी बुलाते हैं, अतः आप शीघ्र चलें। श्रेष्ठिक भी पीताकी आज्ञाको शिरोभार्य समझकर बसगर्मा भंवासे पूछकर रामपुरुषोंके साथ राजगृहीको चला दिया। जाते समय अपना परिचय व नियास आवि पत्नीकी जानकारीके लिये भीतके किसी एक भागपर लिख दिया। तीन महिन वीत जानेपर नंदाको ऐसा बोहव-मनोरथ उत्पन्न हुआ कि हाथीपर बैठी हुई सब लोगोंको प्रम्यवान बेती हुई मैं अभयदान करूँ अर्थात् भयभीत प्राणियोंको निर्भय करूँ। नंदाके पिताको जब यह बात मासूम हुई तब राजाकी अनुमति लेकर उसने उसका मनोरथ पूर्ण कर दिया। काष्ठकमसे विशाओंको प्रकाशित करते हुए पुत्ररत्नका जन्म हुआ। वारद्वयं दिन बोहवके अनुसार पुत्रका अभयकुमार यह नाम रक्ता गया। कुमार भी भक्तमयनेके कल्पवृक्षकी तरह सुखपूर्वक बढ़ने लगा। यथासमय कलाओंका अध्ययन कर कुमार सुयोग्य बन गया। एक दिन उसने अपनी मातासे पूछा कि माँ! मेरे पिता कौन एवं कहाँ हैं? माताने मूखसे लेकर सब वृत्तान्त कह सुनाया तथा उनका लिखा हुआ यह परिचय लेख भी दिखा दिया। अपना पिता राजगृहमें ही राजा हैं इस प्रकार माताके वचन व लेखसे समझकर अभयकुमार अपनी माँसे बोला कि माँ! हम सब भी साथसे राज गृह चले तो पिताजीसे मिलना हो चायगा, एक बिचार हो जायेपर दोनों मचिटे राजगृह चले आए। फिर नगरीके बाहर उद्यानमें माताको छोड़कर अभयकुमार नगरीका हाथ समझने व पिताको परिचय देने तथा दर्शन करनके लिये हुए नगरीमें गया। वहाँ जाते ही एक सूते (निर्मल) रूपके पास अभयकुमारने बहुतसे छोमोंको चारों तरफ इकट्ठे बैठा। तब उसने एकसे पूछा कि भाई! यहाँ छोमोंका यह जमाव क्यों है? उत्तरमें किसीने कहा कि राजाका अंगुलीयामरण (अंगुठी) इस रूपमें गिरा हुआ है। रूपके बाहर रखे रहकर जो इसको निकाल ले उसको राजा बहुत बड़ी वृत्ति देता है। उसीको निकालनके उपायोंकी राजमें ही यहाँ सब लोक रखे हैं। अभयकुमारने पासमें रखे राजपुरुषोंसे विशेष निर्णयके लिये पूछा उन लोगोंने भी ऐसाही कहा तब अभयकुमार बोला कि मैं बाहर लठा रएकेही निकाल लेता हूँ मगर राजाको अपनी प्रतिष्ठा पूर्ण करनी होगी। इसपर राज पुरुष बोले-अच्छा! तुम निकालो, राजा अपनी प्रतिष्ठा जरूर प्राप्त करेगा। अभयकुमारने उस अंगुठीको अच्छीतरह देकर उसपर गीला मोहर निरा दिया जिससे अंगुलीका यह आभरण गाबरमें मिलाया और कुछ समयके बाद गोबरके घृण जानेपर रूपको पानीसे भरदिया इससे यह अंगुठीयक भी गाबरके साथ ऊपर आके तिरन लगा। उसी समय अभयकुमारने बाहर लठे र ही अंगुठीयक निकाल लिया, जिसपर सोमोंमें दर्पजन्य बहुत कोहाएल

होने लगा। तब राजपुरुषोंने भी राजाको निवेदन किया कि देव! एक विदेशी युवकने आपका अंगुलीयक आदेशानुसार ही निकाल लिया है। उत्कण्ठाके साथ राजाने अभयकुमारको अपने पास बुलाया और पूछा कि वत्स! तू कौन है? अभयकुमारने कहा कि महाराज! मैं आपहीका पुत्र हूँ। राजाने पूछा कैसे? इसपर कुमारने पहलेका सब वृत्तान्त कह सुनाया, सुनकर राजा बहुत हर्षित हुआ तथा कुमारको हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्वक उसके शिरका चुम्बन किया और पूछा कि वत्स! तुम्हारी माता अभी कहाँ है? कुमार बोला कि देव! मेरी माता अभी नगरीके बाहर उद्यानमें है। कुमारकी बात सुनकर उसी समय राजा सपरिवार नन्दा रानीको लानेके लिए उसके सम्मुख गया। अभयने आगे जाकर मातासे पिताके आनेकी सूचना कर दी जब नन्दाने अपने देहको सजाना शुरू किया, तब कुमारने निषेध करते हुए उससे कहा कि माताजी! पतिके विरहवाली कुलकामिनीको अपने पतिके दर्शन किए बिना शृङ्गार करना योग्य नहीं होता है। इतनेमें राजा भी वहाँ पहुँच गया और दोनोंका स्नेहपूर्वक वहाँ मीलन हुआ फिर श्रेणिकराजाने बड़े समारोहसे नन्दा रानी व अभयकुमारका नगर-प्रवेश कराया, नन्दा रानी सुखपूर्वक श्रेणिक महाराजके साथ रहने लगी। अभयकुमारको भी राजाने प्रधानमन्त्रीपदपर नियुक्त कर दिया। यह अभयकुमारकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

५ प्रड-पट (वस्त्र)-का उदाहरण इस प्रकार है—दो आदमी एक साथ किसी जलाशयपर जाकर स्नान करने लगे, उनमें एकके पास ऊर्णमय वस्त्र-कम्बल ओढनेको था और दूसरेके पास शरीर आच्छादनको सूतका वस्त्र था, कम्बलवाला तत्काल स्नान कर अच्छा होनेसे तुरंत सूतके वस्त्रको लेके चलने लगा, दूसरा पुकारकर मांगने लगा—अजी! तुम्हारा वस्त्र यह है वह मेरा है, अतः मुझे दे दो, किन्तु वह इसकी कुछ भी नहीं सुनता हुआ चला गया। गांवमें आकर दोनों अपना न्याय करानेके लिये राजकुलमें पहुँचे। न्यायपरक्षकने दूसरी तरहसे निर्णय होना कठिन समझकर बुद्धिबलसे दोनोंके शिरपर कंकतिकासे लेपन कर दिया। उससे कम्बलवालेके शिरसे ऊर्णके केश निकल आए, तब यह निश्चय हो गया कि यह सूतका वस्त्र इसका नहीं है। उसी समय राजपुरुषोंने उसका निग्रह कर वह वस्त्र दूसरेको दिला दिया। यह राजपुरुषकी औत्पत्तिकी बुद्धि है।

६ सरड-सरट-इसपर कथानक इस प्रकार है—कोई एक आदमी जंगलमें मलत्याग करने गया था, उस समय वह किसी बिलके उपर बैठ गया, सहसा एक सरटजंतु बिलमें प्रवेश करते हुए पूँछसे उसके गुदाभागको छू लिया, इतनेहीसे उसको यह शंका होगई कि यह तो मेरे पेटमें चलागया है, इसी शंकासे वह रोगीकी तरह प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। बहुतेरे चिकित्साप्रयोग किये परन्तु सब व्यर्थ हुए। एक दिन वह किसी वैद्यके पास पहुँचकर अपना हाल-

सुनाने लगा। वैद्यने अच्छी तरह परीक्षा की तो मादूम हुआ कि इसको केवल झम हुआ है और कुछ नहीं, ऐसा सोचकर वैद्यने कहा कि मैं तेरा रोग मिटा देता हूँ किन्तु सी रूपये दूंगा। इसपर उसने स्वीकार करलिया। तब वैद्यने उसको विरेचक दिया और एक मिट्टीके भाँडमें छाश्राससे भरा हुआ सरत रखके उसको मलत्याग करनेको कहा। विरेचन साफ हो जानेपर वैद्यने भाँडसे सरत निकालके दिखाया कि बेलो यह निकल गया है। तत्कालही उसकी शंका दूर होगई और यह नीरोग तथा कुछही समयमें शरीरसे सबस होमया। यह हुई वैद्यकी औत्पत्तिकी बुद्धि।

७ काम-काक-कौपका इष्टान्त इस प्रकार है—बेचातटमें एक वीर्य मिथुने किसी जैनसे पूछा कि अजी! तुम्हारे देव सर्वह हैं और तुम उनके मक हो तो कहो कि इस गाँवमें काग (कीप) कितने हैं? इसपर यह आईतमक सोचने लगा कि यह शठ है सरलतासे केवल समझनेवाला नहीं है, वास्ते ऐसाही उत्तर देना चाहिए। इस प्रकार सोचके वह बोला कि साठ हजार काग इस गाँवमें रहते हैं, अगर कमी इनमेंसे कुछ बाहर जाते हैं तो कम हो जाते हैं और जब कुछ बाहरसे मेहमान आते हैं तो बढ़ जाते हैं। वीर्य मिथु इसकी जाँच अशक्य जानके सिर लुजलाता हुआ चुपचाप चला गया। यह हुआ झुलककी औत्पत्तिकी बुद्धिका इष्टान्त।

८ उच्चार-मठपरीक्षा—उच्चारण इस प्रकार है—किसी शहरमें एक ब्राह्मण रहा करता था। उसकी स्त्री सुन्दरता व मीठावस्थाके कारण अधिक तासे काममें उन्मत्त रहा करती थी। एकदिन वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ वेदान्तरको जा रहा था रास्तेमें ब्राह्मणको एक भूर्त मिल गया और ब्राह्मणके साथ कुछ बात करके उसने उसको अपने प्रेममें लीच लिया। कुछ दूर जाकर भूर्तने ब्राह्मणसे विवाह करना छूक किया और बोलने लगा कि यह स्त्री मेरी है, वास्ते इधर मत आओ। तब ब्राह्मण बोला—अजी! नहीं यह तो मेरी स्त्री है। विवाह यह जानेसे दोनों न्याय करानेके लिये राजकुर्सेमें पहुँचे। अधिकारियोंने दोनोंका मामला समझकर दोनोंको असम १ कर-दिए और उनसे पूछा कि तुमने कस क्या खाया था? ब्राह्मणने कहा—मैं अपनी स्त्रीके साथ कस तिलका भोजक खाया था, भूर्तने कुछ और ही कहा जब विरेचन देकर परीक्षा की गई तो ब्राह्मणका कथन सत्य निकला। तब उसी समय न्यायाधीशने ब्राह्मणको उसकी स्त्री बिछा दी और भूर्तको बण्ड देकर निकाल दिया।

९ गय-गज (हाथी)—से बुद्धि परीक्षाका उच्चारण इस प्रकार है—वसंत-पुरके राजाने अतिशयबुद्धिसम्पन्न मन्त्रीको पानेके लिये चतुष्पथ (बीक) में आछानस्तम्भपर एक हाथी बंधवा दिया और साथही यह बोलना करवाई कि इस हाथीको जो तोस देगा उसको राजा बडी वृत्ति (बक्ष्सीस) देगा।

घोषणाको सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुषने उसको तोलना स्वीकार किया। हाथीको नौकापर चढाके एक तालाबमे ले गए और हाथीके वजनसे नौका जितनी (जहाँतक) पानीमे डूबी थी वहाँतक रेखा खींच दी गई, फिर हाथीको नौकासे बाहर कर उसमें बड़े २ उतने पत्थर भर रखे जितनेसे नावका रेखांकित भाग डूब जाय। इतना करनेके बाद उन पत्थरोंको तोललिये और हाथीका भी उसके अनुसारही तोल वता दिया गया। राजा उसकी इस बुद्धिमानीपर बड़ा प्रसन्न हुआ तथा अपने सब मन्त्रियोंमें उसको प्रधान-मन्त्रीका पद दे दिया।

१० घयण-भंडन (अकीर्ति)का उदाहरण इस प्रकार है—जैसे एक आदमी राजाका बहुत मुंहलगा हुआ था, उसके पास राजा अपनी रानीकी तारीफ किया करता। एकादिन राजाने कहा कि मेरी रानी पूर्ण चतुर व आज्ञाकारिणी है। मुंहलगेने कहा—महाराज! आज्ञाकारिणी तो होगी किन्तु अपने मतलबके लिए। आपको यदि शंका हो तो कलही परीक्षा करके देख लीजिए, रानीजीसे कहिए कि मैं एक नवीन रानी बनाना चाहता हूँ और उसीके लडकेको राजपद दूँगा, मेरी यह इच्छा तुमको पसंद हो तो मैं ऐसा करता हूँ। राजाने इसी तरह दूसरे दिन रानीसे कहा। रानीने कहा—देव! अगर आप दूसरा सम्बन्ध करना चाहते हैं तो भले करिये, किन्तु राज्यके उत्तराधिकारी तो वही रहेंगे जो रहते आए हैं, इसमें दखल नहीं हो सकता। इस बातपर राजा कुछ मुस्कराया। जब रानीने आग्रहपूर्वक मुस्कराहटका कारण पूछा तो मालूम हुआ कि अमुक मुंहलगेने जो बात कही वह सत्य निकली। सब अपने मतलबकी आज्ञा पालती हैं। रानीने क्रुद्ध होकर उस मुंहलगेको देशनिकालेका दण्ड दे दिया। अब तो वह चिन्तामें पडा और सोचने लगा कि क्या करना चाहिए! आखिर बुद्धिसे एक उपाय निकाला। बहुतसे जूतोंकी एक बड़ी गठडी बनाली और गठडी लिये रानीसे मिलने गया। वहाँ जाके बोला कि देवि! अब मैं देशान्तर जा रहा हूँ। रानीने कहा—अरे! यह जूतोंकी गठडी किसलिये उठाली है! वह बोला देवि! इन जूतोंसे जहाँतक जा सकूँगा जाऊँगा व आपकी अकीर्ति फैलाऊँगा। रानीने अपवादके भयसे तुरन्तही बहिष्कारके हुक्मको रद्द करवा दिया और उसे रोकलिया। यह उस मुंहलगेकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

११ गोल-गोलकीका उदाहरण, जैसे—किसी बालकके नाकमें लाखकी एक गोली घुसगई थी। जिससे बालकके मांबाप अत्यन्त आतुर हो गए और उसको एक सुवर्णकारके पास ले गए। सुवर्णकारने अपने बुद्धिबलसे लोहमय एक बारीक शलाकाके अग्रभागको आगमें तपाकर उससे धीरे २

सायधामीपूर्वक उस गोलीको थोड़ीसी गरम करके सर्वथा निकाल ली। यह सुवर्णकारकी भीत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

११ खंम-स्तम्म-का उवाहरण, जिसे-किसी योग्य मन्त्रीकी तलारामें एक राजाने शहरके घटे साठायके बीच एक स्तम्म लगाया और ऐसी घोषणा करवाइ कि जो किनारेपर खड़े होकर इस स्तम्मको छोरीसे बांधेगा उसका राजकी ओरसे लाख रुपये इनाम मिलेंगे। इस प्रकारकी घोषणा सुनकर एक बुद्धिमान् पुरुषन ऐसा करना कपूख करलिया। उसने किनारेपर एक कील मटयाई तथा छोरीको उससे बांधकर चारों किनारे छोरीको लिये हुए घूम आया। इससे यह मध्यका स्तम्म छोरीसे बंध गया। उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होकर राजा भी उसको अपना मन्त्री बनालिया। यह उस पुरुषकी स्तम्मबन्धनकी भीत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१२ सुदृग-धुम्रकं (वालक)का उवाहरण जैसे-किसी नगरमें अतिकुशल कर्म एक परित्राजिका रहती थी उसने राजाक पास यह प्रतिज्ञा की कि मैं मवबुद्ध कर सकती हूँ। मुझे कार्य भी कलामें परामित नहीं कर सकता। इस पर राजाने घोषणा करवा की कि अगर कोई अपनेको श्रेष्ठ कलाकार समझता हो तो कलामें इस परित्राजिकाको जीत ल मैं उस बहुत इनाम दूया। मित्राकें लिये घूमत हुए किमी शुस्तकन घोषणा सुनी और राजासे मियेवम किया कि क्या मैं परित्राजिकाको हरा दूंगा। किन्तु अपराधकी क्षमा मिलनी चाहिये। राजाने उसका सुखी इजाजत देई। इसपर परित्राजिका मुह बनाती हुई बोली कि यह छाटामा है मुझे शुद्धक क्या जीतगा। परित्राजिकाके पसा कदमपर शुद्धक अपनी लंगाट ह्माली और मममुद्रासे घृत्य य अनेकविध अद्भुत आमन कर दिवाय फिर परित्राजिकाने बोला कि अब आप अपनी कुशलता दिगलारय हमी मम मुद्राम आसन आदि होम चाहिए। वेगा करनेमें असमर्थ परित्राजिका हार मानकर लखित दा घर चली गई। लोगोंने शुद्धककी जीत घोषित करई यह उसकी भीत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१३ मग-मार्य-का उवाहरण, जैसे-कार्य पुरुष अपनी मायाका लकर घाटमग घुगर गांव जा रहा था। बीचमें किमी जगह शरीरपिन्ताक लिए जगई वही बीच उत्तरी और कुछ दूर जाकर शीतमिवारण करने लयी। इनदीमें एक उम प्रथामें रहनवाली द्यमती रघाट्ट पुरुषक शीन्वर्ष आदि पर मुग्ध हुई उगी वही क रूपर जल्लंगे आकर घाटमपर आरुद्ध हो गई। जब यह प्रथमी वही शरीरपिन्ता मिवारण कर घाटमक पाग आई ता अपने शरीरक रणवाली किमी अन्य वहीका घाटमपर बैठे देनी। द्यमतीम उमको पाग आई देगकर पुदपग बदा कि यह कार्य द्यमती मरगा ह्य बनाकर

तुम्हारे पास आना चाहती है, इसलिए वाहनको जल्दी चलाओ। पुरुषने वैसाही किया। इधर वह स्त्री रोती चिल्लाती हुई पीछे पछि आने लगी। उसके आर्त्तस्वरको सुनकर वह पुरुष भी विचारमूढ बनगया और वाहनको धीरे २ चलाने लगा। तब उस मनुष्य स्त्री व व्यंतरीका परस्पर कलह शुरू हो गया, गांवतक दोनों लडती झगडती आईं। गांवमे आकर दोनोंने न्यायालयमें फरियाद की और अभियोग चला। न्यायाधीशने पुरुषसे पूछा कि तुम्हारी स्त्री कौन है? किन्तु वह निर्णय नहीं कर सका, तब न्यायाधीशने अपने बुद्धिबलसे पुरुषको दूर हटाकर स्त्रियोंसे कहा कि तुम दोनोंमेसे जो पहले अपने हाथसे इसका स्पर्श करेगी उसीका यह पुरुष होगा, दूसरीका नहीं। व्यंतरी इस निर्णयपर बहुत प्रसन्न हुई और तुरंतही दिव्य भावसे हाथको फैलाकर पुरुषका स्पर्श करलिया। अधिकारियोंने सत्य समझकर व्यन्तरीसे कहा कि तुम इसकी असली स्त्री नहीं हो, तुमने अपनी दैवी मायासे इस पुरुषको छला है, अब जाओ। यह पुरुष इसी मनुष्य स्त्रीका है। ऐसा कहके उस पुरुषको मनुष्य स्त्रीके साथ करदिया। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि है।

१५ इत्थी-स्त्री-का उदाहरण इस प्रकार है—मूलदेव और कंडरीक नामके दो मित्र कहीं साथ जा रहे थे। इधर कोई अन्य पुरुष अपनी भायकें साथ उसी मार्गसे जाने लगा। दूरमें रहा हुआ कंडरीक उसकी स्त्रीके रूपको देखकर सुगंध होगया, उसने मूलदेवसे कहा कि अगर इस स्त्रीसे तुम मुझे मिलाते हो तो मैं जीऊंगा, नहीं तो मैं मरता हूँ। तब मूलदेव बोला कि मित्र! घबराओ मत, मैं जरूर तुमको इससे मिलादूंगा। ऐसा विचारकर दोनों जल्दीसे लक्षित न हो इस प्रकार दूर चले गए। कंडरीकको एक वनकुंजमें बिठाकर मूलदेव स्वयं रास्तेपर आके खड़ा रहा, पीछेसे जब वह पुरुष स्त्रीके साथ वहाँ आया तब मूलदेवने कहा—भो महापुरुष! इस वनकुंजमें मेरी स्त्रीको प्रसव हुआ है अतः क्षणभरके लिए तुम अपनी स्त्रीको वहाँ भेजो। उसने स्त्रीको जानेके लिए कहदिया वह कंडरीकके पास गई और कुछ समय ठहरके चली आई, यह मूलदेवकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१६ पद्—पतिका दृष्टान्त, जैसे-किसी स्त्रीके दो पति थे, और वह दोनों-पर प्रेम करती थी। लोगोंको आश्चर्य होता था कि यह दोनों पतिको कैसे प्रसन्न रखती है। राजाने भी परम्परासे यह बात सुनी और आश्चर्यपूर्वक मंत्रीसे पूछा। मंत्रीने कहा देव! ऐसा नहीं हो सकता, इसमें कुछ विशेष कारण मालूम पडता है। राजाने कहा-वह कैसे मालूम होगा? मंत्री बोला-महाराज! इसका रहस्य जिस प्रकार जल्दी मालूम हो सके ऐसा यत्न करूंगा। एक दिन मंत्रीने उस स्त्रीको लेख भेजा, उसमें लिखा था कि तुम्हारे दोनों पतियोंको दो गाँवमें भेजो। एकको पूर्वकी ओर व दूसरेको पश्चिमकी तरफ असुक गाँवमें, साथही उनको यह कह देना कि उसी दिन पीछे घर चले आने।

मंत्रीका हुक्म पाकर उस स्त्रीने जो अपना अधिक प्रिय था उसको पश्चिमकी ओर भेजा और कम प्रेमवालेको पूर्वकी ओर। उसके आते आते दोनों समय सूर्य सामने होता था। मंत्रीने इसपरसे निर्णय किया कि पश्चिमकी ओर भेजा गया अधिक प्रेमपात्र है और पूर्यकी ओर भेजा हुआ इससे कम प्रिय है। राजासे अब उक्त निर्णय सुनाया तो उसने स्वीकार नहीं किया तथा बोला कि किसी एकको पूर्वमें और दूसरेको पश्चिममें भेजना अनिवार्य था क्यों कि हुक्म ऐसाही था इतलिये इससे कुछ विशेषता नहीं समझी जा सकती। तब मंत्रीने फिर सब मेजकर कहलाया कि तुम्हारे दोनों पतिको एकसाथ उन गाँवोंमें भेजो। स्त्रीने घिसाही किया। मंत्रीने फिर दो आवमी उस चार्कके पास रखे जो एकसाथ दोनोंका कुशल समाचार उस चार्कको आकर सुनाये, बोधी दूर जाकर दोनों एकसाथ भाए और तुम्हारे दोनों मर्ताओंको कुछ पीडा होती है ऐसा कहके चार्कको बुलाने लगे तब यह मंत्रवक्त्रके अकुशल मियेवक पुरुषसे बोली अजी। यह तो सजादी ऐसे रहते हैं, दूसरे बहुत कोमल प्रकृतिक होनेसे आदर होंगे इसलिये मैं उनकी तरफ जाती हूँ ऐसा कहके यह उधर गई। खबर पाकर मंत्रीने राजासे सारा हाल नियेवन कराविया जिससे राजा उसकी बुद्धिमत्तापर बहुत खुश हुआ। यह मंत्रीकी भीत्यत्तिकी बुद्धि हुई।

१७ पुत्र-पुत्र-का इष्टान्त इस प्रकार है—एक महाजनके दो स्त्रियों थी जिनमें एक पुत्रवती और दूसरी अपुत्रा थी। किन्तु उस बालकका यह भी अच्छा प्यार करती थी इससे उस बालकको यह निश्चय नहीं हो सका कि मरी अच्छी माँ कीन है। कुछ कालके बाद जब यह महाजन दोनों स्त्रियों तथा पुत्रको लेकर परवश गया और जातेही मरगया तब दोनों स्त्रियोंमें पुत्रके लिये कल्प होने लगा, एक बोली कि यह लड़का मेरा है अता घरकी स्वामिनी मैं हूँ। दूसरी बोली-अरी। तू कीन है। यह लड़का तो मेरा है, इसलिये सुदग्यामिनी मैं हूँ। इस प्रकार दोनोंमें कसह करते ० बात राजकुसमें गई मंत्रीन बुद्धिबलसे इसका निर्णय करना चाहा, और अपने आवमीको बुलाकर कहा कि इनक सब घनको साकर दो भागमें बाँट दो व पेनेही दरगतसे लड़के के भी दो हिस्से कराओ फिर दोनोंका आधा १ है देंग। मंत्रीकी इस बातको सुनकर पुत्रकी मर्था माँ मरनपर जैसे किसीने वयप्रदार किया हो उस तरह क्याकुल होकर बोली कि महाराज। मुझ पुत्र नहीं आदिए यह उसका है उरीका व वा विन्तु फाटो (मारो) मत भले यदि दूसरी चार्क घरकी माँलि बिन दा मुझ कुछ इन्ध नहीं है मैं तो दूसरेक यहाँ भीकरी करती हुई भी इन बालकका जीवित देकर अपने मनमें संतोष मानूंगी, किन्तु पिता बचके होते मैं नहीं रह सकती। दूसरीन कुछ नहीं कहा। इसपर मंत्रीने पुत्रदरगो हुर्गी उग बाइको मर्था माता समझकर निर्णय लिया कि यह पुत्र इमीका है मत घरकी स्वामिनी यहाँ होगी। तथा दूसरीको तिररकार कर निकाल दी यह अमर्यदकी भीत्यत्तिकी बुद्धि हुई।

टीका गाथार्थ ७२—मधुच्छत्र १७ मुद्रिका १८ अङ्क १९ नाणक २० भिक्षुक २१ चेटक (बालक) २२ और निधान २३ शिक्षा २४ अर्थशास्त्र २५ बडी इच्छा २६ सौ हजार २७। इन सबोंके दृष्टान्त निम्नप्रकार हैं, जैसे—

१७ मधुसिक्थ-मधुसिक्थ-मधुच्छत्र—किसी पहाडी छोटी नदीके दोनों किनारेपर कुछ धीवर (मधुए) रहते थे। दोनों (किनारेवालो) में जातीय सम्बन्ध होनेपर भी आपसमें मनमुटाव था। इसलिए दोनों किनारेवालोंने अपनी २ स्त्रीको पर तीर जानेकी मनाई करदी थी। किन्तु धीवरलोग जब अपने २ व्यवसायके लिए बाहर चले जाते तब उनकी स्त्रियाँ एक दूसरेके यहाँ आती जाती थी। एक धीवरीने एकदिन उस पारसे अपने घरके पास कुंजमें मधुच्छत्र देखा। दूसरे दिन उसका पति जब मधु खरीदने लगा, तब उसकी स्त्रीने कहा कि मधु मत खरीदो चलो, मैं तुम्हे अपने घरके पासही मधु-च्छत्र दिखा देती हूँ। ऐसा कहकरके वह अपने पतिको साथ लेकर छत्र दिखाने गई। किन्तु दृढ़नेपर भी उसे मधुच्छत्र दिखाई नहीं पडा, तब वह विस्मितसी होकर बोल उठी कि सामनेके तीरसे बराबर दिखता है वहाँ चलो देख आवे। धीवर भी उसके साथ दूसरे किनारे गया, वहाँ उस स्त्रीने निषिद्ध घरके पासही खडी रहकर मधुच्छत्र दिखाया। धीवरने अनायासही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री इस निषिद्ध घरमें आती जाती है। यह उस धीवरकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१८ मुद्दिय-मुद्रिका-का दृष्टान्त—किसी नगरमें एक पुरोहित सर्वत्र सत्य-वादीके नामसे प्रसिद्ध था, लोगोंको विश्वास था कि यह समय बीत जाने पर भी दूसरोंका निक्षेप (ठेव) नहीं पचाता किन्तु पीछे दे देता है। इसी विश्वासपर एक गरीब आदमी उसके पास अपनी ठेव रखकर देशान्तर चला गया। विदेशमें बहुत समय बिताकर जब वह अपने घर जाने लगा तो पुरो-हितर्जासे अपनी ठेव मांगी। किन्तु पुरोहितने एकदम अस्वीकार कर दिया व कहने लगा कि तुम कौन हो? तुम्हारी ठेव कौनसी व कैसी थी? इस पर वह गरीब अपनी ठेव गुम होते देख बहुत चिन्तातुर हुआ। दूसरे दिन राजाका प्रधान कहीं बाहर जा रहा था। उसको जाते देखकर उसने कहा कि महानुभाग! मेरी हजार रुपयोंकी नोली पुरोहितके पास रक्खी हुई है, कृपया वह मुझे दिलादो। बडा उपकार होगा। सारा हाल समझकर प्रधानको उसपर दया होगई। उसने राजासे कह दिया, तब राजाने ठेव रखनेवाले पुरोहितको बुलाया और कहा कि तुम्हारे यहाँ इसकी जो ठेव रक्खी हुई है, वह पीछे इसे लौटा दो। पुरोहितने जबाब दिया कि राजन्! मैंने इसका कुछ लियाही नहीं तो देऊँ क्या? इसपर राजा चुप रहगया। पुरोहितके घर लौट जानेपर राजाने उस ठेव रखनेवाले गरीबको पूछा कि सचसच बोल तू उसके यहाँ किसके सामने व कब ठेव रक्खी थी? इसपर उसने देनेका स्थान समय व साक्षी बता दिए।

तब राजाने निर्णय करना चाहा और एकदिन उस पुरोहितके साथ खेल खेलना शुरू किया। कीड़ाकमसे अपनी और पुरोहितकी अंगूठी अकलबकल करली। पुरोहितसे छिपकर उसकी अंगूठी एक आवमीको दी और उसके द्वारा पुरोहितानीको कहलाया कि पुरोहितजीने उस मरीचकी ठेकमें रखी हुई मोली (धैली) मांगी है और सबूतके लिए यह अपनी अंगूठी भेजी है। इसपर विश्वास कर पुरोहितानीने मोली भेजदी। रामाने बूसरी अनेक मोलियोंके बीच उस धैलीको रखकर ठव रखनेवालेसे अपनी मोली छिनेको कहा। उसने पहचानकर अपनी मोली उठाई। तब राजाने उसे सब्बा समझकर खेजा नेकी आहा दी और पुरोहितको कठोर बण्ड दिया। यह राजाकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१९ अंक-अहू-का इष्टान्त, जैसे-एक आवमीने किसी दोठके पास हजार रुपयोंसे मरी एक मोली रखी। उस दोठने मोलीके नीचेका कुछ भाग काट कर उससे असली रुपये निकाल छिप तथा बड़ेमें नकली रुपये उसमें भरके कटे भागको सिलाकर ज्योंका त्यों रखा दिया। पीछे जब ठेव रखनेवालेने अपनी चीज मंगी तो दोठने उसे मोली देदी। उसने जब सोचकर देखी तो पता चला कि असल रुपये गुम हैं। आखिर उसने राजाके पास अभियोग चलाया। न्यायाधीशने पूछा कि तुम्हारी मोलीमें कितने रुपये रहे जा सकते हैं। उसने जवाब दिया-हजार रुपये। न्यायाधीशने परीक्षा की तो जितना भाग उस मोलीका कटा था उतनेही रुपये बाँकी बचे थे दोष सभी समाप्त। इसपर न्यायाधीशको उसकी बात सब्बी मालूम पडी। अभियुक्तसे अनुशासनपूर्वक उसके रुपये विस्रापि। वह सुशी १ घर चला गया। यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

२० नाण-माणक-इष्टान्त। निम्न प्रकार है-कोई व्यक्ति किसी दोठके पास अपनी मोहरोंसे मरी हुई एक धैली रखके पेशास्तर गया। कुछ समय बीतनेपर धैली रखनेवाले उस दोठने धैलीसे उसम सुवर्णमय मुद्राओंकी निकालकर उतनीही संख्यामें इसके कमकीमती-सोनेकी मुद्रायें उसमें भरदी और धैली उसी तरह सीदी। कई दिनोंके बाद वह धैली रखनेवाला व्यक्ति विवेदासे घर आया और दोठसे अपनी धैली मांगी। दोठने भी उसको धैली देदी। उसने भी अच्छीतरह देखा तो धैली वही मालूम हुई, किन्तु घर आकर जब उसको रोखा तो पता चला कि इसमें असली सुवर्णमुद्रायें नहीं हैं, जा मेरी पहले थीं उनकी जगह नकली मुद्रायें रखी हुई हैं। उसने दोठसे आकर कारण पूछा तो दोठने जवाब दिया कि हमने जो मुझे रखनेको दी थी वही धैली हमने पीछे दी है। असली नकली हम नहीं जानते। इसपर उसने न्यायालयमें फरियाद की। न्यायाधीशने दोनों अभियुक्ता व अभियुक्ता-को बुलाकर उनके बयान सुने। सुननेके बाद न्यायाधीशने उस व्यक्तिसे पूछा

कि तुमने शेटके पास थैली किस वर्ष व किस दिन रखी थी ? उसने वह वर्ष व वह दिन बता दिया । फिर मुद्राओंपर बननेका काल देखा तो उसके बादका निकल आया । उसी समय न्यायाधीशने शेटसे कहा कि ये मोहरे इसकी नहीं हैं क्योंकि नवीन ढाली हुई हैं, अतः इसकी मोहरे जो असली हैं वे इसे देदो । यह न्यायाधीशकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी ।

२१ भिक्षु-मिश्र-दृष्टान्त भावना जैसे—किसी साहुकारने एक मठाधिपति भिक्षुकके पास एक हजार मोहरे ठेवरूपमें रखीं । कालान्तरमें जब वह भिक्षुकके पास मांगनेको गया तो भिक्षुक आजकलहका वहाना करने लगा । तब साहुकारने कुछ जुआरियोंसे मैत्री की और भिक्षुकसे अपनी ठेव लेनेकी बात कही । जुआरियोंने कहा कि हम तुम्हें भिक्षुकसे सब रुपये दिलादेगे । ऐसा कहकर वे लोक किसी गेरुप वस्त्रवाले साधुका वेप बनाकर एक बड़ी सोनेकी खूटी लिए उस भिक्षुकके पास गए और बोले कि हम लोग यात्रामें जाते हैं, आप बड़े विश्वासपात्र हैं इसलिए यह सुवर्ण खूटी हम आपके पास रखजाते हैं । इसप्रकार ये कह रहे थे इसी बीचमें वह साहुकार आगया और बोला महाराज ! मेरी रकम दे दीजिए । भिक्षुकने सुवर्ण खूटीकी लालचसे उसी समय उसकी ठेव-रकम देदी । वे जुआरी कुछ समय विचारकर बोले—महाराज ! कुछ यहाँका जरूरी काम आगया है इसलिए अभी हमको नहीं जाना है ऐसा कहके वे सुवर्ण खूटी लिए चले गये । यह जुआरीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई ।

२२ चेडगनिहाणे—चेटक और निधान-दृष्टान्त इस प्रकार है—किसी गांवमें परस्पर भिन्न स्वभाववाले दो पुरुष रहते थे । संयोगवश दोनोंकी विशेष परिचयसे मैत्री होगई । एकदिन एकको किसी जगह निधान प्राप्त हुआ । उसी समय मायावी मित्रने उससे कहा कि मित्र ! आजका मुहूर्त ठीक नहीं है कलह शुभमुहूर्तमें अपने इस निधानको लेगे । दूसरेने सरल मनसे वैसा स्वीकार करलिया । इधर मायावी मित्रने रातमें उस जगह आकर निधान लेलिया और वहाँ कोयले डालदिए । दूसरे दिन दोनों साथ आकर देखते हैं तो निधानकी जगह कोयले मिले । तब मायावी कपटपूर्वक रोने लगा, और बोला कि हा ! हम भाग्यहीन हैं जिसलिए कि देवने निधान की जगह हमको कोयले दिखाये । एक तरहसे उसने आंखें देकर हमसे छिनली हैं । ऐसा कहते हुए वह वारंवार दूसरेकी ओर देखने लगा । दूसरेने उसकी नकली चिन्तासे असलियत समझ ली और आकारको बदलकर कहा—मित्र ! कुछ चिन्ता मत करो, गया हुआ निधान कुछ दुःख करनेसे नहीं आता, चलो अपने भाग्य ऐसेही हैं । इस प्रकार शान्त होकर दोनों अपने २ घर गए । इधर सच्चवाईको प्रकट करनेके लिये बुद्धिबलसे दूसरेने उस मायावीकी लेप्यमय प्रतिमा बनाई और दो पालतू बन्दर भी रखे । प्रतिदिन प्रतिमाके हाथ शिर व स्कन्ध आदि अंगोंपर उन बन्दरोंके खाने योग्य वस्तुएँ रख देता और खानेके लिये बन्दरोंको छोड़ देता ।

सूत्र प्याससे पीड़ित बन्दर भी वहाँ आकर उस प्रतिमाके देहपरसे मम्य प्वाथ खाया करते। कई दिनसि उनकी यह शैली बन गई। एकदिन किसी पर्वको लेकर दूसरे मित्रने मायावीके दोनो पुत्रोंको अपने यहाँ भोजनके लिए निमन्त्रण दिया और बड़े प्रेमसे दोनोंको अच्छीतरह भोजन कराके सुखपूर्वक यहीं कहीं दूसरी जगह छिपाविए। दूसरे दिन जब बालक नहीं आए तब मायावी मित्र उनकी खोज करने मित्रके यहाँ आया और पूछा—दोनो लड़के कहाँ हैं? यह बोला—मित्र! बड़ा खेद है कि वे तुम्हारे दोनो पुत्र बन्दर हो गए। मायावी परमें गया तब दूसरे मित्रने उन पाण्डु बन्दरोंको खोल दिये वे किलकिलाहट करते आए और इसके अर्गोंपर आ लगे व कुछ खाटने लगे। इसपर दूसरा बोला—मित्र! देखिए ये आपके प्रति अपना प्रेम पुत्रवत्ही दिखा रहे हैं। तब मायावी बोला—मित्र! क्या मनुष्य भी तबका लमें बन्दर हो सकते हैं! दूसरा बोला—हाँ! जैसे अपने कर्मके फेरसे मिथान कोयखा होगया ऐसही तुम्हारे कर्मकी प्रतिकूलतासे तुम्हारे पुत्र बन्दर हो गए हैं। मायावीने सोचा कि अही। इसने बकर मेरा निधान जान लिया है अब अगर विस्वाता हूँ तो रामकुलमें झमका होगा और पुत्र भी नहीं मिलेंगे, ऐसा समझकर उसने निधानका सब हाथ कड़कर उसको भाषा बिस्वा बविया। दूसरेने भी उसके पुत्र मिठा दिये। यह बैठक और निधान विषयक उसकी आत्मसिक्तकी बुद्धि हुई।

१३ सिद्धसा य-सिद्ध-विभ्यका दृष्टान्त जैसे—भमुर्वामें कुशाक एक आचार्य किसी नगरमें आया और कुछ धर्मियोंके पुत्रोंको पढ़ाने लगा। बालकोंसे उस कलाचार्यने बहुतसा धन प्राप्त करलिया। इसपर शैतने सोचा कि बालकोंने इसको बहुतसा धन दिया है, अतः जब यह यहाँसे आवेगा तो इसको मारके सब धन छे लेना चाहिये। कलाचार्यने किसी तरह यह हाल जानलिया और दूसरे रातमें यह हुए अपने बन्धुओंको ऐसी खबर दी कि अमुक रातको मैं मोहरके पिण्डोंको नवीम पें-कूया (गिरार्जंगा), तुम इनको लखेना। उनके स्वीकार कर लेनेपर कलाचार्यने प्रथमके साथ मोहरके पिण्ड धूपमें सुलासिये। फिर शक लड़कोंसे कहा कि अमुक तिथिपूर्वमें हम स्नाम व मंत्रके साथ नवीम मोहरके पिण्डको गिराते हैं, ऐसी हमारी कुछविधि है। इसपर बालकोंने भी कहा ठीक है, जैसी आपकी इच्छा हो। फिर कलाचार्यने उन बालकोंके सहयोगसे उस रातमें मन्त्रपूर्वक मोहरके पिण्डोंको नवीमें पें-कविये। उपर है मोहर पिण्ड बन्धुओंने छेछिए। फिर कुछ दिनोंके बाद उन बालकों व शैत आदिको कहकर सि ६ देहप्राप्तके दखमात्र छिए हुए कलाचार्य अपने माँबको चला। शैतने भी देखा कि इसके पास तो कुछ नहीं है, फिर क्यों मारना? इसप्रकार उस कलाचार्यने तम व धन बचा छिए। यह कलाचार्यकी आत्मसिक्तकी बुद्धि थी।

१४ अत्यसत्ये-अर्थशास्त्रका दृष्टान्त, जैसे-एक शठको दो स्त्रियाँ थी, उनमें एकको पुत्र नहीं था और दूसरीकी था, किन्तु विना पुत्रवाली भी उस लड़केको बहुत प्यार करती थी, जिससे वह बालक दोनों माँमें कुछ भेद नहीं समझता। एकवार वह शठ व्यवसायके लिए घूमता हुआ श्रीसुमतिनाथ स्वामीकी जन्मभूमि हस्तिनापुरमें पहुँचा और संयोगवश यहीं मरगया तब दोनों पत्नियोंमें सम्पत्तिके लिए कलह होने लगा, एक कहती कि यह मेरा पुत्र है अतः गृहकी स्वामिनी मैं हूँ। दूसरी बोलती-नहीं गृहस्वामिनी मैं हूँ क्यों कि यह मेरा पुत्र है। विवाद बढ़ते २ राजकुलमें गया। महारानी मङ्गला-देवीको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने दोनोंको अपने पास बुलाकर कहा कि कुछ दिनोंके बाद मुझको पुत्र होगा और वह बड़ा होकर इस अशोकवृक्षके नीचे बैठा हुआ तुम्हारा न्याय करेगा, तबतक तुम दोनों सुख-पूर्वक यहाँ रहो। और अपने पुत्रको हमारे अधीन कर दो, न्याय होनेके बाद जिसका होगा दे दिया जावेगा। जिसका पुत्र नहीं था उसने यह सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे महारानीजी सत्य समझ गई और पुत्रवालीको पुत्र दे दिया तथा गृहस्वामिनी वना दी। झूठा वाद करनेसे दूसरी तिरस्कारपूर्वक हटा दी गई। यह महारानीजीकी औत्पत्तिकी बुद्धि हुई।

१५ इच्छा य महं-इच्छा महत्-का दृष्टान्त, जैसे-एक शैठानीके पतिके देहान्त हो गया। जब व्याज आदिपर दिए हुए उसके रूपये लोगोंने देने बन्द कर दिये, तब उसने अपने पतिके मित्रसे रूपये वसूल करानेको कहा। उसने जवाब दिया कि यदि प्राप्त द्रव्यमेसे मुझे भी कुछ दो तो मैं वसूल करा सकता हूँ। शैठानीने कहा-जैसी तुम्हारी मर्जी हो मैं वैसाही करूँगी। इसपर उसने लोगोंसे सब रकम वसूल कर ली और उसका थोड़ा भाग शैठानीको देना चहा। किन्तु शैठानी इसपर राजी न हुई और उसने राजकुलमें फरियाद की। तब अधिकारियोंने वसूल किया हुआ सब द्रव्य भँगाकर दो भागोंमें विभक्त कर दिया, एक भाग बड़ा और दूसरा छोटा। फिर वसूल करनेवालेसे पूछा कि तू कौनसा भाग लेना चाहता है? वह बोला-बड़ा भाग। तब न्यायाधीशने अक्षरार्थका विचारकर कहा कि बड़ा भाग इसका भी दूसरा हिस्सा तुम्हारा है, इस प्रकार न्यायाधीशने मामला निपटा दिया। यह अधिकारियोंकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

१६ सयसहस्ते-शतसहस्रका दृष्टान्त इसप्रकार है-किसी परिव्राजकके पास चाँदीका एक बड़ा भाँड था और साथही उस परिव्राजकमें यह भी खुबी थी कि जिसको वह एकवार सुनलेता उसे धारण किये विना नहीं छोड़ता। इससे बुद्धिका उसे अहंकार होगया और उसने ऐसी घोषणा करदी कि जो कोई मुझे कुछ अशुभपूर्व बात सुना दे उसको मैं अपना यह रजतभाँड दे दूँगा। किन्तु उसको कोई भी अपूर्व बात नहीं सुना सका क्यों कि सुन

लेनेके धाव अपनी धारणाशक्तिके बलपर यह सुनानेवालेको ज्योंका त्यों सुना देता भीर कहता यह सो मैंने पहलेदेही सुनी है। किसी सिद्धपुत्रने यह प्रतिज्ञा सुनी और कहा कि मैं परित्राजकजीको अपूर्व बात सुना दूँगा, बहरों कि यह प्रतिज्ञापर ब्रह्म रहें।

यह बात राजाके कानतक पहुँची और निर्णयके लिए राजमहलही स्थान चुना गया। हजारों आधुमी वर्षाके रूपमें इकट्ठे होमय, परित्राजकजी भी वहाँ आए और राजाके सामने कार्यक्रम चालू हुआ। सिद्धपुत्रने आनेका श्लोक पढ़ा—
गाहा—सुज्झ पितामह पिउणो, धारेइ अणुणयं सयसहस्सं ।

जइ सुयपुत्र दिज्जउ, अह न सुयं खौरयं वेसु ॥ १ ॥

जिमका माव यह है कि-तेरा पिता मेरे पिताके एक छाल रूपसे भारता है, अगर पहले सुना है तो यह ब्रह्म बुकाओ अगर नहीं सुना है तो प्रतिज्ञाके अनुधार मुझे चाँचीका माँड दो। इसपर परित्राजकको परामित होकर वह माँड देना पडा। यह सिद्धपुत्रकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

ये औत्पत्तिकी बुद्धिके उदाहरण समाप्त हुए। अब आने जाकर शास्त्रकार वैश्विकी बुद्धिकी चर्चा करते हैं—

मूल—गाहा—७३

मरनिस्तरणसमत्था, तिवग्गमुत्तत्थगहिपेयाला ।

उममोलोगफलवई, विणयसमुत्था व्वइ बुद्धी ॥ १ ॥

छाया—गाथा—७३

मरनिस्तरणसमर्था, त्रिवर्गसुधार्थगृहीतपेयाला (प्रमाणा)

उमयलोकफलवती, विनयसमुत्था भवति बुद्धि ॥ १ ॥

टीका—कठिन कार्यभारके निस्तरण-निर्वाह करनेमें समर्थ, तथा धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्गके वर्णन करनेवासे छत्र और अर्थका प्रमाण वा सार ग्रहण करनेवाली तथा जो इस श्लोक और परस्ताक दोनोंमें फलवाचिनी है वह विनयसे होनेवाली बुद्धि है। अर्थात् विनयसे उत्पन्न हुई बुद्धि कठिनसे कठिन प्रसंगको भी छलझानेवाली और नीतिचर्म व अर्थशास्त्रके सारको ग्रहण करनेवाली होती है। इसीलिए यह दोनों श्लोकोंमें फलवाचिनी है। इसपर कुछ उदाहरण बिज्ञाते हैं—

मूल—गाहा—७४

निमित्ते^१ १ अत्थसत्थे २ अ, लेहे ३ गणिए ४ अ कुब ५

अस्से ६ य । गर्दभ(ह) ७ लक्षण ८ गंठी ९ अगए १०
रहिए ११ य गणिया १२ य ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७४

निमित्त १ अर्थशास्त्रे २ च, लेखे ३ गणिते च ४ (उदा-
हरणानि) कूपाश्वौ च ५, ६ गर्दभ ७ लक्षण ८ ग्रन्थ्य
गदाः ९।१०, रथिकश्च ११ गणिका १२ च ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ-७४ निमित्त १, अर्थशास्त्र २, लेख ३, गणित ४, कूप
५, अश्व ६, गर्दभ ७, लक्षण ८, ग्रन्थ्य ९, अगद १०, रथिक और गणिका ११-
१२ इन सब उदाहरणोंका कथारूपसे विशेष स्पष्टीकरण नीचे करते हैं—

१ निमित्ते-निमित्त का दृष्टान्त जैसे-किसी नगरमें एक सिद्धपुत्र
अपने दो शिष्योंको निमित्तशास्त्र पढा रहा था। शिष्योंमें एक जो विनय-
सम्पन्न था वह गुरुके उपदेशको यथावत् बहुमानपूर्वक स्वीकार करता और
बाद अपने चित्तमें विचार करते हुए जहाँ भी सन्देह हुआ तत्काल गुरुके
पास जाकर विनयपूर्वक पूछ लेता। इस प्रकार निरन्तर विनय और विवेकके
साथ शास्त्र पढते हुए उसने तीव्र बुद्धि प्राप्त कर ली। दुसरा इन गुणोंसे
रहित होनेके कारण केवल शब्दज्ञानही मिला सका। एक दिन दोनों गुरुके
आदेशसे किसी पासके गांव में जा रहे थे। मार्गमें किसी बड़े जन्तुके चरण
चिन्ह दिखाई देते थे। विनयी शिष्यने दुसरेसे पूछा कि बन्धु! ये किसके
पाँव हैं? उसने कहा इसमें क्या पूछना? ये साफ हाथके पाँवके चिन्ह
दिखते हैं। विनयीने कहा-नहीं ऐसा नहीं हो सकता, ये हथिनीके चरणचिन्ह
हैं, और वह हथिनी बाँयी आँखसे काणी है तथा उसपर किसी बड़े
घरकी सधवा स्त्री बैठके जा रही है व एक दो दिनमेंही उसको बालक पैदा
होगा क्योंकि उसके मास अब पूरे हो गये हैं। विनयीके ऐसा कहनेपर दुस-
रेने पूछा-अजी! यह किसपरसे समझते हो? विनयी बोला-ज्ञानका सारही
विश्वास होना है, चलो आगे इसका निर्णय हो जायगा। ऐसा कहके दोनों
उस गाँवमें पहुँचे। जातेही देखते हैं कि गाँवके बाहर तालावके किनारे किसी
रानीका डेरा है। और हथिनी भी बाँयी आँखसे काणी है। इसी बीचमें एक
दासीने आकर मंत्रीसे कहा कि स्वामिन्! राजाको पुत्रलाभ हुआ है, बधाई
दीजिए। विनयीने ऐसा सुनकर दुसरेसे कहा कि क्यों बन्धु? दासीका वचन
सुना? उसने कहा-हाँ, तेरी सब बात सच्ची है। फिर तालावमें हाथ पाँव
धोकर दोनों विश्रामके लिए एक वटवृक्षके नीचे बैठे। उधरसे मस्तकपर
पानीका घडा रक्खे हुए एक बुढिया जा रही थी उसने इन दोनोंकी आकृति व
प्रकृति देखकर सोचा कि ये दोनों कोई विद्वान् है। अतः इनसे पूछना चाहिए

१ गणिया य रहिए य-ति-आ. म. वृत्ती ।

किं मेरा देशान्तरमें गया हुआ पुत्र कब लौटेगा। ऐसा सोचकर पास गई और मन्त्रतापूर्वक पूछने लगी। उसी समय मस्तकसे गिरकर घड़ा सुकड़ी र होगया तुरन्त दूसरा यह देखके बोळ उठा-मां! तेरा पुत्र घड़ेकी तरह मरगया है। इसपर विनयीन कहा-मित्र! ऐसा मत कहो। इसका पुत्र अभी घरपर आया हुआ है और बुढ़ियासे भी बोळा कि मां! घर जाओ अपने बिरबिहुड़े पुत्रका मुंह देखो।

विनयीकी बातसे प्रसन्न हुई बुढ़िया उसको आशीर्वाच देती हुई घर गई और उसी समय घरपर आप हुए पुत्रको देखा। पुत्रके प्रणाम करनेपर आशीर्वाच देकर बुढ़ियाने मैमिसिकका कहा हुआ सब वृत्तान्त पुत्रसे कह सुनाया। फिर पुत्रको पूछकर कुछ रुपये व वस्त्रपुमल बुढ़ियामे विनयीको अर्पण किये। तब दूसरा सोचने लगा कि-अहो! गुरुने मुझे अच्छा नहीं पढाया है, अन्यथा शैला यह जानता है, शैला में क्यों नहीं जानता।। कार्य हो जानेपर दोनों गुरुके पास आए। गुरुके दर्शन करतेही विनयीने अश्रुलि जोड़े हुए शिरको ममाकर आनन्दासुपूर्वक गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया। दूसरा शैलस्तम्भकी तरह थोड़ा भी विना नमे मास्वर्य्य भरता हुआ गुरुके सामने खड़ा रहा। तब उससे गुरु बोले-अरे! क्या आज प्रणाम भी नहीं करता! यह बोला-जिसको अच्छीतरह सिखाये हो यह प्रणाम करेगा हम पक्षपाती गुरुको प्रणाम नहीं करते। गुरु बोले-क्या तुमका अच्छा नहीं पढाया! इसपर उसने पहलेका सब हाल कह सुनाया। तब गुरुने विनयीसे पूछा-यत्स! तुमने यह सब कैसे जाना! कहो। वह बोला-गुरुदेव! मैंने आपकी कृपासे विचार करना शुरू किया कि दार्धीके तो पाँव दिततेही हैं किन्तु यिदोप क्या है! फिर उसकी सपुशंकाको देखकर निश्चय किया कि ये द्यिनीके पाँव हैं। दक्षिण बाजूके सब वृक्ष साये हुए थे किन्तु बायी बाजूके नहीं, इससे यह समझा कि बायी भाँलसे यह कापी है। साधारण मनुष्य दार्धीकी सवारी नहीं कर सकता इससे निश्चय किया कि इसपर राजकीय मनुष्य है। वृक्षपर लगे हुए रंगीत पत्रके भागसे सपना राणी और भूमिपर सपुशंका करनेका बाव दाय टेकके उठनेसे गर्मयती है तथा दक्षिणचरण और दायपर अधिक मार पड़नेसे अस्पसमयमही पुत्रोत्पत्ति होगी ऐसा समझा। उम वृद्धाके भ्रम करतेही जब घटा गिरकर टूटगया तब मैंने सोचा कि जैसे घड़ेका मिर्हीभाग मिर्हीमें और पानी पानीमें गिरगया है ऐसे वृद्धाको भी इसका पुत्र गिरना चाहिए। विनयीके इसप्रकार भिवेकपूर्वक हानको सुन कर आचार्यने प्रेम प्रकट किया और उसका समझकी तारीफ की, फिर वृमरण बोसं परत। इसमें हमारा बोप नहीं यह तेराही बाव है कि तू विचार नहीं करता हम तो नाराज समझानेके अधिकारी हैं विमरी करना तो तुम्हारा कार्य है। विनयी शिष्यकी यह मिमिल विषयमें विनयिकी बुद्धि हुई।

१ आचर्य्य-अर्धदण्डके विषय में कस्यक भेरीका वृत्तान्त है।

३-४ लहे-लिपिज्ञान और गणित-गणितज्ञान में कुशलता भी विनयजा बुद्धि है।

५ कृव-कूप भूमि विज्ञानमें कुशल ऐसे पुरुषका उदाहरण, जैसे-किसी खोदकार्यमें कुशल पुरुषने एक किसानको कहा कि यहाँ इतनी दूरमें पानी है। जब उतनी जमीन खोदलेनेपर भी पानी नहीं निकला तब किसानने उससे कहा पानी तो नहीं निकला! तब उसने कहा-वाजूकी भूमिपर जरा (थोडा) एडीसे प्रहार करो। किसानके ऐसा करतेही पानी निकल आया। यह उसकी वैनयिकी बुद्धि है।

६ अस्से-अश्व-के ग्रहणमें वासुदेवकी बुद्धिका उदाहरण, जैसे-किसी समय बहुतसे घोडेके व्यापारी घोडे बेचनेको द्वारिका गये। उस समय यदुवंशी राजकुमारोंने सब आकार प्रकारसे बडे घोडे खरीदे, वासुदेवने लक्षणसम्पन्न एक दुर्बल घोडा खरीदा। कुछही दिनोंमें वह घोडा सब हृष्ट-पुष्ट घोडोंको पीछे चलानेवाला और कार्यक्षम सिद्ध हुआ। यह वासुदेवकी विनयजा बुद्धि थी।

७ गद्दम-गर्दभका दृष्टान्त, जैसे-किसी राजपुत्रको युवावस्थाके प्रारम्भ मेंही राज्यपद मिला था, इससे वह सभी कार्यमें युवावस्थाकोही समर्थ मानता था। इसीलिये उसने अपने सैन्यमें भी सब युवकोंकोही भर्ती किये, तथा वृद्धोंको निकाल दिये। एक दिन सैन्य लेकर राजा कहीं युद्धको गया हुआ था, जब कि अकस्मात् मार्ग भूलजानेसे किसी अटवीमें पड गया और पानी नहीं होनेसे साथके सभी लोग प्यासके मारे व्याकुल होगए। तब राजा भी किंकर्तव्यविमूढ बन गया। उस समय एक सेवकने कहा-देव! वृद्ध पुरुषकी बुद्धिरूप नौकाके सिवाय यह दुःखसागर पार नहीं किया जा सकता। अतः आप किसी वृद्ध पुरुषकी तलाश करें। इसपर राजाने सब कटकमें वृद्धकी तलाश की व घोषणा करवाई। वहाँ एक पितृभक्त सैनिकने छिपाकर अपने पिताको ररखा था। वह बोला-देव! मेरा पिता वृद्ध है, सुनकर राजाने उसे बुलाया और आदरसे पूछा-महाभाग! मेरे सैन्यको इस अटवीमें पानी कैसे मिलेगा! कहो, वृद्धने कहा-स्वामिन्! कुछ गदहोंको स्वतन्त्र छोड दीजिए और जहाँ वे भूमिको सूँघे वहीं आसपासमें पानी है यह समझ लेवे। वैसाही किया गया जिससे कटकको पानी मिलगया और सभी लोग स्वस्थ होगये। यह स्थविरकी विनयजा बुद्धि थी।

८ लरखण-लक्षण का दृष्टान्त, जैसे-पारसदेशीय एक गृहस्थ बहु-तस घोडोंका मालिक था। उसने किसी योग्य आदमीको घोडोंके रक्षणके लिए रखा और उससे कहा कि इतने वर्षतक तुम काम करोगे तो दो घोडे तुमको परिश्रमके बदले दिये जायेगे। उसने भी यह स्वीकार करलिया। रहते २ स्वामीकी लडकीके साथ उसका बडा स्रह होगया। एक दिन उसने कन्यासे

पूछा-इन सब घोड़ोंमें कौन दो घोड़े सबसे अच्छे हैं। स्वामिकन्याने कहा कि यों तो सभी घोड़े विश्वासपात्र हैं, किन्तु दो घोड़े जो बूझोंसे गिराए हुए बड़े पत्थरोंके शाय्योंको छुनकर भी नहीं डरते वे उत्तम हैं। उसने उसी प्रकार परीक्षा की और उन घोड़ोंका पहचान लिया। फिर घेतन छेनेके समयमें स्वामीसे बोला कि मुझे अनुक १ वा घोड़े वीक्षिण्य। स्वामी बोला-अरे! दूसरे अच्छे १ घोड़े ह। उनको छे इन दोका छेकर क्या करेगा। ये अच्छे भी नहीं हैं। छेकिम उसने यह बात नहीं मानी। तब दोठने सोचा-इसको बरजमार्ग बनानेना चाहिए, नहीं तो इन उत्तम घोड़ोंको छेके यह चला जायगा। छक्षणसम्पन्न घोड़ेसे कुटुम्ब व अन्वसम्पत्तिकी भी वृद्धि होगी। ऐसा सोचकर कन्याकी अनुमतिसे उन दोनोंका विवाह कराविया। उसको बरजमार्ग बनानेसे छक्षणसम्पन्न घोड़े बचाछिण्य गये। यह अन्वस्वामीकी विनयजा बुद्धि थी।

९ मंठि-घन्थि के द्वार समझनेमें पादछिताचार्यकी बुद्धिका दृष्टान्त इस प्रकार है-किसी समय पाटाछिपुरमें मुरंड नामका राजा राज्य करता था। परराष्ट्रके राजान एकदिन कौतुकक छिए उसके पास तीन चीजें भेजी। १ मूखसूत्र-छिपी गांठवाला सूत्र, २ समयसि-सममामवाली छकडी, व ३ छालसे छिपकाया हुआ छिये द्वारका डब्बा। राजाने अपने सभी दरबारियोंको य चीजें बिसार किन्तु कोई भी नहीं समझ सका। तब राजाने पादछित नामके आचार्यको बुझाकर पूछा-भयवन्! आप इनके घन्थिद्वार जानत हो। भाषा घने कहा-हाँ जानता हूँ। ऐसा कहके उसी समय सूत्रको गरमपानीमें डाला तो उष्ण पानीके संयोगसे सूत्रका मूख छट गया और अन्त-घन्थिका भाग-विल पडा। छकडी को भी पानीमें गिराया जिससे मातृम हुआ कि मूख भारी है और भारी भागपरही घन्थि होती है। फिर डब्बको भी गरम करवाया जिससे छालका सब भाग गल जानेपर द्वार प्रकट होमया। राजा भावि सभी वरीक इन कौतुकको इत्तकर खुदा हुए, फिर राजाने आचार्यस कहा-महाराज! आप भी कोई घिसा बुझाय कौतुक करिय जिसको मैं घदों भेज सकूँ। तब आचार्यने किसी तुम्बाके एकप्रदेशमें एक छण्ठ छटाकर घदों रख मर दिए तथा उस राज्णको इन प्रकार सीबिया कि किसीको छक्षित ही नहीं हो। फिर पर राज्णक राजपुत्रोंको सूचना करवी कि इसको भांग (फोड) कर इससे रत्न छे छव्य। किन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी उनको रत्नोंका पता नहीं चला।

यह आचार्यकी विनयजा बुद्धि थी।

१० अयप-भगव घिघकी विषापदाममबुद्धिका दृष्टान्त ईस-किसी राजाके राज्यका शासक राजाभोजि चारों ओरम घेर लिया। छोटे घिन्यसे उनका मुकाबला करना अशक्य है, ऐसा सोचकर राजाने पानीम विषयोंम करवाया छुरू किया। सभी छोग अपने १ पासक विष छान छने। एक घिघ यवमात्र

विष लेकर राजाको भेंट किया। बहुत थोड़ा विष देखकर राजा वैद्यपर बहुत क्रुद्ध हुआ। तब वैद्य बोला—महाराज ! यह विष सहस्रवेधी है, थोड़ा देखकर आप नाराज न होंगे। इसपर राजाने पूछा कि इसके सहस्रवेधी होनेमें क्या सबूत है ? वैद्य बोला—देव ! किसी पुराने हाथीको मंगवाइये मैं प्रयोग करके दिखाता हूँ। उसी समय एक बूढ़ा हाथी लाया गया और वैद्यने उसकी पुच्छका एक बाल उखाटकर उस बालसे हाथीके भिन्न २ अंगोंमें विषप्रयोग किया। जिस २ अंगमें विष फैलता गया उन २ अंगोंको नष्ट कर दिया। तब वैद्य बोला—देव ! हाथी विषमय होगया है अब जो भी इसको खायगा वह भी विषमय हो जायगा। इसप्रकार यह विष क्रमशः हजारतक पहुँचता है। हाथीकी मृत्युसे राजा कुछ उदास होकर बोला—क्या अब हाथीको जिलानेका भी उपाय है ? वैद्य बोला—जरूर ! उसी बालके रन्ध्र-(सूँचे)में एक औषध दिया गया जिससे कुछही समयमें वह विषविकार शान्त होगया। हाथी अच्छा बनगया और राजा भी वैद्यपर सन्तुष्ट हुआ। यह वैद्यकी विनयजा बुद्धि हुई।

१६-१२ रहिण अ गणिआ-रथिक और गणिकाकी वैनयिक-बुद्धिमें उदाहरण-स्थूलभद्रकी कथामें एक रथिकका आम्रफलोंकी लुम्बी तोडना और गणिकाका सर्पपकी राशिपर नाचना। ये भी विनयजा बुद्धिके क्रमशः उदाहरण बताए गए हैं।

मूल—गाथा-७५

सीआ साडी दीहं च तणं, अवसव्वयं च कुंचस्स १३ ।

निव्वोदए १४ य गोणे, घोडग पडणं च रुक्खाओ १५ ॥ ३ ॥

छाया-गाथा-७५

शीता साटी दीर्घञ्च तृणम्, अपसव्यञ्च क्रोञ्चस्य १३ ।

नीव्रोदकं १४ च गौः, घोटक-(मरणं) पतनञ्च वृक्षात् १५ ॥ ३ ॥

टीका—गाथार्थ-७५ सूखी साडीको ठंडी कहने और तृणको लम्बा कहने, एवं क्रौंचका वामभागमें घूमनेसे आचार्यका बोध १३। विषमय पानीसे जारमरण १४, व बैलका चोरी जाना, घोडेका मरण और वृक्षसे पतन १५ इनका भाव दृष्टान्तसे समझें।

१३ साटी आदिका दृष्टान्त, जैसे—कुछ राजकुमारोंको एक कलाचार्य शिक्षण दे रहा था। राजकुमारोंने भी उपकारके बदलेमें बहुमूल्य द्रव्योंसे समय २ पर आचार्यका सन्मान किया। इसप्रकार अपने पुत्रोंके बहुमूल्य द्रव्य देनेपर

फुट्ट होकर राजाने आचार्यको मरवाना चाहा। किसीतरह राजपुत्रोंको यह बात मालूम हो गई। उन्होंने सोचा कि विद्यावाता होनेसे आचार्य भी हमारे पिता हैं, अतः इनको विपत्तिसे बचा लेना हमारा कर्त्तव्य है। थोड़ी देरके बाद आचार्य भोजनके लिए आए और घोती माँगने लगे। इसपर कुमारोंने सूली छोते हुए भी कहा-साटी गीली है, तथा द्वारके सामने एक छोटा वृक्ष खड़ा करके बोल-वृक्ष बहुत शीघ्र-सम्वा है। ऐसेही कौञ्चशिष्य पहले सदा आचार्यकी वक्षिण ओरसे प्रवृत्तिमा करता किन्तु अभी वह धामधामसे घूमने लगा। इसप्रकार कुमारोंके विपरीत कथन और कौञ्चके धामधामसे आचार्य समझगये कि सभी भैरव विरुद्ध (जलटे) हैं, केवल ये कुमारी भक्ति जता रहे हैं। ऐसा सोचकर राजाको खसित न हो इसप्रकारसे आचार्य बले गए। यह आचार्य और कुमाराकी विनयजा बुद्धि हुई।

१४ निर्योद्ध-मीनोद्ध-कोतयालकी मृतकपरीक्षाका दृष्टान्त जैसे— बहुत दिनोंसे किसी यणिकु स्त्रीका पति भिक्षामें मया हुआ था। एक दिन उस यणिकु यष्टने कामातुर होकर अपनी बारीसे किसी पुरुषको सानेक लिये कहा। बारी भी एक सुवायस्थासम्पन्न पुरुषको ले आई। फिर नारीसे उसके मूल केश आविका संस्कार करवाया गया। रातमें उस पुरुषके साम दाडानी दूसरे मंजिलपर गई। कुछ समयके बाद उस पुरुषको प्यास लगी। उसने तत्काल बरसा हुआ मेघका पानी पी लिया। पानी स्थानमें विपवाले सर्पसे छूआ गया था अतः पानी पीनेके दूसरेही क्षण यह पुरुष मर गया। इस आकस्मिक घटनासे भयभीत हो उस यणिकुयष्टने रातके पिछले भागमें किसी घुन्य बेवचन यह शपथ लेजाकर शरणा दिया। प्रातःकाल होतेही लोगोंकी दृष्टि पड़ी तो तुरन्त कोतयालको सूचना दी गई। उसने आकर देखा तो मालूम हुआ कि इस मृतपुरुषके नरकशाधि बाढेही समय पहले बनाए गये हैं। इसपर नारीसे पूछा गया उनमेंसे एकने कहा कि स्वामिन्! अशुभ शीतकी बारीके कदनेस इसके मरण आदि मैंने बताया है। बारीस भी इस बातकी जांच करके भैरव सुलभा लिया। यह नगररक्षककी विनयजा बुद्धि हुई।

१५ गोमे घोदग-(मरण), पटल च रुद्रगओ-विलकी खोरी दोमा प्रहारसे घोदका मरण भीर पुराने पत्रके दृष्टनक कारण वृक्षस गिरना इनका अभिप्राय निम्न दृष्टान्तमें समझें जैसे किसी गाँवमें एक पुण्यहीन पुरुष रहता था। एक दिन यह अपन मित्रम धैर्य माँगकर दल बछाने गया। कार्य हो जानपर घरवाक समय विलको बाढेमें लाकर छोड़ दिया। मित्र भोजन कर रहा था अतः यह उनके पास नहीं गया बचल मित्रने विलका बहारलिया है, इसलिये मित्रको विना बढेही यह घर गया। विल भनापधार्मिक कारण बाढेसे निकलकर बढी गया और चारोंन शीका पाकर उगको शुरु लिया। मित्र बाढेमें विलका न बगर उगम माँगन लगा किन्तु यह बढीस देता। क्योंकि

वह तो चोरी हो गया था। तब न्याय करानेके लिए वह मित्र पुण्यहीनको राजकुलमें ले चला। मार्गमें घोड़ेपर चढ़ा हुआ एक आदमी सामनेसे आ रहा था, अकस्मात् घोड़ेके चौंकेसे वह उसपरसे गिर गया और घोड़ा भागने लगा। ये लोग सामने आ रहे थे वास्ते उसने कहा कि घोड़ेको जरा मारके वहीं रोक रखना। पुण्यहीनने उसकी बात सुनतेही घोड़ेके मर्मस्थलपर एक प्रहार करदिया, घोड़ा कोमल प्रकृतिका होनेसे प्रहार लगतेही मरगया, अब तो घोड़ावाला भी पुण्यहीनपर अभियोग चलानेको साथ हो गया, जबतक ये लोग नगरके पास आये तबतक सूर्य अस्त हो गया, इसलिए रातमें तीनोंही नगरके बाहर ठहर गये। वहाँ बहुतसे नट सोये हुए थे। उसी समय वह पुण्यहीन सोचने लगा कि इस प्रकारके दुःखसे तो गलेमें पाश डालके मर जाना अच्छा है, जिससे कि सदाके लिए विपत्तिका पिण्डही छूट जाय। ऐसा सोचकर अपने वस्त्रका वृक्षपर पाश बांधके गलेमें डाल लिया। अत्यन्त जीर्ण होनेसे वह वस्त्र भार पडतेही टूट गया, इससे वह बेचारा नीचे सोये हुये एक नटके मुखियेपर जा गिरा, जिससे वह नट मरगया।

नटोंने भी उस पुण्यहीनको पकड़ा और सुबह होतेही तीनों पुण्यहीनको लिए हुए राजकुलमें पहुँचे। राजकुमारने उन सबोंकी बाते सुनकर पुण्यहीनसे पूछा। उसने दीनताके साथ कहा कि महाराज ! इन सबका कहना सच्चा है। तब राजकुमार इसपर दया करके उसके मित्रसे बोले कि यह तुमको बैल देगा किन्तु तुम्हारी आँखें उखाड लेगा, क्योंकि जिसी समय तुमने अपने सामने बैल देखलिया उसी समय यह ऋणमुक्त हो गया। अगर तुम नहीं देखे होते तो यह भी अपने घर नहीं जाता, क्यों कि जो जिसको कुछ देनेके लिए आता है वह बिना उसको समझाये अपने घर नहीं जा सकता। इसने तुम्हारे सामने लाकर बैल छोड़ा था अतः यह निर्दोष है। फिर घोड़ेवालेको बुलाया और कहा कि हम तुम्हारा घोड़ा दिलायेगे, किन्तु तुमको अपनी जीभ काटकर इसको देनी होगी, क्यों कि तुम्हारे कहनेपरही इसने घोड़ेपर प्रहार किया है, बिना कहे नहीं, अतः तुम्हारी जीभही पहले दोषी होती है, उसको उखाडकर अलग कर देना चाहिये। इसी प्रकार नटोंको बुलाकर कहा—देखो, इसके पास कुछ भी नहीं जो तुमको दण्डमें दिलायें, इन्साफ इतनाही कहता है कि जैसे गलेमें पाश डालके यह वृक्षसे तुम्हारे स्वामीपर गिरा, इसी प्रकार तुम्हारे-मेंसे कोई प्रधान इसपर वृक्षसे गिरें यह नीचे सो जायगा। कुमारकी ऐसी बातें सुनकर सभी चुप हो गये और वह पुण्यहीन अभियोगसे मुक्त हो गया। यह राजकुमारकी वैनयिकी बुद्धि हुई।

कर्मजा बुद्धिका विवरण—

मूल—गाथा—७६

उवओगद्विद्वसारा, कम्मपसंगपरिघोलणविसाला ।

साहुक्कारफलवई, कम्मसमुत्था हवइ बुद्धी ॥ १ ॥

गाथा-७७

हेरण्यक १ करिष्य २, कौलिक ३, शोव ४ य मुक्ति ५ घय ६ पवप ७।
तुङ्गाप ८ वङ्ग ९ य पूय १० घट ११ चित्रकारे १२ य ॥ २ ॥

छाया-गाथा-७६

उपयोगदृष्टसारा, कर्मप्रसङ्गपरिघोलनविशाला ।

साधुकारफलवती, कर्मसमुत्था भवति बुद्धि ॥ १ ॥

७७ हेरण्यक १, कर्षक २, कौलिक ३, शोव (वर्षिकारम्भ) ४,
मौक्तिक-घृत-पुवका ५।६।७। तुङ्गागो ८ वङ्गकिम्ब ९
आपूपिक १० घट-चित्रकारौ च ११।१२ ॥ २ ॥

टीका-साधार्य ७६- अथ कर्मजा बुद्धिका संज्ञा कथत है- एकाम
बिन्दुसे उपयोगसे कार्यके परिणामको देखनेवाली, तथा अनेक कार्यके अभ्यास
और विचार-चिन्तनसे विशाल एवं विद्वानोंसे की हुई प्रशंसाके फलवाली
ऐसी कर्मसे उत्पन्न होनेवाली बुद्धि कर्मजा कहती है ॥ १ ॥

कर्मजा बुद्धिके विषयमें इहान्त- १ सुवर्णकार, २ कर्षक, ३ कौलिक, ४
शोव-वर्षी आवि बनानेवाला घाने शोहकार, ५ मणिकार, ६ घृतविक्री, ७
पुवक-उत्तलनेवाला, ८ तुङ्गाम-सीनेवाला ९ वङ्गकि-वहई, १० आपूपिक-
हस्तवाह, ११ कुम्भकार, १२ चित्रकार आदि ॥ २ ॥

इम इहान्तोंका विशेषरूपसे स्पष्टीकरण-

१ हेरण्यक-सुवर्णकार-जिस सुवर्णकारने अपने विद्वानमें अच्छीतरह
अनुभव प्राप्त कर लिया है वह समय पाकर हस्तस्पर्श तथा देखनेमात्रसेही
सोनेचाँदीकी धार्य परीक्षा कर लेता है, यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

२ कर्षक-किसी चोरने रातमें एक धनीके वहाँ पक्षके आकारका सेंच
खोदी। प्रातःकाल वहाँ बहुतसे शोग जमा हुए और चोरके सेंच खोदनेकी
प्रशंसा करने लगे। छिपेरूपसे चोर भी सुन रहा था। उसी समय एक किसान
बोला कि जिसने जिस कार्यका अधिक अभ्यास किया है वह उसमें कुशल
होताही है, इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं। किसानकी बात सुनकर
चोरको बहुत क्रोध हुआ। उसने एक भाषीसे पूछा कि यह कीन है तथा
कहाँ रहता है? पता समझकर कुछ देरके बाद किसानके पास खेतमें पहुँचा
और बोला-भरे। भाग में तुझे मारता हूँ। किसान बोला-क्यों? चोरने कहा-
तुने चाँदीके सामने मेरी सेंचकी प्रशंसा नहीं की इसलिये। वह बोला-

प्रशंसा नहीं करनेका कारण ठीक है, जो जिस कार्यमें सदा अभ्यास करता है, वह उस विषयमें कुशल होता है, देखो, मैही उसमें दृष्टान्त हूँ। हाथमें लिए हुए इन मूंगोंको अगर कहो तो सब उल्टे मुंह डालूँ और कहो तो ऊर्ध्व-मुख-ऊपरमुख से, या बाजूसे गिराऊँ। इसपर चोर बहुत विस्मित हुआ और बोला कि सभीको नीचे मुखसे गिराओ। किसानने भूमिपर एक कपडा फैलाकर सभी मूंग अधोमुख-नीचे मुंह-से गिरादिये। चोरको बड़ा विस्मय हुआ। किसानकी कुशलताको बारबार सराहता हुआ वह चला गया। कर्षकके प्राण बच गये। यह कर्षककी कर्मजा बुद्धि हुई।

३ कोलिय-कौलिक-तन्तुवाय-कपडा बुननेवाला अपनी मुष्टिमें तन्तुओं-(सूतों)-को लेकर जान लेता है कि इतने कंडोंसे इतना वस्त्र बनेगा। यह तन्तुवायकी कर्मजा बुद्धि है।

४ दर्वी-डोव बनानेवाला-लोहकार यह सहजमें जान जाता है कि इसमें इतनी वस्तु समायेगी यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

५ मौक्तिक-मणिकार अपने अभ्याससे मोतीको आकाशमें उछालकर नीचे युक्तिसे रक्खे हुए शूरके बालमें उसे इस प्रकार धरते हैं कि वह मोती बालमें पिरोलिया जाता है। यह उसकी कर्मजा बुद्धि है।

६ घय-घृत-विक्रयी-घी बेचनेवाला अधिक अभ्याससे ऐसा कुशल बन जाता है कि चाहे तो गाड़ीमें रहा हुआ भी नीचेकी कुण्डीकी नालमें घी डाल देता है।

७ प्लवक-कूदनेवाला भी अपनी क्रियाके अनुभवसे आकाशमें अनेक प्रकारके खेल दिखा देता है।

८ तुन्नाग-सीनेवाला अपने क्रिया-कौशलसे वैसा सीलेता है जो किसीको लक्षित भी न हो।

९ वर्द्धकि-कुशल रथकार विना मापे ही रथ आदिमें लगने वाली लकड़ीका प्रमाण जान लेता है।

१० आपूपिक-निपुण हलवाई विना तोले अपूप-भालपूए आदिका माप जान लेता है और आदेशानुसार वस्तु बना देता है।

११ घड-घटकार-अनुभवी कुम्भार विना वजन कियेही घडे बनाने जितने मृत्पिण्ड ले लेता है।

१२ चित्रकार-कुशल चितारा चित्रकी भूमि विना मापेही चित्रका प्रमाण जान लेता है और कूंचीमें उतना ही रंग लेता है जितनेका उसको प्रयोजन होता है।

तन्तुवायसे लेकर चित्रकारतक ये सब कर्मजा बुद्धिके उदाहरण हैं।

मूल—गाथा—७८

अणुमाण-हेतु-विद्वृत-साहिया धयविवागपरिणामा ।

हियनिस्सेपसफलवई, बुद्धी परिणामिया नाम ॥ १ ॥

७९ अमय १ सिद्धि २ कुमारे ३, देवी ४ उद्विओव्य हवइ राया ५ ।

। साहू य नविसेणे ६, घणवत्ते ७ सावग ८ अमये ९ ॥ २ ॥

छाया—गाथा—७८

अनुमानहेतुवृष्टान्त-साधिका, धयोविपाकपरिणामा ।

हितनि-धेयसफलवती, बुद्धि पारिणामिकी नाम ॥ १ ॥

७९ अमय १ भेष्ठिकुमारो २।६, देवी ४, उद्वितोव्यो भवति राजा ५ ।

साधुध्व नन्विपेण ६, घनवत्त ७, भावकोऽमात्य ८।९ ॥ २ ॥

टीका—गाथार्थ—७८-७९ अनुमान हेतु और वृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करनेवाली अबस्याके परिपाकसं पुष्ट तथा उच्यति और मोक्षरूप फलवासी बुद्धि पारिणामिकी है अर्थात् जो स्वार्थानुमान हेतु और वृष्टान्तसे विषयको सिद्ध करती है तथा लोकोहित व लोकोत्तर मोक्षको देनेवाली है ऐसी अबस्याके परिपाकसे होनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है ॥ १ ॥

अमयकुमार १ भेष्ठी २ कुमार ३ देवी ४ उद्वितोव्य राजा ५ मुनि और नविपेण कुमार ६ घनवत्त ७ भावक ८ अमात्य ९ ॥ २ ॥ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ।

१ अमयकुमार—बंधमधीतसे अमयकुमारने चार वर मांगे और बंधमधीतको वाचकर रोते हुए अमयकुमार नगरमें छे आया था । यह अमयकुमारकी पारिणामिकी बुद्धि है ।

२ सिद्धि-भेष्ठी, जैसे-किसी बैठने अपनी मायाके इच्छारिणको देखकर हीसा स्वीकार की । उपर उस स्त्रीको परपुरुषके समागमसे गर्भ रह गया तब राजपुरुष उसको राजाके पास ले आया । उसी समय एक मुनि भी बिहारक्रमसे घूमते हुए उस गाँवसे निकले । स्त्रीने उनको देखकर राजपुरुषोंके सुनते हुए कहा कि हे मुनि ! यह गर्भ तुम्हारा है और तू इसको छोड़कर वृत्तरे गाँव जा रहा है फिर इसका क्या होमा ? मुनिने यह सुनकर बिचार कि असत्य-भाषणसे यह स्त्री दिनशासन और सुखाशुओंकी अर्कीर्ति करेगी अतः इसका

१ सिद्धि-इति पाठ्यतम् ।

२ एषः समन्वये किने परिशिष्ट हैं । सम्यक्

निवारण करना चाहिए। ऐसा सोचकर मुनिने उस स्त्रीको शाप दिया कि यदि यह गर्भ मेरा किया हो तो पूर्ण समयपर योनिसे निकले, अगर हमारा नहीं हो तो पेट फाटकरही निकले, इस शापसे समय पूर्ण होनेपर भी गर्भ नहीं निकला, इससे उस स्त्रीको भयङ्कर कष्ट होने लगा, तब उस स्त्रीने राजकर्मचारियोंके सामने मुनिराजसे प्रार्थना की कि महाराज ! यह गर्भ आपका किया हुआ नहीं है, मैंने झूठा आपको कलङ्क दिया, अब फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूंगी, उसके असह्य कष्टको देखकर कारुणिक मुनिने अपना शाप हटा लिया, इस प्रकार धर्मका मान और उस स्त्रीके प्राण दोनों बचालिये, यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

३ कुमार- एक राजकुमारको मिष्टान्न बहुत प्रिय था, एक दिन उसने भरपेट मोदक खा लिया, अधिक खानेसे अजीर्ण हो गया, अजीर्णके कारण मुखसे दुर्गन्धि निकलने लगी। दुःखी होकर राजकुमारने सोचा कि इस अशुचि शरीरसे संयोग पाकर मधुर जैसा मनोहर पदार्थ भी विगड गया। इसी शरीरके लिये लोग अनेक पाप करते हैं, अवश्य यह धिक्कारने योग्य है। ऐसा सोचकर वह विरक्त हो गया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

४ देवी-पुष्पवती नामकी देवीने अपनी पुष्पचूला नामक पुत्रीको स्वर्ग-नरक दिखाकर प्रतिबोध दिया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

५ उदितोदय राजाका दृष्टान्त, जैसे-पुरिमताल नगरमे उदितोदय नामका राजा था, श्रीकान्ता नामकी उसकी विशेष रूपवती रानी थी, जिसके लिये वानारसीके धर्मरुचि नामक राजाने अपने सैन्यसे पुरिमताल नगरको घेर लिया। कुछ समय तक घेरे रहा तो उदितोदयने निष्कारण जनक्षय होगा ऐसा सोचकर तपोबलसे वैश्रमण देवका आवाहन किया। देवने धर्मरुचि राजाको उसके नगरमे साहरण कर दिया। इसप्रकार विना जनक्षयके उदितोदय राजाने अपना व प्रजाजनोंका रक्षण कर लिया यह राजाकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

६ साधु और नंदिपेण कुमारका दृष्टान्त, जैसे- भगवान् महावीरके समयसरणमे एक साधु चित्तकी चंचलतासे साधुव्रत छोडना चाहता था। उसी समय प्रभुको वंदन करनेके लिये राजकुमार नंदिपेण अपने अंतःपुरके साथ आया था। रूपलावण्यसे उसका अंतःपुर अप्सरावृन्दको भी जीतनेवाला था, फिर भी प्रभुके उपदेशसे नंदिपेणने विरक्त होकर उन सबोंको छोड दिया। यह देखकर वह साधु भी विशेषरूपसे संयममे स्थिर हो गया। यह उस साधुकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

७ धनदत्तका दृष्टान्त, जैसे-किसी समय चिलातीपुत्र चोरने धनदत्तकी पुत्री सुसुमाको द्रव्यलोभसे जंगलमे ले जाके मार गिराया। शेट भी खोजते

१ बड़ी कठिनार्थसे उस अटवीमें पहुँचा और छद्मकीको मरी पत्नी एक सपनेमें देखा। भूखसे बहुत व्याकुल होकर फल खोजने लगा किन्तु फलके नहीं मिलनेसे उसीसे देह निर्वाह किया-प्राण बचाया, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

८ सावक-भावक-व्रतधाममें पत्नीकी बुद्धि, जैसे-किसी भावकने परकी गमनका त्याग किया था। एक दिन अपनी स्त्रीकी सखीको देखकर वह कामाक्षर हो गया। स्त्रीने उसकी चिंताके कारणको समझ लिया और सोचा कि येसे कुबिचारोंमें यदि इसकी मृत्यु हो गई तो यह पुनर्जन्ममें चला जायगा। इसलिये कोई उपाय करके जिससे इसकी रक्षा हो ऐसा सोचकर वह पतिसे बोली-स्वामिन्! चिन्ता मत करो मैं संभ्या होनेपर उसको खानेका उपाय करती हूँ। भावकने मँदूर किया। इधर संभ्या होतेही वह स्त्री अपनी सखीके वस्त्रभूषण पहनकर उसी रूपमें भावकके पास एकान्तमें गई। उसने भी अपनी स्त्रीकी सखी समझकर उसके साथ संभोग किया फिर कुछ समयके बाद कामका ज्वर उतरा तब हित व शोकके चञ्चल व्याकुल होता हुआ बोझने लगा कि हाय! मेरा तो व्रत लण्डित कर दिया। अब संसारमें किस मुँहसे बोल्हूँगा! उस स्त्रीने भावककीको अधिक चिन्तादूर देखकर सखी बात कह दी, जिससे वह कुछ स्वस्थ हुआ। प्रातःकाल गुदके पास जाकर मानसिक कुबिचार व परकीके संकल्पसे विषयसेवनके लिये प्रायश्चित्त लेकर छुड़ा हुआ। उस भावकपत्नीने अपने पतिको व्रत और प्राण दोनोंकी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

९ अमात्य-मंत्रीका उदाहरण जैसे-वरधनु मंत्रीने स्वामिपुत्र ब्रह्मवत्तकी पक्षाके लिये सुरंग खुदाकर ब्रह्मवत्तको उससे निकाल लिया यह मंत्रीकी पारिणामिकी बुद्धि है।

मूल—गाहा—८०

समय १० अमञ्जुपुते ११, चाणक्यके १२ देव धूलमवे ११ य।

नासिकसुन्दरिनिवे १४, वदरे १५ परिणामया बुद्धीप ॥ ३ ॥

८१ चलणाहण* १६ आमन्त्रे १७, मणी १८ य सप्ये १९ य सगि २० धूमिदे २१, २२। परिणामियबुद्धीप एयमाई उदाहरणा ॥ ४ ॥
से स अस्सुयनिस्सिय ।

१) क. वरधनु मंत्री. नि. य. १४९। २) परिणामिया बुद्धी-नि. १५।

* कर्मण (य)।

छाया—गाथा—८०

क्षपकोऽमात्यपुत्रः १०।११, चाणक्यश्चैव १२ स्थूलभद्रश्च १३।

नासिक्ये सुन्दरीनन्दः १४, वज्रः १५ परिणामबुद्ध्याः ॥ ३ ॥

८१ चलनाहत १६ आमलके १७ मणिश्च १८ सर्पश्च १९ खड्ग

२० स्तूपेन्द्रः २१। पारिणामिक्या बुद्ध्या एवमादीनि उदा-

हरणानि ॥ ४ ॥

तदेतदश्रुतनिश्चितम् ।

टीका—गाथार्थ—८०—८१ खमए—साधु १० अमात्यपुत्र—मंत्रिपुत्र ११ चाणक्य १२ और स्थूलभद्र १३ तथा नासिकपुरमे सुदरीपाति नंद १४ वज्र-स्वामी १५ ये पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ३ ॥

चलणाहण—चलनाहत याने चरणाहतको क्या दण्ड देना ? (राजाका प्रश्न) १६ आमलक १७ मणि १८ सर्प १९ खड्ग (गेंडा) २० स्तूप २१, इत्यादिक पारिणामिकी बुद्धिके उदाहरण हैं ॥ ४ ॥

१० क्षपक—साधुका दृष्टान्त, जैसे—कोई साधु क्रोधके आवेशमें मरनेके कारण सर्प हो गया था, वहाँसे मरकर शुभकर्मोदयसे एक राजाके यहाँ जन्म लिया और मुनियोंके उपदेशसे विरागी होकर फिर साधु बन गया तथा नम्र भावसे गुरुजनोंकी सेवा करने लगा। भिक्षाके समय एक दिन साधुओंने उसके पात्रमे थूक गिरा दिया, फिर भी वह अपने ही दुर्गुणोंकी निन्दा करता रहा कि मैं पापी हूँ, सदा खाते रहता हूँ व आपलोग धन्य हैं, जो तपस्यामें अपने देहका बल लगा रहे हैं। इस प्रकार प्रतिकूल संयोगमें शान्त रहके केवलपद मिला लिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

११ अमात्यपुत्र—मंत्रीके लडकेकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे—ब्रह्मदत्तके विषयमें दीर्घपृष्ठ राजाने वरधनु मंत्रीसे बहुत प्रश्न किए, उन सबके उत्तर और वैसे अन्य प्रसंगोंमें मंत्री वरधनुने इस प्रकारसे काम लिया कि दीर्घपृष्ठकी भी मालुम नहीं हो सका कि यह मेरा विरोधी है और साथ २ ब्रह्मदत्तकी भी रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है।

१२ चाणक्यकी बुद्धिके बहुतसे उदाहरण हैं, उनमेंसे एक यहाँ दिया जाता है, जैसे—चन्द्रगुप्तके राज्य करते हुए जब भंडार समाप्त होने लगा तो चाणक्यने एक दिनके उत्पन्न हुए अश्व आदिकी याचना की और भंडारकी पूर्ति की। यह चाणक्यकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

१३ स्थूलभद्रकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे—स्थूलभद्रके पिताको मार

वेने पर नंबनने मोत्रिपवके छिप स्पृष्टमयको बहुत कुछ कहा, किन्तु उन्होंने मोमभावनाको नाशका कारण और संसारके सम्बन्धको दुखकर मानकर मुनि-विक्षा ले ली, यह स्पृष्टमयकी पारिणामिकी बुद्धि हुई ।

१४ नासिक्ये सुभरीर्मय, जैसे-नासिकपुरके सुभरीपातिको उसके याई साधुन मेरुके शिखरपर ले जाके देवदेवी विनाये । यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि है ।

१५ वज्र-वज्रस्वामीकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-वज्रस्वामीने बालकपनमें भी माताके प्रेमकी उपेक्षा करके संघका वधुमान किया, याने संघके विनाये हुए रजोहरण-मुक्तबन्धिका रूप साधुवेशकी लिया । किन्तु माताकी ओरसे विप जाते हुए शिखीने आवि नहीं छिप ।

१६ चरणोद्धत याने मस्तकपर चरण-प्रहार करनेवालेको क्या बण्ड देना चाहिए । इस विषयमें राजा और बुद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि, जैसे-कुछ तरुण सेवकीने एक राजासे कहा कि देव । पके हुए केश और जीर्ण शरीरवासे बुद्धों की म रक्षकर ठरुणोंको ही अपनी सेवामें रखें । वे आपके सभी काम कर सकेंगे । इसपर परीक्षाके छिप राजाने युवकोंसे पूछा कि यदि कोई मेरे शिरपर पाँचका प्रहार करे तो क्या बण्ड देना चाहिए । तसर्थोंने कहा-महाराज ! तिक जितने छोटे २ टुकड़े कर उसको मरवा देना चाहिए । राजाने बड़ी प्रभ फिर बुद्धोंसे पूछा । बुद्धोंने कहा-स्वामिन् ! हम विचार करके कहेंगे, ऐसा कहके बुद्ध पकान्तमें चले गए और विचारने लगे कि राजाके सिवाय अन्य राजाके मस्तकपर कीन पाँचका प्रहार कर सकता है ! और राजा तो विदोष सम्मान करनेके लायक होती है इस प्रकार सोचके बुद्ध राजाके पास आकर बोले देव । उसका विशेष उत्कार करना चाहिए । इसपर राजा बुद्धोंकी बुद्धिपर बहुत प्रसन्न हुआ और सदा उनकोही अपने पासमें रखता । यह राजा और बुद्धोंकी पारिणामिकी बुद्धि हुई ।

१७ आमर्दे-आमर्दक फलका इहान्त, जैसे-किसी कुम्भकारने एक आर्दमीको एक बनावटी आवेष्टा दिया । रस रूप समान होनेपर भी उसने अतिशय कठिन स्पर्श और आवेष्टके फलनेकी यह ज्ञात नहीं इससे समझ लिया कि यह असली नहीं है । यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई ।

१८ मणि-एक सर्प बुद्धपर चढ़के सदा पक्षियोंके बच्चे छाया करता था । किसी दिन वह सर्प बुद्धके वृक्षसे नीचे गिर गया और मणि बुद्धके ही किसी प्रदेशपर रह गई । मणिके प्रकाशमें घूमनेवाला वह सर्प मणिके घूट जानेपर अपने अङ्गको बराबर नहीं संभाल सका । बुद्धके नीचे एक रूप था उसमें जा पडा उपर रहे हुए मणिकी किरणोंके कारण उस रूपका सारा जल साक दिगने लगा । लेखते हुए किसी बालकने पकापक यद् आश्चर्यकी बात

देखी व आकर अपने पितासे निवेदन की, उस बुद्धेने भी वहाँ आकर अच्छी तरह देखा और कारणका पता लगाकर मणिको प्राप्त कर लिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

१९ सर्प-चंडकौशिककी बुद्धि, जैसे-भगवान् महावीरके अलौकिक रक्तके आस्वादको विचारपूर्वक देखकर चंडकौशिकने ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२० खड्ग-गंडा-(अरण्य पशु विशेष)-की बुद्धि, जैसे-किसी श्रावकने युवावस्थाके मद्मे व्रतोंकी विना आलोचना किये ही प्राणत्याग किया। जिससे वह एक जंगलमें खड्ग-पशुके रूपमें उत्पन्न हुआ। और अट्ठीमें आने-वाले मनुष्यको मारकर खाने लगा। किसी समय उस मार्गसे कुछ साधु चले आ रहे थे, उसने साधुओंपर आक्रमण करना चाहा किन्तु उनके आत्मबलसे वैसा नहीं कर सका, फिर विचार करते १ जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा अनशन करके देवलोग गया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

२१ स्तूपका दृष्टान्त, जैसे-विशाला नगरीके नाशके लिए कुलबालुक मुनिने कहा कि मुनिसुव्रत स्वामीके पादुकायुक्त स्तूपको उखडवा दिया जाय तो नगरीका भंग हो सकता है। यह मुनिकी पारिणामिकी बुद्धि हुई।

यह उपरोक्त स्वरूपवाला अश्रुत निश्चित मतिज्ञान हुआ।

मूल—से किं तं सुयनिस्सियं ? सुयनिस्सियं चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-उग्गहे १ ईहा २ अवाओ ३ धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥

छाया-अथ किन्तत्-श्रुतनिश्चितम् ? श्रुतनिश्चितं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-अवग्रहः १, ईहा २, अवायः ३, धारणा ४ ॥ सू. २६ ॥

टीका—प्र०-अब श्रुतनिश्चित मतिज्ञान कौनसा है ? उ०-श्रुतनिश्चित मतिज्ञान चार प्रकारका है, जैसे-अवग्रह १ ईहा २ अवाय ३ और धारणा ४।

स्पष्टीकरणरूप आवृत्तिकी विशेषतारहित पदार्थके सामान्यरूपका ज्ञान करना अवग्रह कहलाता है। अवग्रहसे गृहीत पदार्थमें क्या है, क्या नहीं, इस प्रकार विचारक तर्कको ईहा कहते हैं। विचारके उत्तर क्षणमें जो पदार्थका निश्चय होता वह अवाय कहाता है। अवग्रहसे निर्णीत अर्थका कुछ कालतक अविच्छिन्न उपयोग रहना अविच्युति, और उससे जो संस्कार धारण हुआ वह वासना कहाती है, यह संख्यात या असंख्यात काल तक रहती है, फिर कालान्तरमें किसी वैसे पदार्थको देखने आवृत्तिसे ऐसा ज्ञान होना कि यह वही पदार्थ है जो मैंने पहले देखा था इसको स्मृति कहते हैं, अविच्युति, वासना

और स्मृति से तीनों धारणाके अवान्तर भेद हैं, अर्थात् अबायसे निर्जित अर्थमें उपयोग स्मरण और वासनाको धारणा कहते हैं ॥ सू. २६ ॥

मूल—से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुषिहे पण्णसे, तं जहा—अत्थुग्गहे य वंजणुग्गहे य ॥ सू. २७ ॥

छाया—अथ कं सोऽवग्रहं ? अवग्रहो द्विविधं प्रज्ञतं, तद्यथा—अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च ॥ सू. २७ ॥

टीका—प्र०—यह अवग्रह कौनसा है । उ०—अवग्रह दो प्रकारका कहा गया है, जैसे—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह ॥ सू. २७ ॥

मूल—से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे चउत्थिहे पण्णसे, तं जहा—सोइविअवंजणुग्गहे, धारिणिविपवंजणुग्गहे, जिद्धिभिविपवंजणुग्गहे, फासिंविपवंजणुग्गहे, से सं वंजणुग्गहे ॥ सू. २८ ॥

छाया—अथ कं स व्यञ्जनावग्रहं ? व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधं प्रज्ञतं, तद्यथा—भोघेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहं, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहं, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहं, स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहं, स एष व्यञ्जनावग्रहं ॥ सू. २८ ॥

टीका—प्र०—यह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है । उ०—व्यञ्जनावग्रह चार प्रकारका है, जैसे—१ भोघेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, २ घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, ३ जिह्वेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, ४ स्पर्शेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, यह हुआ व्यञ्जनावग्रह । भोज आदि पांच उपकरणेन्द्रियोंका शब्द ग्राह्य आदि पुरुषोंके साथ सम्बन्ध होनेको व्यञ्जन कहते हैं, उस सम्बन्धसे शब्द आदि पदार्थोंका जो अर्थक ज्ञान होता है वह व्यञ्जनावग्रह कहलाता है । अथवा इन्द्रियोंसे प्राप्त शब्द आदि द्रव्योंका अस्पष्ट ज्ञान भी व्यञ्जनावग्रह कहाता है । अर्थात् शब्द आदिके साथ उपकरणेन्द्रियोंके सम्बन्ध—क्षणसे छिन्न अर्थावग्रहसे पूर्वतक जो सुप्त प्रमत्त या मूर्च्छित पुरुषकी तरह केवल शब्द ग्राह्य रस और स्पर्श कुछ है, घिसा जा अर्थक ज्ञान होता है, यह व्यञ्जनावग्रह है । बहुत हीर मनरूप आदिका सम्बन्ध किये बिना ही ज्ञान करते हैं अता इनसे व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है । इसलिये व्यञ्जनावग्रहके चारही प्रकार हैं ॥ सू. २८ ॥

मूल—से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे उत्थिहे पण्णसे, तं जहा—सोइविअ—अत्थुग्गहे, चरित्तिविप—अत्थुग्गहे, धारिणिविप—अत्थु

गहे, जिब्भिंदिय-अत्थुग्गहे, फासिंदिय-अत्थुग्गहे, नोइंदिय-
अत्थुग्गहे ॥ सू. २९ ॥

छाया-अथ कः सोऽर्थावग्रहः ? अर्थावग्रहः पद्धिधः प्रज्ञतः, तद्यथा-
श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः, चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः, घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः,
जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः, स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः, नोइन्द्रियार्थावग्रहः
॥ सू. २९ ॥

टीका-प्र०-वह अर्थावग्रह किसप्रकार है? उ०-अर्थावग्रह छ प्रकारका
कहा गया है, जैसे-१ श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, २ चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह,
३ घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, ४ रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, ५ स्पर्शेन्द्रिय अर्थावग्रह,
६ नोइन्द्रिय(मन) अर्थावग्रह। पांच इन्द्रिय और मनसे पदार्थोंके सामान्य
ज्ञान करनेको अर्थावग्रह कहते हैं, आश्रयके भेदसे वह छ प्रकारका है, जैसे-
मार्गमें जल्दीसे चलते हुए कुछ दिख पडता है तो दर्शक यही कहता है कि
मैंने कुछ देखा था, इसे अर्थावग्रह कहते हैं ॥ सू. २९ ॥

मूल-तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावज्जणा पंच नाम-
धिज्जा भवन्ति, तं जहा-ओगेणहणया, उवधारणया, सवणया,
अवलंबणया, मेहा, से तं उग्गहे ॥ सू. ३० ॥

छाया-तस्येमानि एकार्थिकानि नानाघोषाणि नानाव्यञ्जनानि पंच
नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा-अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता,
अवलम्बनता, मेधा-स एषोऽवग्रहः ॥ सू. ३० ॥

टीका-उस अवग्रहके ये पांच नाम अनेकविध घोष और अनेक व्यञ्जन-
युक्त होते हैं, जैसे-१ अवग्रहणता, २ उपधारणता, ३ श्रवणता, ४ अवलम्बनता,
और ५ मेधा। यह अवग्रहका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू. ३० ॥

१ प्रथमसमयमें आए हुए शब्द आदि पुद्गलोंका ग्रहण करना अवग्रह
कहाता है। २ व्यञ्जनावग्रहके दूसरे आदि समयमें नवीन २ शब्द आदि पुद्ग-
लोंका प्रतिसमय ग्रहण करना और पूर्वगृहीतका धारण करना यही उपधारणता
है। ३ एक समयमें होनेवाला सामान्यरूपसे अर्थग्रहणरूप बोध श्रवणता है।
४ अर्थग्रहणही अवलम्बनता है। ५ मेधा स्पष्ट ही है।

मूल-से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पणत्ता, तं जहा-सोइंदिय-ईहा
चक्खिंदिय-ईहा, घाणिंदिय-ईहा, जिब्भिंदिय-ईहा, फासिंदिय-
ईहा, नोइंदिय-ईहा, तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणाव-

जणा पंच नामधिज्ञा भवन्ति, तं जहा—आमोगणया, मग्गणया,
गवेसणया, चिन्ता, विमंसा, से चं ईहा ॥ सू. ३१ ॥

छाया—अथ का सा ईहा ? ईहा पशुषु प्रज्ञता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियेहा,
चक्षुरिन्द्रियेहा, घ्राणेन्द्रियेहा, जिह्वेन्द्रियेहा, स्पर्शेन्द्रियेहा,
नोहन्द्रियेहा, तस्या इमानि—एकार्यकानि नानाबोवाणि
नानाम्यञ्जनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—आमोगणता,
मार्गणता, गवेपणता, चिन्ता, विमर्शा (मीमांसा) सा—एवा ईहा
॥ सू. ३१ ॥

टीका—४०—इ मयवच । वह ईहा क्या है ? उ०—ईहा छ प्रकारकी कही गई
है, जैसे—१ श्रोत्रेन्द्रिय ईहा २ चक्षुरिन्द्रिय ईहा, ३ घ्राणेन्द्रिय ईहा, ४ रसने-
न्द्रिय ईहा ५ स्पर्शेन्द्रिय ईहा ६ नोहन्द्रिय ईहा । यह ईहाकप वह छ-
भिन्नित मतिज्ञान हुआ ।

इन्द्रियोंके पांच विषय और इर्ष विषय भादि मानसिक भावके सम्बन्धमें
ईहा—निर्णयार्थ विचार होता है अतएव इसके छ भेद किये गये हैं । उस ईहाके
मी भिन्न बोध और माना ब्यंजनवाले ये एकार्यक पांच नाम होते हैं, जैसे
कि १ आमोगमता २ मार्गणता ३ गवेपणता, ४ चिन्ता और ५ विमर्शा ।
सामान्यरूपसे एकार्यक होते हुए भी विशेषमें ये भिन्नार्थक हैं, जैसे—अर्थात्
पहले काव ही सद्मूल अर्थ—विशेषका आलोचन करना आमोगमता है ।
अन्वय व ब्यतिरेक धर्मका अन्वेषण करना मार्गण, और ब्यतिरेक अर्थों
विरुद्ध धर्मके त्यागपूर्वक अस्य धर्मकी आलोचना करना गवेपणा है । सद्मूल
अर्थका वारंवार चिन्तन करना चिन्ता और स्पष्ट विचार करना विमर्शा ये पांचों
ईहाके नामास्तर हैं, यह हुआ ईहाका वर्णन ॥ सू. ३१ ॥

मूळ—से किं तं अवाप ? अवाप छविहे पणत्ते, तं जहा—सोईदिय-
अवाप, चर्खिसदिय-अवाप, घार्णिसदिय-अवाप, जिर्म्मिसदिय-
अवाप, फार्सिसदिय-अवाप, नोहिसदिय-अवाप, तस्स णं इमे एगद्विया
नाणाघोसा नाणावज्जणा पंच नामधिज्ञा भवन्ति, तं जहा—
आउठणया, पच्चाउठणया अवाप, पुञ्जी, विण्णणे, से चं
अवाप ॥ सू. ३२ ॥

छाया—अथ कं सोऽवाप ? अवाप पशुषु प्रज्ञता, तद्यथा—श्रोत्रे
न्द्रियावाप १, चक्षुरिन्द्रियावाप २, घ्राणेन्द्रियावाप ३,

जिह्वेन्द्रियावायः ४, स्पर्शेन्द्रियावायः ५, नोइन्द्रियावायः ६, तस्य इमानि—एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—आवर्त्तनता १, प्रत्यावर्त्तनता २, अवायः (अपायः) ३, बुद्धिः ४, विज्ञानं ५, स एषोऽवायः ॥ सू. ३२ ॥

टीका—प्र०—भगवन् ! वह अवायज्ञान कौनसा है? उ०—अवायज्ञान छ प्रकारका है, जैसे कि श्रोत्रेन्द्रिय अवाय १, चक्षुरिन्द्रिय अवाय २, घ्राणेन्द्रिय अवाय ३, रसनेन्द्रिय अवाय ४, स्पर्शेन्द्रिय अवाय ५, नोइन्द्रिय अवाय ६ । श्रोत्रेन्द्रियके अर्थावग्रहको लेकर जो निश्चय किया जाता है वह श्रोत्रेन्द्रिय अवाय है, ऐसे आगे भी समझें, इस अवायके ये एकार्थक पांच नाम नाना-घोष और नानाव्यंजनवाले होते हैं, जैसे कि १ आवर्त्तनता—ईहासे हटकर अवायके सम्मुख रहनेवाला ज्ञान, २ प्रत्यावर्त्तनता, ३ अवाय—सर्वथा ईहासे निवृत्त पदार्थका ज्ञान, ४ बुद्धि—उसी निर्णीत अर्थको स्थिरतासे वारंवार स्पष्ट-रूपमें जानना, ५ विज्ञान—विशिष्टज्ञान । यह अवायज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ३२ ॥

मूल—से किं तं धारणा ? धारणा छविहा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदिय-धारणा, चक्खिंदियधारणा, घाणिंदियधारणा, जिब्भिंदिय-धारणा, फासिंदियधारणा, नोइंदियधारणा, तीसे णं इमे एग-ट्टिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति, तं जहा-धरणा, धारणा, ठवणा, पइट्ठा, कोट्ठे, से तं धारणा ॥ सू. ३३ ॥

छाया—अथ का सा धारणा ? धारणा षड्विधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा १, चक्षुरिन्द्रियधारणा २, घ्राणेन्द्रियधारणा ३, जिह्वेन्द्रियधारणा ४, स्पर्शेन्द्रियधारणा ५, नोइन्द्रियधारणा ६, तस्या इमानि एकार्थकानि नानाघोषाणि नानाव्यंजनानि पंच नामधेयानि भवन्ति, तद्यथा—धरणा, धारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा, कोष्ठः, स एषा धारणा ॥ सू. ३३ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव ! वह धारणा कौनसी है? उ०—धारणा छ प्रकारकी है, जैसे कि १ श्रोत्रेन्द्रियधारणा, २ चक्षुरिन्द्रियधारणा, ३ घ्राणेन्द्रियधारणा, ४ रसनेन्द्रियधारणा, ५ स्पर्शेन्द्रियधारणा, ६ नोइन्द्रियधारणा । उस धारणाके ये एकार्थक पांच नाम—नामान्तर होते हैं, जो नानाघोष और नाना-

व्यञ्जनवाक्ये हैं, जैसे कि-१ धारणा-जाने हुए अर्थको अविच्छ्रुतिपूर्वक अंत-
 मुहूर्ततक धरे रहना, २ धारणा-अधन्य अंतमुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्य
 काळके बाध भी रमरण (रहना), ३ स्थापना-हृदयमें उसको स्थापन करना,
 ४ प्रतिष्ठा-भूत अर्थको धी प्रभेदके साथ हृदयमें स्थापन करना, ५ कोष्ठ-कोठेकी
 तरह धारण किये अर्थको सुरक्षित रखना, यह धारणारूप मतिज्ञान सम्पूर्ण
 हुआ ॥ सू. ३३ ॥

मूल—उग्राहो हृदयसमग्र, अंतोमुहूर्तिया ईहा, अतोमुहूर्तिए अवाप,
 धारणा सस्त्रेयं वा कालं असस्त्रेयं वा काल ॥ सू. ३४ ॥

छाया—अथग्रह एकसामयिकः, आन्तमुहूर्तिकीहा, आन्तमुहूर्तिकोऽ
 वाप, धारणा संस्त्रेय वा कालमसंस्त्रेयं वा कालम् ॥ सू. ३४ ॥

टीका—अथ अथग्रह आविक्र कालमान कहते हैं—अथग्रहज्ञान एक समय
 तक रहता है। ईहा अंतमुहूर्त स्थितिवासी है और अवाप भी अंतमुहूर्तकी
 स्थितिवाला है। धारणा संकयात काल वा पुनश्चिक आविक्री अपेक्षा असंख्य-
 कालतक भी रहती है ॥ सू. ३४ ॥

मूल—एवं अद्रुवीसहविहस्स आमिणिबोहिपिनाणस्स वंजणुग्गहस्स
 पक्खणं करिस्सामि पच्चिबोहगविट्ठेण मल्लगविट्ठेण य । से
 किं तं पच्चिबोहगविट्ठेण ? पच्चिबोहगविट्ठेणं से जहानामप
 केह पुरिसे कंचि पुरिसं सुचं पच्चिबोहिज्जा अमुगा अमुगाति,
 तथ बोयगे पन्नवगं एवं वपासी—किं एगसमयपविट्ठा पुग्गला
 गहणमागच्छंति ? दुसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ?
 जाव दससमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? संसिज्जसमय
 पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति ? असंसिज्जसमयपविट्ठा
 पुग्गला गहणमागच्छंति ? एवं वर्यसं बोयगं पण्णवए एवं
 वपासी—नो एगसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, नो दुसमय
 पविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, जाव नो दससमयपविट्ठा पुग्गला
 गहणमागच्छंति, नो संसिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमाग-
 च्छंति, असंसिज्जसमयपविट्ठा पुग्गला गहणमागच्छंति, से तं
 पच्चिबोहगविट्ठेणं ।

छाया—एवमष्टाविंशतिविधस्य—आमिनिबोधिकज्ञानस्य व्यञ्जनावप्र-

हस्य प्ररूपणं करिष्यामि प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च । अथ किं तत्प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ? प्रतिबोधकदृष्टान्तेन, स यथानामकः कश्चित्पुरुषः कंचित्पुरुषं सुप्तं प्रतिबोधयेत् अमुक-अमुक ! इति, तत्र चो(नो)दकः प्रज्ञापकमेवमवादीत्-किमेकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? द्विसमय-प्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? यावद्दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति ? एवं वदन्तं नोदकं प्रज्ञापक एवमवादीत्-नो एकसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो द्विसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, यावन्नो दशसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, नो संख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, असंख्येयसमयप्रविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छन्ति, तदेतत् प्रतिबोधकदृष्टान्तेन ।

टीका-(अर्थावग्रहके चार प्रकार, व्यञ्जनावग्रहके छह, ईहाके छह, अवा-यके छह, और धारणाके भी छह, इसप्रकार ये सब मिलकर मतिज्ञानके २८ भेद होते हैं) इस तरह अट्टाइस प्रकारका आभिनिबोधिक ज्ञान है । उस मतिज्ञानके व्यञ्जनावग्रहकी प्रतिबोधक और मल्लकके दृष्टान्तसे प्ररूपणा करुंगा । प्र०-प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे वह व्यञ्जनावग्रह किस प्रकार है ? उ०-प्रतिबोधक-जगानेवालेके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा इस प्रकार है-जैसे कोई पुरुष किसी अनिर्दिष्टनामवाले सोये हुए पुरुषको ओ अमुक ! ओ अमुक ! ऐसा कहकर जगावे, इस विषयमे शिष्य गुरुको ऐसा पूछता है-भगवन् ! क्या एक समयके प्रविष्ट (कर्णमें गए हुए) पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं ? या यावत् दश समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते है ? या संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? या असंख्येय समयके कानमें पड़े हुए पुद्गल ग्रहणमें आते हैं ? इसप्रकार पूछते हुए शिष्यको आचार्य उत्तर फरमाते हैं-एक समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें नहीं आते, न दो समयके प्रविष्ट पुद्गल ग्रहणमें आते, यावद्दश समय-तकके पुद्गल भी ग्रहणमें नहीं आते है, न संख्येयसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहणमें आते, किन्तु असंख्यसमयके प्रविष्ट पुद्गलही ग्रहण करनेमें आते है, यह प्रतिबोधकके दृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहका स्वरूप हुआ ।

मूल—से किं तं मल्लगविद्वृतेण ? मल्लगविद्वृतेण से जहानामप केइ पुरिसे आवागसीसाओ मल्लगं गहाय तत्पेगं उद्वगर्बिदुं पक्त्ते विज्जा से नट्टे, अण्णेऽवि पक्त्तसे सेऽवि नट्टे, एवं पक्त्तप्यमाणेसु पक्त्तप्यमाणेसु होही से उद्वगर्बिदुं जे णं तं मल्लगं रावेहिइत्ति, होही से उद्वगर्बिदुं जे णं तं मल्लगं ठाहिति, होही से उद्वगर्बिदुं जे णं तं मल्लगं मरिहिति, होही से उद्वगर्बिदुं जे णं तं मल्लगं पवाहेइत्ति, एवामेव पक्त्तप्यमाणेहिं पक्त्तप्यमाणेहिं अर्णतिहिं पुग्गलेहिं जाहे तं वंजणं पुरियं होइ, ताहे 'हुं' ति करेइ, नो चेव णं जाणइ के एस सद्दाइ ? तओ ईहं पविसइ तओ जाणइ अमुगे एस सद्दाइ, तओ अवायं पविसइ, तओ से उद्वगय हवइ, तओ धारण पविसइ, तओ णं घारेइ संसिज्जं वा कालं असंसिज्जं वा कालं ।

छाया—अथ किं तत् (प्ररूपणं) मल्लकहृष्टान्तेन ? मल्लकहृष्टान्तेन स पथानामकं कञ्चित्पुरुषं आपाकशीर्षतो मल्लकं गृहीत्वा तत्रैकं मुक्कबिन्दुं प्रक्षिपेत् स नट्टः, अम्योऽपि प्रक्षितः, सोऽपि नट्टः, एवं प्रक्षिप्यमाणेषु २ मविप्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं रावेहिति—आर्द्रयिप्यति, मविप्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तस्मिन् मल्लके स्थास्यति, मविप्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं मरिप्यति, मविप्यति स उदकबिन्दुर्यो नु तं मल्लकं प्रवाहयिप्यति, एवमेव प्रक्षिप्यमाणैः २ अनन्तैः पुद्गलैर्यथा तद् व्यञ्जनं पुरितं भवति तदा ह्रिमिति करोति, नो चेव जानाति क एष शब्धाविः ? तत ईहां प्रविशति ततो जानाति अमुक एष शब्धाविः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् ।

टीका—प्र०—मल्लक हृष्टान्तसे यह व्यञ्जनाबमह किंसा है ! उ०—शरावेके हृष्टान्तसे व्यञ्जनाबमहका स्वरूप इस प्रकार है जैसे—यथामाम किसी पुरुषने किसी आपाकशीर्ष याने कुम्भारके माण्ड पकानेके स्थानमें सगी हुई माण्डराशि से एक मल्लक—शरावा लेकर उसपर पानीकी एक पूँज डाली वह मल्ल दो गई, दूसरी पूँज डाली तो यह भी मल्ल दो गई,

इस प्रकार विंदुओंके गिराते १ एक वह जलविंदु होगा जो उस शरावेको गीला कर देगा, फिर इसीप्रकार विंदुओंके गिरनेसे दूसरा वह जलविंदु होगा जो उस शरावेपर ठहरेगा, फिर निरन्तर विन्दुओंके डालनेसे एक वह जलविन्दु होगा जिससे वह शरावा भरजायगा, ऐसेही एक वह जलविन्दु होगा जो उस शरावेसे बाहर वह निकलेगा, इसी प्रकार (शरावेपर जलविन्दुकी तरह) कर्णेन्द्रियपर शब्दयोग्य अनन्त पुद्गलोंके वारंवार निरन्तर गिराते १ जब वह व्यञ्जन (इन्द्रिय अथवा उपकरणेन्द्रिय और पुद्गलोंका सम्बन्ध) पूर्ण हो जाता है याने भर जाता है तब वह श्रोता 'हुं' ऐसा करता है याने अर्थावग्रहसे शब्द आदिका ग्रहण करता है, फिर भी नहीं जानता कि यह शब्द आदि कैसा है व किसका है! (अर्थावग्रहसे पूर्वका सामान्यमात्रग्राही ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।) यही मल्लकदृष्टान्तसे व्यञ्जनावग्रहकी प्ररूपणा हुई। फिर जब पदार्थोंका सामान्यग्रहणरूप अवग्रह हो गया तब ईहा-विचारणा-में प्रवेश करता है अर्थात् यह क्या? इसका विचार करने लगता है, उसके फलस्वरूप जानता है कि यह अमुक शब्द आदि है, तब अवायमें प्रवेश करता है, फिर अवायके वाद अन्तर्मुहूर्त कालपर्यन्त वह शब्दादि ज्ञान उपगत-आत्मामे परिणत रहता है, उसके वाद धारणामे प्रवेश करता है, फिर संख्यात काल या असंख्यात कालपर्यन्त हृदयमें धारण करता है-धारे रहता है।

उपरोक्त अवग्रह आदिका क्रम जागृत अवस्थामें कैसे घटित होगा? क्योंकि जगे हुए प्राणीको शब्दश्रवणके समकालही अवग्रह ईहाके विना अवाय-ज्ञान होता दिखता है, इस शंकाके निवारणार्थ—

अवग्रह ईहा अवाय और धारणाका छ भेदोंमें उदाहरणके साथ वर्णन करते हैं—

मूल—से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं सद्दं सुणिज्जा तेणं सद्दोत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस सद्दाइ, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सद्दे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं रूवं पासिज्जा तेणं रूवेत्ति उग्गहिए, नो चेव णं जाणइ के वेस रूवत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस रूवे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ ण धारेइ संखेज्जं वा कालं, असंखेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अव्वत्तं गंधं अग्घा-

इज्जा तेणं गंधसि उग्गहिप, नो चेष णं जाणइ के वेस गंधेत्ति,
 तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस गंधे, तओ अवायं
 पविसइ, तओ से उवगय हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ
 णं धारेइ संसेज्जं वा कालं असंसेज्जं वा कालं । से जहानामए
 केइ पुरिसे अब्बत्तं रसं आसाइज्जा तेणं रसोत्ति उग्गहिप, नो
 चेष णं जाणइ के वेस रसेत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ
 अमुगे एस रसे, तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगय हवइ,
 तओ धारणं पविसइ, तओ णं धारेइ संसेज्जं वा कालं असं
 सेज्जं वा कालं । से जहानामए केइ पुरिसे अब्बत्तं फासं पडि
 संविइज्जा तेणं फासेत्ति उग्गहिप, नो चेष णं जाणइ के वेस
 फासओत्ति, तओ ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस फासे,
 तओ अवायं पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं
 पविसइ, तओ णं धारेइ संसेज्जं वा कालं असंसेज्जं वा कालं ।
 से जहानामए केइ पुरिसे अब्बत्तं सुमिणं पासिज्जा तेणं सुमि
 णोत्ति उग्गहिप, नो चेष णं जाणइ के वेस सुमिणेत्ति, तओ
 ईहं पविसइ, तओ जाणइ अमुगे एस सुमिणे, तओ अवायं
 पविसइ, तओ से उवगयं हवइ, तओ धारणं पविसइ, तओ
 णं धारेइ संसेज्जं वा कालं असंसेज्जं वा कालं, से तं मस्सग-
 विट्ठेणं ॥ सू ३५ ॥

छाया—अथ यथानामकं कश्चित्पुरुषोऽप्यर्त्तं शब्दं शृणुयात् तेन
 शब्द इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को वैय शब्दादिः ?
 तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति—अमुक एय शब्दः, ततोऽवायं
 प्रविशति, तत स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो
 नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । अथ यथा
 नामकं कश्चित्पुरुषोऽप्यर्त्तं रूपं पश्येत् तेन रूपमित्यवगृहीतम्,
 नो चैव जानाति किं वैतद् रूपमिति, तत ईहां प्रविशति, ततो
 जानाति—अमुकमेतद्रूपम्, ततोऽवायं प्रविशति, ततस्तदुपगतं
 भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा

कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं गन्धमाजिघ्रेत्-तेन गन्ध इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति को वैष गन्ध इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष गन्ध इति, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं रसमास्वादयेत् तेन रस इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष रस इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष रसः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्पर्शं प्रतिसंवेदयेत्, तेन स्पर्श इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष स्पर्श इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष स्पर्शः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम् । स यथानामकः कश्चित्पुरुषोऽव्यक्तं स्वप्नं पश्येत्, तेन स्वप्न इत्यवगृहीतम्, नो चैव जानाति-को वैष स्वप्न इति, तत ईहां प्रविशति, ततो जानाति-अमुक एष स्वप्नः, ततोऽवायं प्रविशति, ततः स उपगतो भवति, ततो धारणां प्रविशति, ततो नु धारयति संख्येयं वा कालमसंख्येयं वा कालम्, सैषा (प्ररूपणा) मल्लकट्टष्टान्तेन ॥सू. ३५॥

टीका—श्रुत इन्द्रियसे अवग्रह आदिका स्वरूप कहते हैं-यथानामक किसी जागृत पुरुषने अव्यक्त शब्दको सुना और कुछ शब्द है ऐसा उसने ग्रहण किया, किन्तु जाति आदिसे नहीं जानता कि यह शब्द क्या है ! फिर ईहां-तर्कमें प्रवेश करता है तब जानता है कि यह अमुक शंख आदिका शब्द है, इसके बाद अवाय-निश्चयज्ञानमें प्रविष्ट होता है तब वह सुना हुआ शब्द उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संख्येय-काल वा असंख्येयकालपर्यन्त हृदयमें धारण किये रहता है । चक्षुरिन्द्रियसे अवग्रहादि, जैसे-यथानामक किसी पुरुषने अव्यक्तरूपको देखा और कोई रूप है ऐसा उसने ग्रहण किया, फिर भी यह रूप कौनसा है ? ऐसा नहीं जानता, तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमुक मनुष्य आदिका

रूप है, बाष्प अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, तब यह वेसा हुआ रूप उपगत होता है, फिर धारणामें प्रविष्ट होता है, उसके बाष्प संस्पर्शकाल वा अस्पर्शकालतक उस रूपको हृदयमें धारण किये रहता है। प्राग्नेन्द्रियसे अवग्रह आवि, जैसे-यथानामक कोई पुरुष अव्यक्त-जाति आविसे अज्ञात मंत्रको सूंघता है उससमय सामान्य रूपसे उसने गंध वेसा ग्रहण किया, किन्तु कीमसा मंत्र है। वेसा नहीं जानता तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमृक गंध है, फिर अवायको प्राप्त करता है, तब वह गंधज्ञान उपगत-प्राप्त होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, बाष्प संस्पर्शकाल वा अस्पर्शकालतक उसको धारण किये रहता है। इसनेन्द्रियसे अवग्रह आवि जैसे-कोई यथानामक पुरुष पहलेपहल अव्यक्त रसका आस्वाद्य करता है, उससमय उसने कोई रस है वेसा ग्रहण किया फिर भी यह कीमसा रस है। वेसा नहीं जानता तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे अमृक रस है वेसा जानता है, तब अवायमें प्रवेश करता है उसको बाष्प वह रसज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है तब संस्पर्शकाल वा अस्पर्शकालतक उस रसज्ञानको धारण किये रहता है। अब स्पर्शेन्द्रियसे अवग्रह आविका स्वरूप विज्ञाते हैं, जैसे-अज्ञात नामवाला कोई पुरुष अव्यक्तस्पर्शका प्रतिस्विदन-अनुभव करता है, उससमय कोई स्पर्श है वेसा उसने ग्रहण किया, किन्तु वेसा नहीं जानता कि यह कीमसा स्पर्श है। तब ईहामें प्रवेश करता है, उससे जानता है कि यह अमृक स्पर्श है, फिर अवाय-निश्चयमें प्रवेश करता है, बाष्प वह स्पर्शज्ञान उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संस्पर्शकाल अथवा अस्पर्शकालतक उसको धारण कर रहता है। मोहन्द्रिय-मनसे अर्थावग्रह आवि ज्ञान इन्द्रप्रकार है, जैसे-किसी सामान्यनामा पुरुषने अव्यक्त स्वप्न वेसा प्रारम्भमें उसने कुछ स्वप्न है वेसा ग्रहण किया फिर भी वेसा नहीं जानता कि यह कीमसा स्वप्न है। तब ईहामें प्रवेश करता है उससे वेसा जानता है कि यह अमृक स्वप्न है, फिर जब अवायमें प्रवेश करता है, तब वह स्वप्न उपगत होता है, फिर धारणामें प्रवेश करता है, तब संस्पर्शकाल वा अस्पर्शकालतक उसको धारण किये रहता है, यह मनुक इष्टान्तसे अवग्रह आविका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू १५ ॥

मूल—तं समासओ चतुर्विहं पण्णत्तं, तं जहा-द्व्यओ, सिचओ,
कालओ, माषओ, तत्थ द्व्यओ णं आमिणिबोहियनाणी
आप्सेणं सव्वाहं द्व्वाहं जाणह, न पासह । सेत्तओ णं आमि-
पिबोहियनाणी आप्सेणं सव्वं सेत्तं जाणह, न पासह । कालओ
णं आमिणिबोहियनाणी आप्सेणं सव्वं कालं जाणह, न
पासह । माषओ णं आमिणिबोहियनाणी आप्सेणं सव्वे माषे
जाणह, न पासह ।

छाया-तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतो नु-आभिनिबोधिकज्ञानी-आदेशेन सर्वाणि द्रव्याणि जानाति, न पश्यति । क्षेत्रत आभिनिबोधिक-ज्ञानी-आदेशेन सर्वं क्षेत्रं जानाति, न पश्यति । कालत आभिनिबोधिकज्ञानी-आदेशेन सर्वं कालं जानाति, न पश्यति । भावतो नु-आभिनिबोधिकज्ञानी-आदेशेन सर्वान् भावान् जानाति, न पश्यति ।

टीका-वह आभिनिबोधिकज्ञान संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे-१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भावसे । इनमें द्रव्यसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब द्रव्योंको जानता है किन्तु देखता नहीं, क्षेत्रसे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सर्वक्षेत्रको जानता है किन्तु देखता नहीं, कालकी अपेक्षासे मतिज्ञानी सामान्य प्रकारसे सब कालको जानता है परन्तु देखता नहीं, भावसे मतिज्ञानी सब भावोंको सामान्य प्रकारसे जानता है किन्तु देखता नहीं ।

मतिज्ञानका उपसंहार-

मूल-गाथा-८२

उग्गह ईहाऽवाओ, य धारणा एव हुंति चत्तारि ।

आभिणिबोहियनाण, -स्स भेयवत्थू समासेणं ॥ १ ॥

८३ अत्थाणं उग्गहणं, -मि उग्गहो तह वियालणे ईहा ।
ववसायम्मि अवाओ, धरणं पुण धारणं विंति ॥ २ ॥

८४ उग्गह इक्कं समयं, ईहावाया मुहुत्तमद्धं तु ।
कालमसंखं संखं, च धारणा होइ नायव्वा ॥ ३ ॥

८५ पुट्टं सुणेइ सद्धं, रूवं पुण पासइ अपुट्टं तु ।
गंधं रसं च फासं, च बद्धपुट्टं वियागरे ॥ ४ ॥

८६ भासासमसेठीओ, सद्धं जं सुणइ मीसियं सुणइ ।
वीसेठी पुण सद्धं, सुणेइ नियमा पराघाए ॥ ५ ॥

८७ ईहा अपोह वीमंसा, मग्गणा य गवेसणा ।
सन्ना सई मई पन्ना, सव्वं आभिणिबोहियं ॥ ६ ॥
से तं आभिणिबोहियनाणपरोक्खं, से तं मइनाणं ॥ सू ३६ ॥

छाया-गाथा-८२

अवग्रह ईहाऽवायश्च, धारणा-एवं भवन्ति चत्वारि ।

आभिनिबोधिकज्ञानस्य, भेदवस्तूनि समासेन ॥ १ ॥

- ८३ अर्धानामवग्रहणे, अवग्रहस्तथा विचारणे—ईहा ।
व्यवसायेऽवाय*, धरणं पुनर्धारणां भ्रुवते ॥ २ ॥
- ८४ अवग्रह एकं समयम्, ईहावायौ मुहूर्तमन्वै तु ।
कालमसंख्य संख्येय(सय)ञ्च, धारणा भवति ज्ञातव्या ॥ ३ ॥
- ८५ स्पृष्टं शृणोति शब्दं, रूप पुनः पश्यत्यस्पृष्टन्तु ।
गन्धं रसञ्च स्पर्शञ्च, बन्धुस्पृष्टं व्यागृणीयात् ॥ ४ ॥
- ८६ माया समभेणीत*, शब्दं यं शृणोति मिथितं शृणोति ।
विभ्रेणिं पुन शब्दं, शृणोति नियमात्पराघाते ॥ ५ ॥
- ८७ ईहाऽपोहविमर्शा*, मार्गणा च गवेपणा ।
सज्ञा, स्मृति*, मति*, प्रज्ञा, सर्वमामिनिबोधिकम् ॥ ६ ॥
तदेतदाभिनिबोधिकज्ञानपरोक्षम्, तदेतन्मतिज्ञानम् ॥ सू ३६ ॥

टीका—गाथार्थ—१ अवग्रह, १ ईहा १ अवाय है तथा ४ धारणा इस प्रकार
आभिनिबोधिक ज्ञानके संक्षेपसे चार भेद होते हैं ॥ ८१ ॥

अर्धोके ग्रहण होनेपर अवग्रहज्ञान तथा उनके पर्यालोचन-विचारमें
ईहाज्ञान होता है, अर्धोके निश्चय होनेपर अवायज्ञान होता है तथा वासना
आविक्रमसे धारण करनेको धारणा कहते हैं ॥ ८१ ॥

अवग्रह आविका स्थिति—मान कहते हैं—

अवग्रह एक समयतक रहता है, (विशेष पूर्व सामान्य अर्धविग्रह पृथक्
अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है,) ईहा और अवाय अर्धमुहूर्ततक होते हैं (परमार्थसे
अन्तर्मुहूर्त समझना चाहिए), धारणा संख्यातकाळ और असंख्यकाळतक
वासनारूपसे होती है, ऐसा समझना चाहिए ॥ ८४ ॥

शब्द स्पृष्ट-सूत्रा गय- (मात)-सुना जाता है और रूपको मनुष्य
अस्पृष्ट-अप्राप्त पाने ईन्द्रियसे विना रूप देखता है, रस और गंध व स्पर्शको
(प्राण आवि इन्द्रियोंके साथ) स्पृष्ट व बन्धु-आत्मप्रवेशोंसे पृथित होनेपर ही
प्राणी निश्चय करता है अर्थात् जानता है ऐसा कहना चाहिए ॥ ८५ ॥

भाषाकी समभेधिमें रहा हुआ-शब्दरूपसे छोटा जाता हुआ पुत्ररूपसूत्र
यापा कहाता है, उसके प्रचारार्थ क्षेत्रप्रवेशकी पंक्तियाँ समभेधि हैं जो हर एक
वक्ताके छहों विशाओंमें होती हैं, उनमें छोटी नई भाषाएँ प्रथमसमयमेंही
कोकाम्ततक चली जाती है, उन भेधियोंमें रहा हुआ को सुनता है वह मित्र-
बीचके शब्दप्रयोगोंसे मिथित शब्दको सुनता है, और विभेधिमें नियमसे परस्पर
योगोंसे अविहत उत्कृष्ट शब्दप्रयोगोंके अभिघातसे भाइत होनेपर ही शब्दको
सुनता है ॥ ८६ ॥

ईहा, अपोह, विमर्श और मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति व प्रज्ञा ये सब आभिनिबोधिक ज्ञान हैं, अर्थात् मतिज्ञानके पर्याय नाम हैं ॥ ८७ ॥

स्पष्टीकरण—सदर्थकी पर्यालोचनाको ईहा और निश्चय करनेको अपोह कहते हैं, अन्य भी काल व सूक्ष्मताकृत-भेदसे भिन्नार्थक नाम होते हैं, जो सुगम हैं। यह आभिनिबोधिक परोक्षज्ञानका वर्णन पूर्ण हुआ, यह पांच ज्ञानोंमें पहला मतिज्ञान पूर्ण हुआ ॥ सू. ३६ ॥

अत्र श्रुतज्ञानका वर्णन करते हैं।

मूल—से किं तं सुयनाणपरोक्खं ? सुयनाणपरोक्खं चोदसविहं पण्णत्तं, तं जहा—अक्खरसुयं १, अणक्खरसुयं २, सण्णिसुयं ३, असण्णिसुयं ४, सम्मसुयं ५, मिच्छासुयं ६, साइयं ७, अणाइयं ८, सपज्जवसियं ९, अपज्जवसियं १०, गमियं ११, अगमियं १२, अंगपविट्ठं १३, अणंगपविट्ठं १४ ॥ सू. ३७ ॥

छाया—अथ किं तच्छ्रुतज्ञानपरोक्षम् ? श्रुतज्ञानपरोक्षं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—१ अक्षरश्रुतम्, २ अनक्षरश्रुतम्, ३ संज्ञिश्रुतम्, ४ असंज्ञिश्रुतम्, ५ सम्यक्-श्रुतम्, ६ मिथ्याश्रुतम्, ७ सादिकम्, ८ अनादिकम्, ९ सपर्यवसितम्, १० अपर्यवसितम्, ११ गमिकम्, १२ अगमिकम्, १३ अङ्गप्रविष्टम्, १४ अनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू. ३७ ॥

टीका—प्र०—वह श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान किस प्रकार है ? उ०—श्रुतज्ञानरूप परोक्षज्ञान चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे कि—१ अक्षरश्रुत २ अनक्षरश्रुत ३ संज्ञिश्रुत ४ असंज्ञिश्रुत ५ सम्यक्श्रुत ६ मिथ्याश्रुत ७ सादिश्रुत ८ अनादिश्रुत ९ सपर्यवसितश्रुत १० अपर्यवसितश्रुत ११ गमिकश्रुत १२ अगमिकश्रुत १३ अङ्गप्रविष्ट और १४ अनङ्गप्रविष्ट ॥ सू. ३७ ॥

क्रमशः श्रुतज्ञानके प्रत्येक भेदोका स्वरूप सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

मूल—से किं तं अक्खरसुयं ? अक्खरसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा—सन्नक्खरं, वंजणक्खरं, लद्धिअक्खरं । से किं तं सन्नक्खरं ? सन्नक्खरं अक्खरस्स संठाणागिई, से तं सन्नक्खरं । से किं तं वंजणक्खरं ? वंजणक्खरं—अक्खरस्स वंजणाभिलावो, से तं वंजणक्खरं । से किं तं लद्धिअक्खरं ? लद्धिअक्खरं—अक्खर-लद्धियस्स लद्धिअक्खरं समुप्पज्जइ, तं जहा—सोइंदियलद्धिअक्खरं, चक्खिंदियलद्धिअक्खरं, घाणिंदियलद्धिअक्खरं,

रसर्णिवियलन्त्रिअक्खरं, फासिर्वियलन्त्रिअक्खरं, नोह्वियलन्त्रिअक्खरं, से तं लन्त्रिअक्खर, से तं अक्खरसुयं ।

से किं तं अणक्खरसुयं? अणक्खरसुय अणेगविहं पण्णस, तं जहा-

गाहा-८८

ऊससियं नीससियं, निच्छूहं स्वासियं च छीयं च ।

निस्सिचियमणुसारं, अणक्खरं छेलियाईयं ॥ १ ॥

से तं अणक्खरसुयं ॥ सू. ३८ ॥

छाया-अथ किं तदक्षरभुतम्? अक्षरभुतं त्रिविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-संज्ञाक्षरं १, व्यञ्जनाक्षरं २, लब्धयक्षरम् ३ । अथ किं तत् संज्ञाक्षरम्?

संज्ञाक्षरम्-अक्षरस्य संस्थानाऽऽकृति, तदेतत्संज्ञाक्षरम् । अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरम्? व्यञ्जनाक्षरम्-अक्षरस्य व्यञ्जनामिलाप*, तदेतद् व्यञ्जनाक्षरम् । अथ किं तद् लब्धयक्षरम्?

लब्धयक्षरम्-अक्षरलम्बिकस्य लब्धयक्षरं समुत्पद्यते, तद्यथा-भोत्रेन्द्रियलब्धयक्षरम्, चक्षुरिन्द्रियलब्धयक्षरम्, प्राणेन्द्रियलब्धयक्षरम्,

रसनेन्द्रियलब्धयक्षरम्, स्पर्शेन्द्रियलब्धयक्षरम्, नोह्वेन्द्रियलब्धयक्षरम् ६, तदेतद् लब्धयक्षरम्, तदेतदक्षरभुतम् ।

अथ किं तद्वनक्षरभुतम्? अनक्षरभुतमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-

गाथा-८८

उच्छ्वसित निश्वसितं, निष्ठभूर्तं फाशितञ्च ह्युतञ्च ।

निस्सिद्धितमनुस्वारं, मनक्षरं सेंटितादिकम् ॥ १ ॥

तदेतद्वनक्षरभुतम् ॥ सू. ३८ ॥

टीका-प्र०-यद् अक्षरभुतं कीनसा हि । उ०-अक्षरभुतं तीम प्रकारका कहा गया है, जैसे-संज्ञाक्षर १ व्यञ्जनाक्षर २ लब्धयक्षर ३ । प्र०-यद् संज्ञाक्षर क्या है? उ०-आकार आवि-अक्षरकी पट्टी आविपर बनार्हं गुहं संस्थानाकृति-रचना विशेषको संज्ञाक्षर कहते हैं, यह हुआ संज्ञाक्षर । प्र०-अब यह व्यञ्जनाक्षर किस प्रकार है? उ०-अक्षरके व्यञ्जनामिलापको व्यञ्जनाक्षर कहते हैं, अर्थात् अकार आवि अक्षरके अर्थका स्पष्ट बोध हो उस तरह उच्चारण करना व्यञ्जनाक्षर है,

१ इन मन्त्रामे कभी कभी इत्या वन्ते वह अक्षर है इत्येवमन्त्रारस्यामे भी जीवर। स्वयम् इत्ये। वह इत्ये रत्ना ही है उन मन्त्रारके कारण वररादि कर्म भी वररातो जपर करने हैं । भाररूप भुनघ अक्षरभन करते हैं ।

यह हुआ व्यञ्जनाक्षर । प्र०-वह लब्धि-अक्षर क्या है ? उ०-अक्षरलब्धिवाले जीवको लब्धिअक्षर-भावश्रुत उत्पन्न होता है, वह छह प्रकारका है, जैसे-श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षर १, चक्षुरिन्द्रियलब्ध्यक्षर २, घ्राणेन्द्रियलब्ध्यक्षर ३, रसनेन्द्रियलब्धि-अक्षर ४, स्पर्शेन्द्रियलब्धि-अक्षर ५, नोद्रेन्द्रियलब्धि-अक्षर ६, यह लब्ध्यक्षरका वर्णन हुआ यह पूर्वोक्त अक्षरश्रुत पूर्ण हुआ । स्पष्टीकरण-श्रोत्रेन्द्रियसे शब्द सुननेपर यह शङ्खका शब्द है इत्यादि अक्षरानुविद्ध जो शब्दार्थकी पर्यालोचनाका विज्ञान होता है वह श्रोत्रेन्द्रियनिमित्तक होनेसे श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धिअक्षर कहाता है, इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये,

प्र० अब वह अनक्षरश्रुत किस प्रकार है ? उ०-अनक्षरश्रुत अनेक प्रकारका कहा गया है, जैसे कि-उच्छ्वसित-ऊर्ध्वश्वास लेना, निःश्वसित-नीचा श्वास लेना, निष्ठ-चूत-थूँकना, काशित-खांसना, और छींकना नाक निसंघना और अनुस्वारयुक्त चेष्टा करना इसप्रकार सेण्डितादिक अनक्षरश्रुत हैं । यह अनक्षरश्रुतका वर्णन हुआ । स्पष्टीकरण ये उच्छ्वसित आदि ध्वनिमात्र भावश्रुतके कारण होनेसे द्रव्यश्रुत कहाते हैं, अभिप्रायपूर्वक कुछ विशेषताके साथ किसीको कुछ अर्थ समझानेके लिए जब उच्छ्वास आदिका प्रयोग किया जाता है, तब चेष्टाएँ प्रयोगकर्ताके भावश्रुतकी फलरूप और श्रोताके भावश्रुतकी कारण होती हैं और सुनी जाती हैं, इसलिए इनको अनक्षरात्मक श्रुत कहते हैं । हस्त आदिकी चेष्टाएँ इसप्रकार सुनी नहीं जाती अतः इनका अनक्षरश्रुतमें ग्रहण नहीं होता है ॥ सू. ३८ ॥

मूल--से किं तं सण्णिसुयं ? सण्णिसुयं तिविहं पण्णत्तं, तं जहा-कालि-ओवएसेणं, हेऊवएसेणं, दिट्ठिवाओवएसेणं, से किं तं कालि-ओवएसेणं ? कालिओवएसेणं जस्स णं अत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि ईहा, अवोहो, मग्गणा, गवेसणा, चिंता, वीमंसा, से णं असण्णीति लब्भइ, से तं कालिओवएसेणं । से किं तं हेऊव-एसेणं ? हेऊवएसेणं जस्स णं अत्थि अभिसंधारणपुव्विया करणसत्ती से णं सण्णीति लब्भइ, जस्स णं नत्थि अभिसंधारण-पुव्विया करणसत्ती से णं असण्णीति लब्भइ, से तं हेऊव-एसेणं । से किं तं दिट्ठिवाओवएसेणं ? दिट्ठिवाओवएसेणं सण्णिसुयस्स खओवसमेणं सण्णी लब्भइ, असण्णिसुयस्स खओवसमेणं असण्णी लब्भइ, से तं दिट्ठिवाओवएसेणं, से तं सण्णिसुयं, से तं असण्णिसुयं ॥ सू. ३९ ॥

छाया-अथ किन्तत् संज्ञिभुतम् ? संज्ञिभुतं त्रिविधं प्रज्ञातम्, तद्यथा-
 कालिक्युपदेशेन, हेतूपदेशेन, दृष्टिवाचोपदेशेन, अथ कोऽयं
 कालिक्युपदेशेन (संज्ञी) ? कालिक्युपदेशेन यस्याऽस्ति ईहा,
 अपोह*, मार्गणा, गवेपणा, चिन्ता, विमर्श*, स संज्ञीति लभ्यते,
 यस्य नास्ति ईहा, अपोह*, मार्गणा, गवेपणा, चिन्ता, विमर्श*,
 सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं कालिक्युपदेशेन । अथ कोऽयं हेतू
 पदेशेन (संज्ञी) ? हेतूपदेशेन यस्याऽस्ति-अमिसन्धारणपूर्विका
 करणशक्ति* स संज्ञीति लभ्यते, यस्य नास्ति-अमिसन्धारण
 पूर्विका करणशक्ति*, सोऽसंज्ञीति लभ्यते, सोऽयं हेतूपदेशेन ।
 अथ कोऽयं दृष्टिवाचोपदेशेन (संज्ञी) ? दृष्टिवाचोपदेशेन संज्ञि-
 भुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञी लभ्यते, असंज्ञिभुतस्य क्षयोपशमेन
 असंज्ञी लभ्यते, सोऽयं दृष्टिवाचोपदेशेन (संज्ञी) तदेतत् संज्ञि
 भुतम्, तदेतत्संज्ञिभुतम् ॥ सू. ३९ ॥

टीका-प्र०-अथ यह संज्ञिभुत क्या है ? उ०-संज्ञिभुत तीन प्रकारका
 कहा गया है जैसे-१ कालिकी उपदेशसे, २ हेतूपदेशसे, ३ दृष्टिवाचोपदेशसे ।
 प्र०-अथ कालिकी उपदेशसे यह संज्ञी क्या है ? उ०-कालिकी उपदेशसे-जि न
 जीवको ईहा अपोह, मार्गणा गवेपणा, चिन्ता और विमर्श ये हैं, यह संज्ञी
 ऐसा प्राप्त होता-कहाता है । जिस जीवको ईहा अपोह मार्गणा, गवेपणा,
 चिन्ता और विमर्श ये नहीं हैं, यह असंज्ञी ऐसा-कहाता है । (सम्पूर्ण, स,
 पञ्चेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय भावि अतिशय अल्प मनीषिभवाले होमेसे अरुण्ड
 अर्थकोही जानते हैं, इससे उमकी आहारावि संज्ञा अभ्यक्त रूपमें होती है
 ईहा आवि मानसिक क्रियाके अभावसे ये असंज्ञी है) यह वीर्यकालिकी उपदेशसे
 संज्ञी असंज्ञी हुए । प्र०-अथ हेतूपदेशसे यह संज्ञी असंज्ञी किस प्रकार है ? उ०-
 हेतूपदेशसे संज्ञी असंज्ञी, जैसे-जिस प्राणीको अद्यपयत वा व्यक्त विचारपूर्वक
 क्रियामें प्रवृत्ति होती है वह हेतूपदेशसे संज्ञी प्राप्त होता है, सारांश-जो
 पुष्टिपूर्वक अपने वेदके पाठनके लिए हुए आहार भावमें प्रवृत्ति करता और
 अनिष्टसे निवृत्त होता है, वह हेतूपदेशसे संज्ञी है, इस प्रकार विकलेन्द्रिय भी
 संज्ञी कहाते हैं । जिस जीवको विचारपूर्वक क्रिया करनेमें प्रवृत्ति नहीं है वह
 असंज्ञी कहाता है (जैसे-पञ्केन्द्रिय जीव), यह हेतूपदेशसे संज्ञी व असंज्ञीका
 विचार हुआ । प्र०-दृष्टि-सम्यक्त्वभाविके कथनकी अपेक्षा यह संज्ञी कीन है ?

१ यह देखाही है वा देखाही इस प्रकारके विचारको विमर्श कहते हैं बने पचासत्पि
 वस्तुना कर्ण करना विमर्श है ।

उ०-सम्यग्दृष्टिके श्रुतका क्षयोपशम होनेसे दृष्टिवादांपदेशके द्वारा संज्ञी होता है, ऐसेही असंज्ञिश्रुत-मिथ्याश्रुतके क्षयोपशमसे असंज्ञी कहाता है, यह दृष्टिवादांपदेशसे संज्ञी असंज्ञीका वर्णन हुआ। संज्ञी व असंज्ञी जीवोंके भेदसे संज्ञि असंज्ञिश्रुत भी तीन प्रकारका होता है। यह संज्ञिश्रुत हुआ। यह असंज्ञिश्रुतभी वर्णनसे पूर्ण हुआ ॥ सू. ३९ ॥

मूल—से किं तं सम्मसुयं ? सम्मसुयं जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्णनाणदंसणधरेहिं तेलुक्कनिरिक्खियमहियपूइएहिं तीय-पडुप्पण्णमणागयजाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा-आयारो १, सूयगडो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विवाहपण्णत्ती ५, नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगडदसाओ ८, अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्हावागरणाइं १०, विवागसुयं ११, दिट्ठिवाओ १२, इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दसपुव्विस्स सम्मसुयं, अभिण्णदसपुव्विस्स सम्मसुयं, तेण परं भिण्णेसु भयणा, से तं सम्मसुयं ॥ सू. ४० ॥

छाया-अथ किन्तत्सम्यक्-श्रुतम् ? सम्यक्-श्रुतं यदिदम्-अर्हन्दिर्भगवन्दिर्रुत्पन्नज्ञानदर्शनधरैश्चैलोक्यनिरीक्षितमहितपूजितैः, अतीतप्रत्युत्पन्नानागतज्ञायकैः, सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः प्रणीतं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्, तद्यथा-आचारः १, सूत्रकृतम् २, स्थानम् ३, समवायः ४, विवाहप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाताधर्मकथाः ६, उपासकदशाः ७, अन्तकृद्दशाः ८, अनुत्तरौपपातिकदशाः ९, प्रश्नव्याकरणानि १०, विपाकश्रुतम् ११, दृष्टिवादः १२, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं चतुर्दशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, अभिन्नदशपूर्विणः सम्यक्-श्रुतम्, ततः परं भिन्नेषु भजना, तदेतत्सम्यक्-श्रुतम् ॥ सू. ४० ॥

टीका—प्र०-अव वह सम्यक्श्रुत कौनसा है? उ०-उत्पन्न हुए केवलज्ञान और केवलदर्शनको धारण करनेवाले तथा जो देव दानव मानव आदि प्राणिवर्गसे आदरपूर्वक देखे गये और स्तुति नमस्कारको प्राप्त करनेवाले हैं व भूत भविष्य वर्तमानके ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी हैं, उन अर्हत् भग-

१ द्वादशानामज्ञाना समाहारे द्वादशाङ्गीति रूपम्, अत्र तु द्वादशाङ्गानि यस्मिन्निति बहुव्रीहि समासे द्वादशाङ्गमिति ।

कन्त-तीर्थद्वारोंसे प्रणीत ओ यह द्वावशाही गणपितक-शेठके रत्नपिटक (पिटी)की तरह आचार्यका सर्वस्व है, वह सम्यक्भूत है, उसके चारह अङ्ग हैं, जैसे-भाषाराह १, सूत्रकृताह २, स्थानाह ३, समवायाह ४, विवाहप्रज्ञाति-अह ५, ज्ञाता-वर्मकथाह ६ उपासकवशाह ७ अन्तकृद्दशाह ८, अन्तचरीप-पातिकवशाह ९, प्रज्ञम्याकरण १०, विपाकभूत ११, इष्टिवाह १२ इस प्रकार यह द्वावशाह गणपितक बीसहपूर्वीको सम्यक्भूत है तथा अग्रिमवशापूर्वी-सम्पूर्ण वशा पूर्वका ज्ञान धारण करनेवालेको सम्यक्भूत है, क्योंकि-वशापूर्वका सम्पूर्ण ज्ञान सम्यक्स्वीको ही होता है, उससे आगे पूर्वके भिन्न होनेपर जाने कुछ कम वशा नव आदि पूर्वज्ञान हो तो सम्यक्भूतपनकी मजना है याने उसके लिये यह सम्यक्भूत भी हो सकता है और मिथ्या भी, नियम नहीं है। यह सम्यक्भूत हुआ ॥ सू. ४० ॥

मूल—से किं त मिच्छासुयं ? मिच्छासुयं जं इमं अण्णाणिपिहिं मिच्छा-
विट्ठिपिहिं सच्चन्दबुद्धिमहविगप्पियं, तं जह्वा-मारुं, रामायणं,
मीमासुरुक्खं(कं), कोटिल्लय, सगढमहियाओ, सोढ(घोटक)
मुहं, कप्पासिय, नागसुह्वमं, कणगसत्तरी, वइसेसियं, बुद्धवयण,
तेरासियं, काविलिय, लोगायय, सट्ठितंतं, माडरं, पुराण, वागरणं,
मागवयं, पायजली, पुस्तवेवयं, लेह, गणियं, सट्ठणरुयं, नाडयाइं,
अहवा धावत्तरि कलाओ, चत्तारि य धेया संगोवगा, एयाइं
मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिगहियाइं मिच्छासुयं, एयाइं खेव
सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिगहियाइं सम्मसुयं, अहवा मिच्छविट्ठिस्स
वि एयाइं खेव सम्मसुयं, कम्हा ? सम्मतवेत्तणओ, जम्हा ते
मिच्छविट्ठिया तेहिं खेव समपिहिं चोइया समाणा केइ सपक्ख
विट्ठिओ चर्यति, से च मिच्छासुयं ॥ सू. ४१ ॥

छाया—अथ किं तन्मिथ्यामुत्तम् ? मिथ्यामुत्तं पविद्वमज्ञानिकैर्मिथ्याह-
ष्टिकं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकल्पितम्, तद्यथा—मारुतम् १, रामा
यणम् २, मीमासुरोक्तम् ३, कोटिल्लयकम् ४, शकटमत्रिका ५,
सोढा(घोटक)मुखम् ६, कार्पासिकम् ७, नागसूक्ष्मम् ८, कनक
सतति ९, वैशेषिकम् १०, बुद्धवचनम् ११, धैराशिकम् १२,
कापिलिकम् १३, लौकायतिकम् १४, पठितन्त्रम् १५, मांडरम्

१ इत्येके इष्टिवाद्ये वर्णनं करनेवाला मन्थ । २ इत्यारथ देशविद्वर्तन । ३ वैरागिक
संश्रयण एक मन्थ हैगे परिशिष्ट । ४ मारु-ऊँकड़ तत्त्वस्वापरक एक त्वावयाह ।

१६, पुराणम् १७, व्याकरणम् १८, भागवतम् १९, पातञ्जलिः २०, पुण्यदैवतम् २१, लेखम् २२, गणितम् २३, शकुनरुतम् २४, नाटकानि २५, अथवा द्वासप्ततिः कलाः, चत्वारश्च वेदाः साङ्गोपाङ्गाः, एतानि मिथ्यादृष्टेर्मिथ्यात्वपरिगृहीतानि मिथ्याश्रुतम्, एतानि चैव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि सम्यक्-श्रुतम् । अथवा मिथ्यादृष्टेरप्येतानि चैव सम्यक्-श्रुतम्, कस्मात् ? सम्यक्त्व-हेतुत्वात्, यस्मात्ते मिथ्यादृष्टयस्तैश्चैव समयैर्नोदिताः सन्तः केचित्स्वपक्षदृष्टीस्त्यजन्ति, तदेतन्मिथ्याश्रुतम् ॥ सू. ४१ ॥

टीका-प्र०-वह मिथ्याश्रुत क्या है ? उ०-अल्पमति मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा अपनी इच्छानुसार बुद्धिकी कल्पनासे कल्पित जो ये ग्रन्थ वे मिथ्याश्रुत हैं, जैसे-भारत १, रामायण २, भीमासुर कथितग्रन्थ ३, कौटिल्य-अर्थशास्त्र ४, शकटभद्रिका ५, खोड (घोटक) मुख ६, कार्पासिक ७, नागसूक्ष्म ८, कनकसप्तति ९, वैशेषिक १०, बुद्धवचन ११, त्रैराशिक १२, कापिलीय १३, लौकायत १४, षष्ठितन्त्र १५, माठर १६, पुराण १७, व्याकरण-शब्दशास्त्र या पाशावली आदिके प्रश्नोत्तर १८, भागवत १९, पातञ्जलि २०, पुण्यदैवत २१, लेख २२, गणित २३, शकुनरुत २४, नाटक २५, अथवा ७२ कलाएँ और अङ्गोपाङ्गसहित चार वेद, ये सबग्रन्थ मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वरूपसे परिगृहीत-ग्रहण किये गये मिथ्याश्रुत हैं और ये ही भारत आदि सम्यग्दृष्टिवालेको सम्यक्त्वरूपसे परिगृहीत याने यथार्थरूपसे ग्रहण किये गये सम्यक्श्रुत हैं, अथवा मिथ्यादृष्टिके भी येही सम्यक् श्रुत हैं, क्योंकि उनकेसम्यक्त्वमें ये हेतु होते हैं, जिसलिये वे मिथ्यादृष्टि उन भारत आदिशास्त्र ग्रन्थोंसेही प्रेरणा-बोध पाये हुए कई स्वपक्षदृष्टि-अपनी मिथ्यादृष्टिको छोड़ देते हैं, इसलिये उनके लिये भी वे वेद आदि सम्यक्श्रुत हो जाते हैं । यहमिथ्याश्रुतका वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू. ४१ ॥

मूल—से किं तं साइयं सपज्जवसियं ? अणाइयं अपज्जवसियं च ? इच्चे-इयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्टयाए साइयं सपज्जवसियं, अणुच्छित्तिनयट्टयाए अणाइयं अपज्जवसियं, तं समासओ चउव्विहं पण्णत्तं, तं जहा-द्व्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ द्व्वओ णं सम्मसुयं एगं पुरिसं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं, बहवे पुरिसे य पडुच्च अणाइयं अपज्जवसियं, खेत्तओ णं पंच भरहाइं पंचेरवयाइं पडुच्च साइयं सपज्जवसियं,

पंच महाविदेहाईं पशुञ्च अणाहयं अपञ्चवसिर्यं, कालओ णं उस्सपिणिं ओसपिणिं च पशुञ्च साहयं सपञ्चवसिर्यं, नो-उस्सपिणिं नोओसपिणिं च पशुञ्च अणाहयं अपञ्चवसिर्यं, भावओ णं जे जया जिणपन्नता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परुविज्जंति, वंसिज्जंति, निवंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, तथा ते माये पशुञ्च साहयं सपञ्चवसिर्यं, साओवसमिर्यं पुण भावं पशुञ्च अणाहयं अपञ्चवसिर्यं, अहृषा भवसिद्धियस्स सुयं साहयं सपञ्चवसिर्यं च, अमवसिद्धियस्स सुयं अणाहयं अपञ्चवसिर्यं च, सव्वागासपपसग्गं सव्वागासपपसेहिं अणंतगुणिर्यं पञ्चवक्खरं निप्फज्जइ, सब्बजीवारणं पि घ णं अब्बसरस्स अणंत मागो निच्चुग्घाडिओ (चिट्ठइ) । जइ पुण सोऽवि आबरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाबिज्जा—

“ सुद्धुवि मेहसमुवप, होइ पमा चदसुराणं । ”

से च साहयं सपञ्चवसिर्यं, से च अणाहयं अपञ्चवसिर्यं ॥ सू ४२ ॥

छाया—अथ किं तत्सादिकं सपर्यवसितम् ? अनादिकमपर्यवसितम् ? इत्ये तद् द्वावशाङ्कं गणिपिट्ठकं व्युच्छिच्छिनयार्थतया सादिकं सपर्यवसितम्, अव्युच्छिच्छिनयार्थतयाऽनादिकमपर्यवसितम्, तत्समासतत्त्वतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—‘द्रव्यत’, क्षेत्रत’, कालतो भावत’, तत्र द्रव्यतो नु सम्पक्—श्रुतम्—एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, बहुन् पुरुषाश्च प्रतीत्य अनादिकमपर्यवसितम्, क्षेत्रतो नु पञ्च भरतानि पञ्चैरावतानि प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, पञ्चमहाविदेहानि प्रतीत्यानादिकमपर्यवसितम्, कालत उस्सपिणीमवसपिणीञ्च प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितं, नोउत्सपिणीं नोअवसपिणीञ्च प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, भावतो नु ये यदा जिणपन्नता भावा आसयापन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, परुष्यन्ते, वृश्यन्ते, निदृश्यन्ते, उपदृश्यन्ते, तथा तान् भावान् प्रतीत्य सादिकं सपर्यवसितम्, क्षायोपशमिकं पुनर्भायं प्रतीत्याऽनादिकमपर्यवसितम्, अपवा भवसिद्धिकस्य श्रुतं सादिकं सपर्यवसितञ्च, अमव-

सिद्धिकस्य श्रुतमनादिकमपर्यवसितञ्च । सर्वाकाशप्रदेशाग्रं सर्वा-
काशप्रदेशैरनन्तगुणितं पर्यवाक्षरं निष्पद्यते, सर्वजीवानामपि
च अक्षरस्याऽनन्तभागो नित्यमुद्धाटितः (तिष्ठति), यदि पुनः
सोऽपि-आव्रियेत तेन जीवोऽजीवत्वं प्राप्नुयात् ॥

‘ सुष्ठुपि मेवसमुदये भवति प्रभा चंद्रसूर्याणाम् । ’

तदेतत् सादिकं सपर्यवसितम्, तदेतदनादिकमपर्यवसितम्
॥ सू ४२ ॥

टीका-प्र०-मगवन् । वह सादि सपर्यवसित-आदि अन्तवाला और अनादि अनन्त-श्रुत किस प्रकार है ? उ०-पूर्वोक्त यह द्वादशाङ्गी गणिपिटक व्यव-
च्छित्तिनय-पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सादि और सान्त है, तथा अव्यवच्छि-
त्तिनय-द्रव्यार्थिकनयके अर्थकी अपेक्षा याने द्रव्यकी अपेक्षासे आदि अन्तरहित
है । द्रव्य क्षेत्र आदिकी अपेक्षा सादि व अनादि श्रुतका विचार करते हैं-वह सादि
सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसित श्रुत संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है,
जैसे कि १ द्रव्यसे २ क्षेत्रसे ३ कालसे व ४ भावसे, इनमे द्रव्यसे एक पुरुषकी
अपेक्षा सम्यक्श्रुत सादि सान्त है और बहुतसे पुरुषोंकी अपेक्षासे कभी
अभाव नहीं होनेके कारण अनादि अनन्त है, क्षेत्रसे पांच भरत व पांच ऐरावत-
को लेकर सादि सान्त है और पांच महाविदेहकी अपेक्षा श्रुत आदि व अन्तसे
रहित है, कालसे उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालकी दृष्टिसे सादि सान्त
है, और नोउत्सर्पिणी नोअवसर्पिणी-हानि वृद्धिरहित कालकी अपेक्षासे
अनादि अनन्त भी है, भावसे जिनप्ररूपित जो भाव जिस समय कहे जाते, नाम
आदि भेदसे दिखाये जाते व प्ररूपण दर्शन निदर्शन और उपनयरूप उपदर्शनसे
कहे जाते हैं, उस समयके उन भावोंका आश्रयण करके सादि सपर्यवसित
श्रुत है, और क्षायोपशमिक भावकी अपेक्षा अनादि अनन्त है, अथवा मव
सिद्धिकका श्रुत सादि सान्त है क्योंकि मिथ्याश्रुतके त्याग और केवलज्ञानकी
उत्पत्तिकी अपेक्षासे भव्यका श्रुत आदि अन्तवाला है, अभवसिद्धिकका
श्रुत-मिथ्याश्रुत अनादि और अन्तरहित है, सभी आकाशके प्रदेशाग्रको सभी
आकाश-प्रदेशोंसे अनन्तवार गुणन करनेपर पर्यायाक्षर निष्पन्न होता है ।
अर्थात् एक आकाश प्रदेशपर अनन्त अगुरुलघु पर्याय होती हैं, अतः पर्याय-
परिमाणका अक्षरज्ञान होता है, धर्मास्तिकाय आदि अल्पपरिमाणमे होनेसे
सूत्रमें साक्षात् नहीं कहे गये हैं, किन्तु यहाँ उनका भी ग्रहण करना चाहिए,
अर्थात् सब द्रव्यपर्यायोंका जितना परिमाण होता है, अक्षर परिमाण भी
उतना होता है, वह अक्षर ज्ञानरूप और अकारादि वर्णरूप है, अकार ककार
आदि प्रत्येक अक्षर ह्रस्व दीर्घ प्लुत आदि स्वपरपर्यायोंसे सभी द्रव्यपर्यायके
समान अनन्त है और वह उत्कृष्ट श्रुतकेवलीको होता है । और अन्य सब

जीवोंको भी अज्ञरका अनन्तवां भाग अर्थात् सुतज्ञानका अनन्तवां भाग सदा सुखा रहता है, अगर फिर वह अनन्तवां भाग भी आवृत हो जाय तो उससे जीव अजीवपदको प्राप्त कर जाय क्योंकि चैतन्य जीयका छद्मण है, इस विषयको ब्रह्मान्तसे कहते हैं—“बहुत सधन वादृक्के पदछसे आच्छादित होने पर भी चन्द्र सूर्यकी प्रभा होती है जाने कुछ तो प्रकाश होता ही है, (इसी प्रकार अनन्तानन्त ज्ञानावरण-दर्शनावरणके कर्मपरमाणुसे आत्मप्रवेशके वेदित होनेपर भी आत्माको सर्वअज्ञन्य ज्ञानमात्रा रहतीही है, वह ज्ञानमात्रा मतिमुतात्मक है, इसछिये सुतज्ञानका अनाविषम विकरू नहीं होता है, यह सावि सपर्यवसित सुत तथा अनावि अपर्यवसित सुतका भी वर्णन पूर्ण हुआ ॥ सू ४१ ॥

मूल—से किं तं गमियं ? गमियं विद्विवाओ, से किं तं अगमियं ? अगमियं काष्ठियं सुयं, से चं गमियं, से चं अगमियं ।

छाया—अथ किं तद्गमिकम् ? गमिकं द्विवाव् । अथ किं तद्गमिकम् ? अगमिकं काष्ठिकं भुतम्, तदेतद् गमिकम्, तदेतद्गमिकम् ।

टीका—प्र०—वह गमिक सुत किस प्रकार है ? उ०—जिस सूत्रके आदि मध्य और अन्तमें कुछ विशेषतासे वारंवार उसी पाठका उच्चारण ही उसको गमिक कहते हैं, द्विवाव् गमिक सुत है । वह अगमिक सुत कीनसा है ? उ०—अगमिक—गमिकसे विपरीत, आचाराद् आवि काष्ठिक सुत अगमिक हैं । यह गमिक सुत व अगमिक सुतका वर्णन पूर्ण हुआ ।

मूल—अहवा तं समासओ बुविहं पण्णत्तं, तं जहा—अंगपच्छिं अंग-बाहिरं च । से किं तं अंगबाहिरं ? अंगबाहिरं बुविहं पण्णत्तं, तं जहा—आवस्सयं च आवस्सयवहरित्तं च । से किं तं आवस्सयं ? आवस्सयं छविहं पण्णत्तं, तं जहा—सामाहयं १, चउवी-सत्थओ २, वव्वणयं ३, पड्डिककमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्च वत्तार्णं ६, से चं आवस्सयं ।

छाया—अथवा तत्समासतो द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अङ्गप्रविष्टम् अङ्गबाह्यञ्च । अथ किं तद्—अङ्गबाह्यम् ? अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवश्यकञ्च आवश्यकम्यतिरिक्तञ्च । अथ किं तदावश्यकम्, आवश्यकं पञ्चिधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सामापिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, चन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गं ५, प्रस्थापयानम् ६, तदेतदावश्यकम् ।

टीका-अथवा वह श्रुतज्ञान संक्षेपसे दो प्रकारका है, जैसे-अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य । स्पष्टीकरण-श्रुतपुरुषके द्वादश अङ्गोंसे बहिर्भूत जो शास्त्र है वह अङ्गबाह्य-अनङ्गप्रविष्ट है, अथवा गणधरदेवके वचनोंका आश्रय कर स्थविरोंसे रचे गये शेष श्रुत अनङ्गप्रविष्ट होते हैं, तथा जो नियमितरूपसे सर्वदा अङ्गकी तरह नहीं रहते वे अनङ्गप्रविष्ट कहाते हैं । प्र०-भगवन् ! वह अङ्गबाह्य किस प्रकार है ? उ०-अङ्गबाह्य श्रुत दो प्रकारका है, जैसे-आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त-भिन्न । प्र०-वह आवश्यक क्या है ? उ०-आवश्यक छ प्रकारका कहा गया है, जैसे-सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दना ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५, और प्रत्याख्यान ६ । (अवश्य करनेयोग्य क्रियाएँ आवश्यक हैं, उनको कहनेवाला श्रुत भी आवश्यक है,) यह आवश्यकका वर्णन पूर्ण हुआ ।

मूल—से किं तं आवस्सयवइरित्तं ? आवस्सयवइरित्तं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—कालियं च उक्कालियं च । से किं तं उक्कालियं ? उक्कालियं अणेगविहं पण्णत्तं, तं जहा—इसवेआलियं, कप्पियाकप्पियं, चुल्लकप्पसुयं, महाकप्पसुयं, उववाइयं, रायपसेणियं जीवाभिगमो, पण्णवणा, महापण्णवणा, पमायप्पमायं, नन्दी, अणुओगदाराइं, देविदत्थओ, तंदुलवेयालियं, चंदाविज्जयं, सूर पण्णत्ती, पोरिसिमंडलं, मंडलपवेसो, विज्जाचरणविणिच्छओ, गणिविज्जा, ज्ञाणविभत्ती, मरणविभत्ती, आयविसोही, वीयरगसुयं, संलेहणासुयं, विहारकप्पो, चरणविही, आउरपच्चक्खाणं, महापच्चक्खाणं एवमाइ, से त्तं उक्कालियं ।

छाया-अथ किन्तदावश्यकव्यतिरिक्तम् ? आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-कालिकञ्च-उत्कालिकञ्च । अथ किं तदुत्कालिकम् ? उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-दशवैकालिकं १, कल्पिकाकल्पिकं (कल्पाकल्पम्) २, चुल्ल (क्षुल्ल) कल्पश्रुतं ३, महाकल्पश्रुतम् ४, औपपातिकं ५, राजप्रश्नीकं ६, जीवाभिगमः ७, प्रज्ञापना ८, महाप्रज्ञापना ९, प्रमादाप्रमादं १०, नन्दी ११, अनुयोगद्वाराणि १२, देवेन्द्रस्तवः १३, तन्दुलवैचारिकं १४, चन्द्रकवेध्यं १५, सूर्यप्रज्ञप्तिः १६, पौरुषीमण्डलं १७, मण्डलप्रवेशः १८, विद्याचरणविनिश्चयः १९, गणिविद्या २०, ध्यानविभक्तिः २१, मरणविभक्तिः २२,

आत्मविशोधि २३, वीतरागभुतं २४, सल्लेखनाभुतं २५,
विहारकल्प २६, चरणविधि २७, आतुरप्रत्याख्यानं २८,
महाप्रत्याख्यानम् २९, एवमादि, तदेतदुत्कालिकम् ।

टीका—प्र० अथ आवश्यकसे भिन्न वह कौनसा भुत है ? उ०—आवश्यक-
व्यनिरिक्त भुत दो प्रकारका है, जैसे—कालिक भुत और उत्कालिक भुत, (जो
दिनरातके प्रथम और अन्तिम प्रहररूप कालमें पड़े जाते हैं वे कालिक तथा
जो उधसे भिन्न समयमें पड़े जाते वे उत्कालिक कहाते हैं ।) प्र०—मगवन् ! वे
उत्कालिक भुत कौनसे हैं ? उ०—उत्कालिक भुत अनेक प्रकारके कहे गये
हैं, जैसे कि वृक्षकालिक, कल्पकल्प, पुस्तकस्यभुत, महाकल्पभुत, शीपपा-
तिक, रायपसेणिय, जीवाभिगम प्रहापना, महामहापना प्रमाषामभाष, मर्मी
अनुयोगद्वार, वैयन्त्रस्तव, तन्त्रुल्लेखाष्टिय(तन्त्रुल्लेख वैचारिक) चन्द्रविद्या, सूर्य-
प्रहाप्ति, पीरुपीमण्डक, मण्डकप्रवेश, विद्याचरणविनिश्चय गणिविद्या, ध्यान-
विभक्ति, मरणविभक्ति, आत्मविद्युत्ति, वीतरागभुत सल्लेखनाभुत विहारकल्प,
चरणविधि आतुरप्रत्याख्यान महाप्रत्याख्यान इत्यादि, इस प्रकार नामके
अनुसार विषयबाले वे २९ शास्त्र उत्कालिक हैं । यह उत्कालिकभुतका वर्णन
पूर्ण हुआ ।

मूल—से किं तं कालियं ? कालियं अणोविविहं पण्णत्तं ? तं जहा-
उत्तरज्जयणाई, वसाओ, कप्पो, ववहारो, निसीहं, महानिसीहं,
इसिमासियाई, जंबूवीवपन्नत्ती, वीवसागरपन्नत्ती, चंक्वपन्नत्ती,
खुद्धिआविमाणपविमत्ती, महत्तिपाविमाणपविमत्ती, अंग
चूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाए, वरुणो-
ववाए, गरुलोववाए, धरणोववाए, वेसमणोववाए, वेलंधरोववाए,
वेर्विदोववाए, उट्टाणसुयं, समुट्टाणसुयं, नागपरियावणियाओ,
निरयावठियाओ, कप्पियाओ, कप्पवडंसियाओ, पुप्फियाओ,
पुप्फचूलियाओ, बण्हीवसाओ, (आसीविसमायणार्णं, विट्ठि-
विसमावणार्णं, सुमिणभावणार्णं, महासुमिणभावणार्णं, तेवग्गि-
निसग्गार्णं,) एवमाइयाई चउरासीइ पइअगसहस्साई मगवओ
अरुओ उसहसामिस्स आइतिथयरस्स, तथा संत्तिज्वाइ पइअ
गसहस्साई मज्झिमगार्णं जिणवरार्णं, बोइसपइअगसहस्साणि

भगवतो वद्ध्रमाणसामिस्स, अहवा जस्स जत्तिया सीसा
उप्पत्तिआए वेणइयाए कम्मयाए परिणामियाए चउव्विहाए
बुद्धीए उववेया, तस्स तत्तियाइं पइण्णगसहस्साइं, पत्तेयबुद्धा
वि तत्तिया चेव, से त्तं कालियं, से त्तं आवस्सयवइरित्तं, से त्तं
अणंगपविट्ठं ॥ सू. ४३ ॥

छाया-अथ किं तत्कालिकम् ? कालिकमनेकविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-
उत्तराऽध्ययनानि, दशाः, कल्पः, व्यवहारः, निशीथं, महा-
निशीथम्, ऋषिभाषितानि, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः,
चन्द्रप्रज्ञप्तिः, क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्तिः, महल्लिका(महा)-
विमानप्रविभक्तिः, अङ्गचूलिका, वर्गचूलिका, विवाहचूलिका,
अरुणोपपातः, वरुणोपपातः; गरुडोपपातः, धरणोपपातः, वैश्र-
मणोपपातः, वेल्न्धरोपपातः, देवेन्द्रोपपातः, उत्थानश्रुतं, समु-
त्थानश्रुतं, नागपरिज्ञापनिकाः, निरयावलिकाः, कल्पिकाः,
कल्पावतंसिकाः, पुष्पिताः, पुष्पचूलिका(चूला), वृष्णिदशाः,
(आशीविषभावनं, वृष्टिविषभावनंस्वप्नभावनं, महास्वप्नभावनं
तेजोऽग्निनिर्गमः) एवमादिकानि चतुरशीति प्रकीर्णकसहस्राणि
भगवतोऽर्हत ऋषभस्वामिन आदितीर्थङ्करस्य, तथा संख्येयानि
प्रकीर्णकसहस्राणि मध्यमकानां जिनवराणाम्, चतुर्दशप्रकीर्ण
कसहस्राणिभगवतो वद्ध्रमानस्वामिनः, अथवा यस्य यावन्तः
शिष्या औत्पत्तिक्या वैनयिक्या कर्मजया पारिणामिक्या चतु-
र्विधया बुद्धयोपपेताः, तस्य तावन्ति प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येक-
बुद्धा अपि तावन्तश्चैव, तदेतत्कालिकम्, तदेतदावश्यकव्यति-
रिक्तम्, तदेतदनङ्गप्रविष्टम् ॥ सू. ४३ ॥

टीका-प्र०-वह कालिकश्रुत कौनसा है? उ०-कालिकश्रुत अनेक प्रकारका
कहा गया है, जैसे कि १ उत्तराध्ययनसूत्र, २ दशाश्रुतस्कन्ध, ३ कल्प-बृहत्कल्प-
सूत्र, ४ व्यवहार, ५ निशीथ, ६ महानिशीथ, ७ ऋषिभाषित, ८ जम्बूद्वीप-
प्रज्ञप्ति, ९ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, १० चन्द्रप्रज्ञप्ति, ११ क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति, १२
महतीविमानप्रविभक्ति, १३ अङ्गचूलिका, १४ वर्गचूलिका, १५ विवाहचूलिका,
१६ अरुणोपपात, १७ वरुणोपपात, १८ गरुडोपपात, १९ धरणोपपात, २० वैश्र-

मण्योपपात, २१ वेद्योपपात, २२ देवेन्द्रोपपात, २३ उत्पानस्रुत, २४ स्रु-
त्यानस्रुत, २५ भागपरिह्ला २६ निरयावाहिका, २७ कास्थिका २८ कथा
वर्तसिका, २९ पुष्यिता ३० पुष्यसूक्तिका ३१ वृष्णिवशा (अन्धकवृष्णिवशा)
आशीविषं इत्यादिक ८४ हजार प्रकीर्णक प्रथम तीर्थहृत् भगवान् श्री नन्द-
देव स्वामीके हैं, तथा संख्यात हजार प्रकीर्णक मध्यम भिन्नवर्तिक हैं
भगवान् वर्तमान स्वामीके १४ हजार प्रकीर्णक होते हैं। अथवा भिन्न तीर्थहृत्के
मितने शिष्य औत्पसिकी वैनयिकी कर्मका और परिणामिकी इन चार
प्रकारकी बुद्धिसे पुष्क हैं, उन तीर्थहृत्के उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं
और प्रत्येक हृत् भी उतनी ही हैं, यह काळिकस्रुत आवश्यकाव्यतिरिक्त, तथा
अनङ्गप्रविष्ट स्रुतका वर्णन समाप्त हुआ ॥ सू. ४३ ॥

मूल—से किं तं अंगपविष्टं ? अंगपविष्टं द्वादशविहं पण्णत्तं, तं जहा-
आयारो १, सुयगद्धो २, ठाणं ३, समवाओ ४, विबाहपज्ञची ५,
नायाधम्मकहाओ ६, उवासगदसाओ ७, अंतगद्धसाओ ८,
अणुत्तरोववाइयदसाओ ९, पण्णावागरणाई १०, विवागसुर्यं ११,
द्विद्विवाओ १२ ॥ सू. ४४ ॥

छाया—अथ किं तद् अङ्गप्रविष्टम् ? अङ्गप्रविष्टं द्वादशविहं प्रहत्तम्,
तद्यथा—आचारं १, सूत्रकृतं २, स्थानं ३, समवायं ४,
विवाहप्रज्ञाति ५, ज्ञाताधर्मकथां ६, उपासकदशां ७, अन्त-
कृद्दशां ८, अनुत्तरोपपातिकदशां ९, प्रसन्न्याकरणानि १०,
विपाकस्रुतम् ११, द्विद्विवा १२ ॥ सू. ४४ ॥

टीका—म०—यह अङ्गप्रविष्ट स्रुत कैसा है ? उ०—अङ्गप्रविष्टस्रुत बारह प्रका
रका कहा गया है, जैसे—१ आचार-आचाराह २ सूत्रकृताह, ३ स्थानाह
४ समवायाह, ५ विवाहप्रज्ञाति-भगवती, ६ ज्ञाताधर्मकथाह ७ उपासकदशाह,
८ अन्तकृद्दशाह ९ अनुत्तरोपपातिकदशाह, १० प्रसन्न्याकरण ११ विपाक
स्रुत, और १२ द्विद्विवा ॥ सू. ४४ ॥

प्रत्येकका स्वरूप व परिचय क्रमसे आगे सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

मूल—से किं तं आपारे ? आपारे णं समणारं निग्गघारं आपा-
रगोयरविणयवेणइयसिक्खराभासाभमासाचरणकरणजायामाया-

१ आसीनिवमान दहिविदमात्र, चारणमात्र स्वप्रमान म्हात्तप्रमात्र और तेजोप्रि-
मित्तो वे नाम भी चिन्ने २ प्रभित्ति किये है ।

३ अनुत्तप्रमणि भगिणि चमेनि दिक्कारोपे ।

वित्तीओ आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-नाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे, आयारे णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखिज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से अंगट्टयाए पढमे अंगे, दो सुयक्खंधा, पणवीसं अज्झयणा, पंचासीई उद्देसणकाला, पंचासीई समुद्देसणकाला, अट्टारसपयसहस्साइं पयग्गेणं, संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं नाया एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं आयारे ॥ सू. ४५ ॥

छाया-अथ कः स आचारः ? आचारे श्रमणानां निर्ग्रन्थानामाचारगोचरविनयवैनयिकशिक्षाभाषा ऽ भाषाचरणकरणयात्रामात्रा वृत्तय आख्यायन्ते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-ज्ञानाचारः १, दर्शनाचारः २, चारित्राचारः ३, तपआचारः ४, वीर्याऽऽचारः ५, आचारे नु परीता (परिमिता) वाचना, संख्येयानि-अनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेढाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येयाः निर्युक्तयः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया प्रथममङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते, परूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं

१ परिपूर्वकस्य क्तप्रत्ययान्तस्य गत्यर्थकस्य इण्घातो. परीतमिति रूपम्, तस्य परीता-परिमितेति तात्पर्यम् ।

ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, स एव
आचार ॥ सू ४५ ॥

टीका—प्र०अक्ष-आचार श्रुत नामके प्रथम अङ्गमें क्या वर्णन है? उ०-
आचाराङ्गमें अमण्यनिर्गन्धोके अनेकविध आचार, गोचर भिक्षाग्रहणविधि,
विनय और विनयफल तथा ग्रहणा व मूत्रगुण व उत्तरगुणकी आसेवना रूप
शिक्षा, सत्य व्यवहारमापा, असत्य और मित्र अमापा-जहीं बोलने-योग्य
वचन, महाव्रत आदि आचरण, व पिण्डविद्युत्ति आदि करण, संयमयात्रा-
संयमनिर्वाहके लिये आहारका प्रमाण और उसके निर्वाहकी बुद्धि, ये सब
भाव कहे जाते हैं। वह आचार संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे-१ ज्ञानाचार,
२ दर्शनाचार, ३ चरित्राचार, ४ तपाचार, ५ वीर्याचार। आचाराङ्गमें सूत्र अर्थ
प्रदानरूप बाधमार्ये परिमित हैं, उपक्रम निक्षेप आदि संक्षेप अनुयोगहार हैं,
वेद (छन्दोविशेष भी) संख्यात हैं। तथा संख्यात श्लोक और संख्यात
निर्मुक्तिर्यो हैं, प्रतिपत्ति-द्रव्य आदि पदार्थके कथनकी शैली, या प्रतिम-
अभिप्राह विशेषरूप प्रतिपत्तिर्यो संख्यात हैं, अङ्गकी दृष्टिसे यह आचार
प्रथम अङ्ग है, जो इसके श्रुतस्वरूप और पचीस अव्ययन हैं, ८१ उद्देशन
काळ और ८१ समुद्देशनकाळ हैं, पद्यामपवपरिमापसे अठारह हजार इसके
पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्तमम-अर्थज्ञान होते हैं (एक २ पदमें अपरि-
मित अर्थ ज्ञान होनेसे) स्वपरमेष्ठसे पर्याय भी अनन्त हैं। असङ्गीन्वित
आदि परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत तथा
प्रयोग व विनसासे हीनेवाळ अटसम्भारारग आदि-कृत ये सभी आचार-
ङ्गमें निबद्ध-स्वरूपसे कहे गये, तथा-निकाशित-निर्मुक्ति-वेद व उपाहरणपूर्वक
अनेक तरहसे व्यवस्थापित ऐसे अिनप्रदर्शित भाव इसमें कहे जाते हैं प्रहा-
पत्र प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन आदि विशेषतासे समझाये जाते
हैं। भावसे सम्यक् आचाराङ्गके पदनेपर जो फल होता है उसे विज्ञाते हैं-वह
आचाराङ्गका पाठक परंरूप याने आचाररूप हो जाता है, जिस प्रकार
आचाराङ्गमें कहा है उसी प्रकार आचार आविका ज्ञाता होता है, इसी प्रकार
विशेषता के साथ भी उनकी जानता है, इस प्रकार आचाराङ्गमें चरणकरणकी
प्ररूपणा कही जाती है। यह आचाराङ्गका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू ४५ ॥

मूल—से किं तं सूयगळे ? सूयगळे णं लोप सूज्जह, अलोप सूज्जह,
लोयालोप सूज्जह, जीवा सूज्जति, अजीवा सूज्जति, जीवाऽ-
जीवा सूज्जति, ससमप सूज्जह, परसमप सूज्जह, ससमप-
परसमप सूज्जह, सुयगळे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स,
अटपासीहप अकिरियावाइण, सत्तुपीप अण्णाभियवाइण,

तेसद्वाणं पासंडियसयाणं ब्रूहं किञ्चा ससमए ठाविज्जइ, सूयगडे णं
परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा,
संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ
संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्टयाए विईए
अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसण-
काला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं,
संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता
भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति,
निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं सूयगडे २
॥ सू० ४६ ॥

छाया-अथ किं तत् सूत्रकृतम् ? सूत्रकृते लोकः सूच्यते, अलोकः
सूच्यते, लोकालोकौ सूच्येते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते,
जीवाऽजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते,
स्वसमयपरसमयाः सूच्यन्ते, सूत्रकृते-अशीत्यधिकस्य क्रिया-
वादिशतस्य, चतुरशीतिरक्रियावादिनां, सप्तषष्ठेरज्ञानिकवादिनां
(अज्ञानवादिनां), द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ट्य-
धिकानां पाषण्डिकशतानां ब्रूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते,
सूत्रकृते परीता वाचनाः, संख्येयानि-अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः (संख्येयाः सद्ब्र-
ह्मण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ
श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः,
त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण,
संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परिमि-
(री)तास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता
जिन प्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते
१६

ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणा आख्यायते, स एव
आचार ॥ सू ४५ ॥

टीका—प्र० अक्षर-आचार श्रुत नामके प्रथम अक्षरमें क्या वर्णन है? उ०-
आचाराङ्गमें अक्षरनिर्गन्धेके अनेकविध आचार, मोक्षर शिक्षाप्रवृत्तियाँ, विनय और विनयफल, तथा ग्रहणा व मूलगुण व अक्षरगुणकी आसेवना रूप
शिक्षा, सत्य व्यवहारमात्र, असत्य और मिथ्य व्यवसाय-नहीं बोलने-योग्य
वचन, महाव्रत आदि आचरण व पिण्डविद्युद्धि आदि करण, संयमयात्रा-
संयमनिर्वाहके लिये आहारका प्रमाण और उसके निर्वाहकी वृत्ति, ये सब
भाव कहे जाते हैं। वह आचार संक्षेपसे पाँच प्रकारका है, जैसे-१ ज्ञानाचार,
२ वर्णनाचार, ३ चरित्राचार, ४ तपाचार ५ वीर्याचार। आचाराङ्गमें सब अर्थ
प्रधानरूप वाचनार्थ परिमित हैं, उपक्रम निक्षेप आदि संक्षेप अनुयोगद्वारा हैं,
वेद (छन्दोविशेष भी) संख्यात हैं। तथा संख्यात श्लोक और संख्यात
निर्युक्तियाँ हैं, प्रतिपत्ति-ब्रह्म आदि पदार्थके कथनकी शैली, या प्रतिमा-
अभिप्राय विशेषरूप प्रतिपत्तियाँ संख्यात हैं, अङ्गी इतिसे यह आचार
प्रथम अक्षर है, जो इसके श्रुतस्वरूप और पचीस अध्ययन हैं, ८५ उद्देशान-
काल और ८५ समुद्देशानकाल हैं, पद्मानपवपरिमाणसे अठारह हजार इसके
पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्तमम-अर्थज्ञान होते हैं (एक १ पदमें अपरि-
मित अर्थ ज्ञान होनेसे) स्वपरभेदसे पर्याय भी अनन्त हैं। ब्रह्महीन्द्रिय
आदि परिमित हैं और स्थावर अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत तथा
प्रथम व विक्रमसासे होनेवाले घटसम्भाराम आदि-श्रुत ये सभी आचारा-
ङ्गमें निबन्ध स्वरूपसे कहे गये, तथा-निकाशित-निर्युक्ति-श्रुत व उपाहरणपूर्वक
अनेक तरहसे व्यवस्थापित ऐसे जिनप्रदर्शित भाव इसमें कहे जाते हैं, महा-
पम प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन आदि विरोधतासे समझाये जाते
हैं। भावसे सम्यक् आचाराङ्गके पहनेपर जो फल होता है उसे विज्ञाते हैं-वह
आचाराङ्गका पाठक वर्णरूप याने आचाररूप ही जाता है, जिस प्रकार
आचाराङ्गमें कहा है उसी प्रकार आचार आदिका ज्ञाता होता है, इसी प्रकार
विरोधता के साथ भी उनको जानता है, इस प्रकार आचाराङ्गमें चरणकरणकी
प्ररूपणा कही जाती है। यह आचाराङ्गका स्वरूप पूर्ण हुआ ॥ सू ४५ ॥

मूल—से किं सं सूयगडे ? सूयगडे णं लोप सूहज्जइ, अलोप सूहज्जइ,
लोपालोप सूहज्जइ, जीवा सूहज्जति, अजीवा सूहज्जति, जीवाऽ
जीवा सूहज्जति, ससमप सूहज्जइ, परसमप सूहज्जइ, ससमप-
परसमप सूहज्जइ, सूयगडे णं असीयस्स किरियावाइसयस्स,
चउरासीइप अकिरियावाइणं, सचट्ठीए अण्णाणियवाइणं,

तेसद्ग्राणं पासंडियसयाणं ब्रूहं किञ्चा ससमए ठाविज्जइ, सूयगडे णं
परित्ता वायणा, संखिज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा,
संखेज्जा सिलोगा, संखिज्जाओ निज्जुत्तीओ, (संखिज्जाओ
संगहणीओ) संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्टयाए विईए
अंगे, दो सुयक्खंधा, तेवीसं अज्झयणा, तित्तीसं उद्देसण-
काला, तित्तीसं समुद्देसणकाला, छत्तीसं पयसहस्साणि पयग्गेणं,
संखिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा,
अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता
भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति,
निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं
विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं सूयगडे २
॥ सू० ४६ ॥

छाया-अथ किं तत् सूत्रकृतम् ? सूत्रकृते लोकः सूच्यते, अलोकः
सूच्यते, लोकालोकौ सूच्येते, जीवाः सूच्यन्ते, अजीवाः सूच्यन्ते,
जीवाऽजीवाः सूच्यन्ते, स्वसमयः सूच्यते, परसमयः सूच्यते,
स्वसमयपरसमयाः सूच्यन्ते, सूत्रकृते-अशीत्यधिकस्य क्रिया-
वादिशतस्य, चतुरशीतिरक्रियावादिनां, सप्तषष्ठेरज्ञानिकवादिनां
(अज्ञानवादिनां), द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्ठ्य-
धिकानां पाषण्डिकशतानां ब्रूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यते,
सूत्रकृते परीता वाचनाः, संख्येयानि-अनुयोगद्वाराणि, संख्येयाः
वेढाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः (संख्येयाः सद्ब्र-
ह्मण्यः) संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम्, द्वौ
श्रुतस्कन्धौ, त्रयोविंशतिरध्ययनानि, त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः,
त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः, षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण,
संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परिमि-
(री)तास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता
जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते
१६

उपदर्शयन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरण-
करणप्ररूपणाऽऽस्थापयते, तदेतत्सूत्रकृतम् ॥ सू. ४६ ॥

टीका-प्र०-भगवन्! सूत्रकृताङ्गमें क्या वर्णन है! उ०-सूत्रकृतसे पञ्चास्ति
कायात्मक लोक सृष्टित किया जाता है (कहा जाता है) असोक कहा जाता है
और लोकासोक दोनों कहे जाते हैं जीव कहे जाते, अजीव कहे जाते और जीव
अजीव उभय कहे जाते हैं तथा सूत्रकृतसे स्वसमय-अनवर्षान कहा जाता, पर
समय-परमत कहा जाता और स्वसमय परसमय दोनों कहे जाते हैं, सूत्रकृतमें
एकसी अस्ती क्रियायावियंकि, चीरासी अक्रियायावियंको, सतसठ अज्ञानवाचि-
योके वसीस विनववावियंके इसप्रकार सब मिलकर तीनसो ब्रेसठ पातण्डियांकि
व्यूहको बनाकर स्वसमय-स्वमत स्थापन किया जाता है, सूत्रकृतमें परिमित
वाचनार्थ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार हैं, संख्यात वेदरूप छन्द्य और संख्येय
श्लोक हैं, संख्यात नियुक्ति व संख्यात प्रतिपत्तिर्णों हैं, अङ्की अपेक्षा यह सूत्रकृत
वृत्तप अङ्क है, जो श्रुतस्कन्ध और इसके तेवीस अभ्ययन हैं, तैतीस उद्देशनकास
तथा तैतीस ही समुद्देशनकास हैं, पद्यायसे इसके छसीस हजार पद्य हैं, संख्यात
अक्षर और अनन्त अर्धज्ञान हैं, अनन्त पर्यायें हैं, ब्रह्म परिमित हैं और स्थावर
अनन्त हैं, धर्मास्तिकाय भावि ग्रन्थरूपसे शास्त्रत और प्रयोग व विस्मसाकरण
रूपसे निबन्ध है तथा वेद आदिसे व्यपस्थापित जो अिनप्रणीत भाव हैं वे इसमें
कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण, वर्णन निवर्षान व उपवर्षान आदि विशेषताये
कहे जाते हैं, (अभ्ययनकृतिके लिये फल विज्ञाते हैं)-सूत्रकृताङ्कका यह पाठक
अभ्ययनलोक विषयमें तदेकतान होनेसे परम्भूत होता है, शास्त्रोक्त पद्यायोका
उसीप्रकार ज्ञाता व तदनुसारी विज्ञाता होता है, इसप्रकार सूत्रकृतमें
चरणकरणकी प्ररूपणा कही जाती है, यह हुआ सूत्रकृताङ्कनामक वृत्तप अङ्क
॥ सू० ४६ ॥

मूल—से किं न ठाणे ? ठाणे णं जीवा ठाविज्जति, अजीवा ठाविज्जति,
जीवाजीवा ठाविज्जति, ससमए ठाविज्जइ, परसमए ठाविज्जइ,
ससमयपरसमए ठाविज्जइ, लोए ठाविज्जइ, अलोए ठावि-
ज्जइ, लोपालोए ठाविज्जइ, ठाणे णं ठंका, कूडा, सेला, सिह-
रिणो, पम्भारा, कुडाई, गुहाओ, आगरा, व्हा, नईओ, आघ
विज्जति, ठाणे णं एगाइघाए एगुत्तरिघाए बुद्धीए वसट्टाणम
विवट्टियार्णं भावार्णं परूवणा आघविज्जइ, ठाणे णं परिचा
वापणा, संखेज्जा अणुओगद्वारा, संखेज्जा वेडा, संखेज्जा
सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ,

संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्टयाए तईए अंगे, एगे सुयवखंधे, दस अज्झयणा, एगवीसं उद्देशणकाला, एगवीसं समुद्देशणकाला, बावत्तरिपयसहस्सा पयगेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपन्नत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं ठाणे ३ ॥ सू ४७ ॥

छाया—अथ किं तत् स्थाने ? स्थानेन जीवाः स्थाप्यन्ते, अजीवाः स्थाप्यन्ते, जीवाऽजीवाः स्थाप्यन्ते, स्वसमयः स्थाप्यन्ते, परसमयः स्थाप्यन्ते, स्वसमयपरसमयौ स्थाप्यन्ते, लोकः स्थाप्यन्ते, अलोकः स्थाप्यन्ते, लोकाऽलोकौ स्थाप्यन्ते, स्थाने टङ्गानि, कूटानि, शैलाः, शिखरिणः, प्राग्भाराः, कुण्डानि, गुहाः, आकराः, द्रहाः, नद्य आख्यायन्ते, स्थाने एकादिकयैकोत्तरिकया वृद्ध्या दशस्थानकविबद्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायन्ते, स्थाने परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः (वृत्तयः), संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तदङ्गार्थतया तृतीयमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, दशाऽध्ययनानि, एकविंशतिरुद्देशनकालाः, एकविंशतिः समुद्देशनकालाः, द्वासप्ततिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एव विज्ञाता, एवं चरणकरणपररूपणाऽऽख्यायन्ते, तदेतत्स्थानम् (ने) ॥ सू ४७ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव ! स्थानाङ्गमें क्या विषय है ? उ०—स्थानाङ्गसे जीव स्थापन किये जाते, अजीव स्थापन किये जाते और जीवअजीव दोनों

स्थापन किये जाते हैं, स्वसमय स्थापन किया जाता है परसमय स्थापन किया जाता है तथा स्वसमय परसमय दोनों स्थापन किये जाते हैं लोकस्वरूप स्थापन किया जाता है, अलोक स्थापन किया जाता है और लोक अलोक दोनों स्थापन किये जाते हैं फिर स्थानाङ्गमें टट्ट-पर्वतके दूटे हुए तट, शिलर, दीछ-दिमवत् भावि पर्वत, शिलरवाले पर्वत, प्राग्मार-रूपरसे कुछ हुआ हुआ कूट अथवा पर्वतके रूपर हाथीके इम्मकी आकृतिके समान निकले हुए विमान, कुण्ड-यद्वाप्रपातकुण्ड आदि युवा-वही युवा आकर-छोड़ आविष्की ज्ञान, प्रह-हृह-जलाशय, और नदी ये सब कहे जाते हैं। स्थानाङ्गमें एकसे छेकर आगे एक एककी दृष्टिसे बड़ा स्थानतक बड़े हुए भावोंकी प्रकृष्या की जाती है, स्थानाङ्गमें परिमित वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेद-छन्दोविशेष संख्यात व न्तोकमी संख्यात हैं, निर्युक्ति संघहणी और प्रतिपत्तिबा संख्येय संख्येय हैं, व्यङ्गी दृष्टिसे वह स्थावाङ्ग तीसरा अङ्ग है, इसके एक भुतस्कन्ध और बड़ा अभ्ययन हैं, उद्देशन काळ तथा समुद्देशन काळ एक-वीस हैं, पद्मामले धारह हृमार पत्र हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त मम-अर्थ-ज्ञान हैं, अनन्त पर्यय हैं, परिमित ब्रह्म व अनन्त स्थावर हैं तथा धर्मस्ति-काथाविक शाश्वत व प्रयोग आदि कृत इसमें निवृत्त हैं, हेतु आदिसे इष्यस्थापित जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन प्रकृषण दर्शन निवर्शन, और उपवर्शनसे विशेषतापूर्वक कहे जाते हैं, इसके अभ्ययनसे वह पाठक तत्रूप हो जाता है ऐसे शास्त्रोक्त अर्थोका हाता तथा इसी प्रकार विज्ञाता बनता है, इस प्रकार यहाँ चरणकरणकी प्रकृषणा कही जाती है, यह हुआ स्थानाङ्ग तीसरा अङ्ग ॥ सूत्र ४७ ॥

मूल—से किं तं समवाय ? समवाय णं जीवा समासिज्जति, अजीवा समासिज्जति, जीवाजीवा समासिज्जति, ससमय समासिज्जह, परसमय समासिज्जह, ससमयपरसमय समासिज्जह, लोप समासिज्जह, अलोप समासिज्जह, लोपालोप समासिज्जह । समवाय णं पगाहपारणं एगत्तरियाणं ठाणसयविवट्टियारणं भावारणं परवणा आचविज्जह, पुवालसविहस्त य गणिपिङ्गस्त पल्लवगो समासिज्जह । समवायस्स णं परिचा वायणा, संसिज्जा अणुओगद्वारा, संसिज्जा वेडा, संसिज्जा सिलोगा, संसिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संसिज्जाओ संगहणीओ, संसिज्जाओ पडि-वत्तीओ, से णं अंगहृयाय चउत्थे अंगे, एगे सुयत्तवे, एगे अज्जयणे, एगे उद्देशणकाले, एगे समुद्देशणकाले, एगे चोपाले

सयसहस्से पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं समवाए ४ ॥ सू० ४८ ॥

छाया—अथ कः समवायः ? समवायेन जीवाः समाश्रीयन्ते, अजीवाः समाश्रीयन्ते, जीवाऽजीवाः समाश्रीयन्ते, स्वसमयः समाश्रीयते, परसमयः समाश्रीयते, स्वसमयपरसमयौ समाश्रीयेते, लोकः समाश्रीयते, अलोकः समाश्रीयते, लोकालोकौ समाश्रीयेते । समवाये नु एकादिकानामेकोत्तरिकाणां स्थानशतविवर्द्धितानां भावानां प्ररूपणाऽऽख्यायते, द्वादशविधस्य च गणिपिटकस्य पल्लवाग्रः समाश्रीयते । समवायस्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, स नु अङ्गार्थतया चतुर्थमङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, एकमध्ययनम्, एक उद्देशनकालः, एकः समुद्देशनकालः, एकं चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतसहस्रं पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एवं समवायः ॥ सू० ४८ ॥

टीका—प्र०—देव ! समवायाङ्गमें क्या विषय है ? उ०—समवायाङ्गमें यथावस्थितरूपसे जीव आश्रयण किये जाते, अजीव आश्रयण किये जाते और जीव-अजीव दोनों विपरीत प्ररूपणासे खींचकर सम्यक् प्ररूपणामें प्रक्षिप्त किये जाते हैं, स्वसमय, परसमय, और एकसाथ स्वसमय-परसमय दोनों यथावस्थित रूपसे आश्रयण किये जाते हैं, लोक, अलोक और लोकालोक

उभय सम्यक् प्रकृष्यासे कहे जाते हैं। समवाय-जीवादि पदार्थोंके निश्चय करनेवाले सूत्रसे एक आवि एकएककी आगे वृद्धिसे संकष्टों स्थानपर्यन्त बड़े हुए भावोंकी प्रकृषणा कही जाती है, और बारह प्रकारके यण्पिटक याने अङ्गसूत्रोंका संक्षिप्त परिचय आश्रयण किया जाता है, अर्थात् कहा जाता है। समवायाङ्गकी परिमित वाचनाएँ और संख्यात इसके अनुयोगद्वारा हैं, वेद-छन्दो-विशेष-श्लोक निर्युक्ति, सप्रहणी, और प्रतिपत्तियाँ ये सभी संख्यात हैं। अङ्गकी दृष्टिसे वह समवाय भीया अङ्ग है, इसका एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देशनकाष्ठ और एकही समुद्देशनकाष्ठ है, पदामसे एकछात्र भीआलीस हजार पद हैं, संख्यात अक्षर व अनन्त अर्थज्ञान हैं, अनन्त पर्यायें हैं, परिमित ब्रह्म अनन्त स्थावर और धर्मास्तिकायाविक दाम्बत तथा प्रयोग आवि कृतसे निबन्ध है, हेतु आदिसे निर्णयप्राप्त अिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्रकृषण, दर्शन निवर्तन और अपदर्शनसे विशेष स्पष्ट किये जाते हैं, समवायका बह पाठक तद्वात्म-रूप बन जाता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता य पैसेही विज्ञाता होता है, इस प्रकार समवायमें चरणकरणकी प्रकृषणा की जाती है, बह समवायाङ्ग भीया अङ्ग इमा ॥ सू० ४८ ॥

मूल— से किं तं विवाहे ? विवाहे णं जीवा विआहिज्जंति, अजीवा विआहिज्जंति, जीवाजीवा विआहिज्जंति, ससमए विआहिज्जति, परसमए विआहिज्जति, ससमयपरसमए विआहिज्जंति, लोए विआहिज्जति, अलोए विआहिज्जति, लोपालोए विआहिज्जंति। विवाहस्स ण परिता घायणा, संसिज्जा अणुओगद्वारा, संसिज्जा वेठा, संसिज्जा सिलोगा, संसिज्जाओ निज्जुचीओ, ससिज्जाओ सगहणीओ, संसिज्जाओ पड्विचीओ, से ण अंगद्वयाए पंचमे अंगे, पगे सुयक्खंथे, पगे साइरेगे अज्जयणसए, दस उद्वेसगस-हस्ताइं, दस समुद्वेसगसहस्ताइं, छचीस वागरणसहस्ताइं, दो लक्खता अट्टासिइं पयसहस्ताइ पयग्गेणं, संसिज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परिता तसा, अणंता थावरा, सासयकहनिबन्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परुविज्जंति, दसिज्जंति, निवसिज्जंति, उवदं सिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरण करणपरुवणा आघविज्जइ, से तं विवाहे ५ ॥ सू० ४९ ॥

छाया—अथ का सा व्याख्या ? (कः स विवाहः ?) व्याख्यायां जीवा व्याख्या-
यन्ते, अजीवा व्याख्यायन्ते, जीवाऽजीवा व्याख्यायन्ते, स्वसमयो
व्याख्यायते, परसमयो व्याख्यायते, स्वसमयपरसमयौ व्याख्या-
येते, लोको व्याख्यायते, अलोको व्याख्यायते, लोकालोकौ
व्याख्यायेते। व्याख्यायाः परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेदाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः
सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, सा अङ्गार्थतया पञ्चममङ्गम्,
एकः श्रुतस्कन्धः, एकं सातिरेकमध्ययनशतं, दशोद्देशकसहस्राणि,
दश समुद्देशकसहस्राणि, पट्टत्रिंशद् व्याकरणसहस्राणि, द्वे लक्षे
अष्टाशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता
गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रासाः, अनन्ताः स्थावराः,
शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते,
प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स
एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽ-
ख्यायते, सैषा व्याख्या ५ ॥ सू० ४९ ॥

टीका— गुरुदेव ! व्याख्याप्रज्ञप्तिमे क्या वर्णन है ? उ०—व्याख्याप्रज्ञप्तिमें
जीवोंके स्वरूपका व्याख्यान होता, है अजीवोंकी व्याख्या की जाती और जीव-
अजीव दोनोंकी व्याख्या की जाती है, स्वसमयकी व्याख्या की जाती, परस-
मय-परदर्शनकी व्याख्या की जाती, और दोनोंकी सम्बन्धपूर्वक व्याख्या की
जाती है, लोकका विवेचन किया जाता, अलोकका वर्णन किया जाता और
लोकालोक उभयका साथ विवेचन किया जाता है। व्याख्याप्रज्ञप्तिकी परिमित
वाचनाएँ और संख्यात अनुयोगद्वार हैं, वेद, श्लोक, निर्युक्ति, सङ्ग्रहणी और
प्रतिपत्तियाँ प्रत्येक संख्यात १ हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह व्याख्यासूत्र पाँचवाँ अङ्ग
है, एक श्रुतस्कन्ध और कुछ अधिक एकसौ इसके अध्ययन हैं, दशहजार
उद्देशक और दशहजारही समुद्देशक हैं, छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं, पदपरि-
माणसे दो लाख अठासीहजार पद है, संख्येय अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान हैं,
अनन्त पर्याय हैं, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं, धर्मास्तिकाय आदि
शाश्वत व प्रयोग आदि कृतसे यह निबद्ध है, हेतु आदिसे निर्णीत जिनप्रणीत
भाव इसमें कहे जाते हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शनसे
विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, व्याख्याङ्गका वह पाठक अध्ययनकी तल्लीनतासे
तन्मूढ होजाता है, तथा सूत्रवचनानुसार पदार्थोंका ज्ञाता व इसीप्रकार विज्ञाता

भवता है, इस्तरह व्याख्याइमें चरण करणकी प्रकृपणा की जाती है, यह व्याख्याप्रकृति पञ्चम अङ्क पूर्ण हुआ ॥ सू. ४९ ॥

मूल—से किं तं नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु णं नायाणं नगराणं, उज्जाणाणं, वेइयाणं, वणसंढाणं, समोसरणाणं, रायाणो, अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्ढिविसेसा, मोगपरिखाया, पब्बज्जाओ, परिआया, सुयपरिगहा, तपोषइणाणं, संलेहणाओ, मत्तपञ्चक्खाणाणं, पाओवगमणाणं, देवलोगगमणाणं, सुकुलपञ्चायाणंओ, पुणबोद्धिलामा, अंतकिरि याओ य आघविज्जंति, वस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एग मेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाणं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाणं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाणं, एवमेव सपुब्बावरेणं अन्नुट्ठाओ कहाणगकोडीओ हवंति त्ति समक्खायं । नायाधम्मकहाणं परिता धापणा, सस्सिज्जा अणुओगदारा, संस्सिज्जा वेडा, सस्सिज्जा सिलोगा, संस्सिज्जाओ निज्जुत्तीओ, संस्सिज्जाओ संगहणीओ, संस्सिज्जाओ पड्डिवत्तीओ, से णं अंगहयाए छट्ठे अंगे, दो सुयक्खंघा, एगूणवीसं अज्जयणा, एगूणवीसं उव्वेसणकाला, एगूणवीसं समुव्वेसणकाला, संस्सेज्जाणं पयसहस्साणं पयग्गेणं, संस्सेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परिता तसा, अणंता थावरा, सासयकड्ढनिबन्डूनि काइया जिणपण्णत्ता मावा आघविज्जंति, पण्णविज्जंति, परक्ख विज्जंति, वंसिज्जंति, निर्दंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरुवणा आघ विज्जइ, से त नायाधम्मकहाओ ६ ॥ सू. ५० ॥

छाया—अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथा ? ज्ञाताधर्मकथासु नु ज्ञातानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, धनरण्णानि, समवसरणानि, राजानाः, मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐतलौकिक-पारलौकिका ऋद्धिविदोषा, मोगपरित्यागाः, प्रव्रज्या, पर्यायाः,

श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, देवलोकगमनाति, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्बोधि-
धिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाऽऽख्यायन्ते, दश धर्मकथानां वर्गाः,
तत्र-एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकाशतानि,
एकैकस्यामाख्यायिकायां पञ्च पञ्चोपाख्यायिकाशतानि,
एकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्चाऽऽख्यायिकोपाख्यायिका-
शतानि, एवमेव सपूर्वापरेण अध्युष्टाः कथानककोटयो भव-
न्तीति समाख्यातम् । ज्ञाताधर्मकथानां परीता वाचनाः, संख्ये-
यान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया
निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता
अङ्गार्थतया षष्ठमङ्गम्, द्वौ श्रुतस्कन्धौ, एकोनविंशतिरध्ययनानि,
एकोनविंशतिरुद्देशनकालाः, एकोनविंशतिः समुद्देशनकालाः,
संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता
गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः,
शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते,
प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, दृश्यन्ते, निदृश्यन्ते, उपदृश्यन्ते, स
एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽ-
ख्यायते, ता एता ज्ञाताधर्मकथाः ॥ सू. ५० ॥

टीका—गुरुदेव । ज्ञाताधर्मकथा- उदाहरण और धर्मकथाप्रधान अङ्ग
कौनसा है ? उ०-ज्ञाताधर्मकथामे ज्ञातों-उदाहरणभूतव्यक्तियों-के नगर, उद्यान,
बगीचे, वनखण्ड, चैत्य-यक्षायतन, समवसरण, राजा, मातापिता व धर्माचार्य,
व धर्मकथा, इसलोक परलोकसम्बन्धी ऋद्धिविशेष भोगका परित्याग, प्रव्रज्या-
मुनिदीक्षा, पर्याय-दीक्षासमय, श्रुतग्रहण, तपउपधान-तपस्याविशेषकी आरा-
धना, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान-अन्तिम समयका अनशन या आहारत्यागकी
समयगणना, पादपोपगमन-दूटे हुए वृक्षकी तरह चैष्टारहित अनशन (संधारा)
करना, देवलोकगमन, सुकुलमें (मनुष्यजन्मकी अपेक्षा) प्रत्यागमन-पीछे
आना, पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति और अन्तक्रिया ये सब कहे जाते हैं ।

१ उदाहरणभूतानाम्-इत्यर्थः ।

२ चैत्य-व्यन्तरायतनम् समवा० वृ पृ १०८

प्रथम श्रुतस्कन्धके जो १९ अध्यायन हैं उनमें पहलेके द्वा केवल ज्ञान हैं, उनमें आसयायिकाओंका सम्मम नहीं है, शेष नव अध्यायन और दूसरे श्रुतस्कन्धमें आसयायिकाएँ आती हैं जो इसप्रकार हैं—

धर्मकथाओंके द्वा धर्म हैं उनमें प्रत्येक धर्मकथामें पाँच १ सौ आसयायिकाएँ हैं, एक १ आसयायिकामें पाँच १ सौ उपासयायिकाएँ हैं, एक १ उपासयायिकामें पाँच १ सौ आसयायिकोपासयायिकाएँ हैं, इस प्रकार पहले पीछेकी मिठाकर अष्टयुग-साष्टैतीज करोड कथाएँ होती हैं, ऐसा तीर्थहृर गणपरौने कहा है। ज्ञाताधर्मकथाकी परिमित वाचनाएँ हँ संख्यात अनुयोगद्वार तथा वेद श्लाक नियुक्ति संग्रहणी, और प्रतिपत्तियों भी संख्यात १ हैं। अज्ञकी अपेक्षा यह ज्ञाताधर्मकथा छट्टा अष्ट है जो श्रुतस्कन्ध और उच्चैस इसके अध्ययन हैं, उद्देशनकाल और समुद्देशनकाल भी १९-१९ हैं, पदपरिमाणसे संख्यात हजार पद ६, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्थज्ञान और अनन्त पर्वयें हैं, परिमित ब्रह्म व अनन्त स्थावर हैं, धर्मद्वय अर्थात् शाश्वत और प्रयोग आदि कृतसे निषद्य व हेतुआदिसे निर्णीत जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं प्रज्ञापन प्ररूपण, वर्धान, निर्वर्धान और उपवर्धानसे विशेष समझाये जाते हैं, तस्मीनतासे अध्ययन करमेयाखा वह पाठक तहूप बन जाता है, तथा धर्मोक पत्रायोंका ज्ञाता य इसी प्रकार विज्ञाता होता है, इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है। यह ज्ञाताधर्मकथानामक छट्टा अष्ट हुआ ॥ सू. १० ॥

मूल—से किं त उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं समणोवासपाणं नगराइ, उज्जाणाइ, वेइपाई, वणसंठाइ, समोसरणाई, रापाणो, अम्मापियरो, धम्मापरिपा, धम्मकहाओ, इहलोइयपरलोइया इड्डियिससा, मोगपरिष्ठाया, पथ्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोदहाणाइ, सीलम्बपगुणवेरमणपथक्खानणोसहोववासपटियज्जणया, पटिमाओ, उवसग्गा, संटेहणाओ, भत्तपक्कराणाई, पाओवगमणाइ, देयलोगगमणाई, मुकुलपयाआईओ, पुणशोहिलामा, अंतकिरियाओ व आद्यज्जिंति, उवासगदसाणं परिता यायणा, संरोज्जा अणुओगइरा, संरोज्जा येठा, संरोज्जा सिलोगा, संरोज्जाओ निज्जुत्तीओ, संरोज्जाओ संगहणीओ, संरोज्जाओ पटियत्तीओ, से णं अंगद्वयाण सत्तमे अंगे, एगे

१ वाचपण ६६ इतर ६६ है अथवा तात्पर्यात् ६६ ६६ किं जीव तो संख्या इतरही ६६ ६६ है ॥ १० ॥

सुयक्खंधे, दस अज्झयणा, दस उद्देसणकाला, दस समुद्देसण-
काला, संखेज्जा(इं) पयसहरूसा(इं) पयग्गेणं, संखेज्जा
अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता
थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-
विज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति,
उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं
चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं उवासगदसाओ ७
॥ सू० ५१ ॥

छाया—अथ कास्ता उपासकदशाः ? उपासकदशासु श्रमणोपासकानां नग-
राणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो
मातापितरो धर्माचार्या धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धि-
विशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः,
तपउपधानानि, शीलव्रतगुणाविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासप्रति-
पादनता, प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि,
पादपोपगमनानि, देवलोकगमनानि, सुकुलप्रत्यायातयः, पुन-
र्बोधिलाभाः, अन्तक्रियाश्चाख्यायन्ते, उपासकदशानां परीता
वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः (वृत्तयः),
संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सद्ग्रहणयः,
संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया सप्तममङ्गमेकः श्रुतस्कन्धः,
दशाऽध्ययनानि, दशोद्देशनकालाः, दश समुद्देशनकालाः, संख्ये-
यानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः,
अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनि-
बद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररू-
प्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता,
एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता
उपासकदशाः ॥ सू० ५१ ॥

टीका—प्र०—भगवन् ! वे उपासकके दशाऽध्ययन कौनसे हैं ? उ०—इस प्रकार हैं, उपासकदशामे श्रमणोपासकों—साधुओंके सेवक श्रावकों—के नगर,

उद्यान स्थन्तरायतन, घनस्रण्ड, समवसरण्य, राजा मातापिता, धर्माचार्य, धर्मकथा इसलोक व परलोकसम्बन्धी ऋत्विग्विदोष मोगोका परित्याग, प्रव्रज्या-भावकवीक्षा पर्यायि-भाषकपनकी अवस्थाका कासमान भुतप्रहण्य तपउपधान शीलव्रत अष्टव्रत, गुणव्रत, विरमण्य-पापसे निवृत्ति स्वरूप सामायिक भावि, व्रत तथा प्रत्याख्यान पोषण-उपवास इनको स्वीकार करना प्रतिमार्थोका आराधन, उपसर्ग, संछेत्तना भक्तप्रत्याख्यान, पावपोषयमम-भन्तिम समयम वृक्षाकी तरह निश्चेष्ट रहकर अमशन साधना वेकलोकयमन, और मनुष्यभक्तमें फिर सुकुलकी प्राप्ति आवि पुनः सम्यक्त्वधर्मकी प्राप्ति, और अन्त-क्रिया-संसारके व-चनसे मुक्त होना, ये सब विषय कहे जाते हैं, उपासकवशाकी परिमित वाचनार्थ और संस्येय अनुयोगद्वार हैं वेद, श्लोक, त्रिपुक्ति, संग्रहणी, और प्रतिपत्तियोंभी संख्यात परिभाषवाली हैं। अङ्गकी अपेक्षा यह उपासकवशा सातवाँ अङ्ग है, एक भुतस्कन्ध और इसके वशा अभ्यसम हैं, वशा उद्देशन काळ और समुद्देशन काळ भी वशा हैं। पवपरिमाणसे संख्यात हजार पद हैं, संख्यात अक्षर तथा अनन्त अर्धज्ञान व अनन्त ही पर्यायि हैं, परिमित ब्रह्म और अनन्त स्यावर हैं। धर्मव्रथ्य आवि दाम्बत व मयोय आवि कृतसे निवृत्त तथा हेतुपूर्वक ध्यवस्थापित वेसे जिनप्रणीत भाव इसमें कहे जाते हैं, महापण, प्रकपण धर्म, निवर्धन और उपवर्धनसे विदोषरूपमें समझाये जाते हैं। सूत्रका स्थिरचित्तसे अभ्यसन करनेवाला वह पाठक तद्रूप बन जाता है, तथा भावकके सूत्रोक्त कर्त्तव्योंका यथार्थ ज्ञाता व वैसे ही विज्ञाता हो जाता है। उपासकवशाइन इस प्रकार चरणकरणकी प्रकृपणा की जाती है। यह उपासकवशानामक सातवाँ अङ्ग पूज हुआ ॥ सू० ५१ ॥

मूल—से किं तं अंतगड्वसाओ ? अंतगड्वसासु णं अंतगड्वार्ण
नगराई, उज्जाणाई, वेइयाई, वणसंडाई, समोसरणाई, रायाणो,
अम्मापियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोइपरलोइपा
इक्विसेसा, मोगपरिखागा, पव्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरि
ग्गहा, तवोवहाणाई, संलेहणाओ, भत्तपव्वस्साणाइ, पाओ-
धगमणाइ, अतकिरियाओ भावविर्जति, अंतगड्वसासु णं
परित्ता वायणा, सखिज्जा अणुओगवारा, संसेज्जा वेत्ता, संसेज्जा
सिलोगा, संसेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संसेज्जाओ संगह-
णीओ, सरिज्जाओ पडिबत्तीओ, से णं अंगट्टयाप अट्टमे अगे,

एगे सुयक्खंधे, अट्ट वग्गा, अट्ट उद्देशणकाला, अट्ट समुद्देशणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिवद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पन्नविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से त्तं अंतगडदसाओ ८
॥ सू० ५२ ॥

छाया—अथ कास्ता अन्तकृद्दशाः ? अन्तकृद्दशासु—अन्तकृतां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वनखण्डानि, समवसरणानि, राजानो मातापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अन्तकृद्दशासु परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतयाऽष्टममङ्गम्, एकः श्रुतस्कन्धः, अष्टौ वर्गाः, अष्टाबुद्देशनकालाः, अष्टौ समुद्देशनकालाः, संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृतनिवद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, परूष्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते, ता एता अन्तकृद्दशाः ॥ सू० ५२ ॥

टीका—प्र०—गुरुजी ! अन्तकृत्के वे दश-अध्ययन कौनसे हैं ? उ०—अन्तकृत्के दश अध्ययनोंमें अन्तकृत्-कर्म या संसारका अन्त करनेवाले महापुरुषोंके नगर, उद्यान, चैत्य-व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्माचार्य व उनकी धर्मकथाएँ, इसलोक और परलोककी ऋद्धि-

विशेषता, भोगोंका परित्याग प्रवृत्त्या—सुनिरीक्षा पर्याय—वीक्षापर्याय, सुतग्रहण, तपउपधान-तपोधारण, संलक्षणता, भक्तप्रत्यासूयाम, पादपोषणमन-आजीवनका अनशनव्रत अन्तक्रिया-कैलेशी अवस्था अग्नि, ये सब भाव कहे जाते हैं । अन्तःकृद्दशाओंमें परिमित वाचनार्थों और संख्यात अनुयोजनद्वारा हैं, वेद श्लोक, त्रिपुरा, संग्रहणी, और प्रतिपत्तिर्था सब संख्यात २ हैं, अङ्गुली अपेक्षा वह अन्तःकृद्दशा आठवाँ अङ्ग है, एक सुतस्कन्ध और इसके आठ वर्ग हैं, उद्देशानकाल व सञ्च देशान काल भी आठ आठ हैं, पत्रपरिमाणसे संस्येय-द्वारों पत्र हैं, संख्यात अक्षर, अमन्त अर्थज्ञान तथा अनन्तपर्यायों हैं, परिमित प्रस व अनन्त स्थावर हैं, तथा धर्म ब्रह्म वाकि धाम्बत और प्रयोग अग्नि कृतसे यह अन्तःकृद्दशा निबन्ध है, हेतुप्रमाणपूर्वक निर्णय प्राप्त क्षिप्रप्रणीतभाव इसमें कहे जाते हैं, प्रहापन, प्ररूपण, वर्णन निवर्णन और उपवर्णनसे विशेष कहे जाते हैं, फल-वह अभ्ययन करनेवाला तवेकतानवित्तसे अभ्ययन करनेके कारण तदात्मरूप हो जाता है, सूत्रके कथनासुसार पर्यायोंका यथार्थ ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है । इस प्रकार अन्तःकृद्दशाओंमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह आठवाँ अन्तःकृद्दशा पूर्ण हुआ ॥ सू० ५२ ॥

सू०—से किं तं अणुत्तरोदवाइपवसाओ ? अणुत्तरोदवाइपवसासु णं अणुत्तरोदवाइपार्णं नगराई, उज्जाणाई, चेइयाई, वणसेइयाई, समोसरणाई, रायाणो, अम्मापिपरो, धम्मापरिया, धम्मकहाओ, इहलोइपपरलोइया इड्डिविसेसा, मोगपरिआगा, पध्वज्जाओ, परिआगा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाई, पडिमाओ, उवसग्गा, संलहणाओ, मत्तेपच्चक्खाणाई, पाओवगमणाई, अणुत्तरो ववाइपत्ते उववत्ती, मुकुलपञ्चायाईओ, पुणधोहिलामा, अत्किरियाओ आघविज्जंति, अणुत्तरोदवाइपवसासु णं परिता वायणा, संसेज्जा अणुओगवारा, संसेज्जा वेढा, संसेज्जा सिलोगा, संसेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संसेज्जाओ संग हणीओ, संसेज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगदुयाए नवमे अंगे, एगे सुयक्खंघे, तिद्धि वग्गा, तिद्धि उद्देशणकाला, तिद्धि समुद्देशणकाला, संसेज्जाई पयसहस्ताइ पयग्गेणं, संसेज्जा

१ २३ अथ ४ इतर पर परिप्लवभी इत्त आवासेनि मत्ता दे, एतरी व्यस्यमे इतरों ही पर होते हैं ।

२ मत्तरावरचत्पत्ताई ।

अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता
थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-
विज्जंति, पण्णविज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति,
उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं
चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ९
॥ सू० ५३ ॥

छाया—अथ कास्ता अनुत्तरौपपातिकदशाः ? अनुत्तरौपपातिकदशासु
अनुत्तरौपपातिकानां नगराणि, उद्यानानि, चैत्यानि, वन-
खण्डानि, समवसरणानि, राजानो, मातापितरः, धर्माचार्याः,
धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरि-
त्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः, तपउपधानानि,
प्रतिमाः, उपसर्गाः, संलेखनाः, भक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगम-
नानि, अनुत्तरौपपातिकत्वे-उपपत्तिः, सुकुलप्रत्यावृत्तयः, पुनर्वो-
धिलाभाः, अन्तक्रिया आख्यायन्ते, अनुत्तरौपपातिकदशासु
परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः,
संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः संङ्ग्रहण्यः,
संख्येयाः प्रतिपत्तयः, ता अङ्गार्थतया नवममङ्गम्, एकः श्रुत-
स्कन्धः, त्रयो वर्गाः, त्रय उद्देशनकालाः, त्रयः समुद्देशनकालाः,
संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता
गमाः, अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः,
शाश्वतकृतनिबद्धनिकाचिता जिनप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते,
प्रज्ञाप्यन्ते, परूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स
एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणपरूपणा-
ऽऽख्यायते, ता एता अनुत्तरौपपातिकदशाः ॥ सू० ५३ ॥

टीका—प्र०-देव । वह अनुत्तरौपपातिकदशा क्या है ? उ०-अनुत्तरौ-
पपातिकके दश अध्ययनोंमें अनुत्तरौपपातिक-अनुत्तर विमानमे उत्पन्न होने-
वाले जीवोंके नगर, उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा,

मातापिता धर्माचार्य और धर्मकथा इससोक व परसोकके ऋद्धिबिरोध, भोगोक्ता परित्याग, प्रव्रज्या-मुनिदीक्षा, पर्याय-उसका काष्ठमान श्रुतचक्र, तपउपधान, यतिमा-भूमिमहविशेष उपसर्ग, संक्षेपमा, मत्तपरित्याग, पाव पोपगमन अमुत्तर-सर्वोत्तम विजयावि-विमानोर्मि औपपातिक रूपसे उत्पन्न होमा मनुष्यमवर्मे फिर भ्रेष्ट कुलकी प्राप्ति आवि तथा सम्यक्त्व धर्मका पुनर्लाम और अन्तक्रिया ये सब विषय कहे जाते हैं, अमुत्तरीपपातिकवशामें परिमित वाचनाएँ और संक्षेप अमुयोयद्वार हैं वेद, श्लोक, त्रिपुक्ति संग्रहणी और प्रतिपत्तियों भी संक्षेप ९ हैं। अङ्की अपेक्षा यह नवमा अङ्क है, एक श्रुतस्क-ध और इसके तीन वर्गे हैं, तीन उद्देशानकाल और तीन ही समुद्देशानकाल ह् पक्परिमाण-संख्यासे परिमित हजारों पक् हैं, संख्यात अक्षर और अनन्त अर्थज्ञान व अनन्त पर्याय हैं, परिमित प्रस और अनन्त स्यावर हं तथा शाश्वत और कृतसे यह निबन्ध है वेद आविसे स्थिर किये हुए जिनमधीत भाव इसमें कहे जाते हैं तथा प्रज्ञापन प्ररूपण, दर्शन, निरुद्धान, और उपदर्शनसे उमका विशेष वर्णन किया जाता है, फल-यह पाठक एयम्भूत आत्मायाला वमता है, तथा सूत्रके कथनानुसार पर्यायोंका ज्ञाता और इसीतरह विज्ञाता भी होता है। इस प्रकार अनुत्तरीपपातिकवशामें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह अमुत्तरीपपातिकवशा नवमा अङ्क पूर्ण हुआ ॥ सू. ५३ ॥

मूल—से किं तं पण्हावागरणाई ? पण्हावागरणेसु णं अद्दुत्तरं पसिणसयं, अद्दुत्तरं अपसिणसयं, अद्दुत्तरं पसिणापसिणसयं, तं जहा—अंगुदुपसिणाइ, बाहुपसिणाई, अद्दामपसिणाई, अस्से विविचिचा विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सन्धिं दिव्वा संवाया आपविज्जंति, पण्हावागरणाणं परिता वायणा, संसेज्जा अणु-ओगद्वारा संसेज्जा वेदा, संसेज्जा सिलोगा, संसेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संसेज्जाओ संगहणीओ, संसेज्जाओ पठिवत्तीओ, से णं अंगुदुपाए वसमे अंगे, एगे सुपकरंथे, पणयालीस अज्जायणा, पणयालीसं उदेसणकाळा, पणयालीसं समुद्देसणकाळा, संसेज्जाई पयसहस्साई पयग्गेण, संसेज्जा अक्खरा, अणता गमा, अणता वज्जया, परिता तसा, अणता धायरा, सासयक

१ अङ्की ११ अङ्की भी है वेगे जगन्नाथकी व. के इच्छान श्री कान्ती दगा-सी.

२. ४६ अण ८ इतर वर है। एतो व्ज्जाके अनुतर पूर्व इतर ही वर होत है।

डनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति, पण्ण-
विज्जंति, परूविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति,
से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा
आघविज्जइ, से त्तं पण्हावागरणाइं १० ॥ सू० ५४ ॥

छाया—अथ कानि तानि प्रश्नव्याकरणानि ? प्रश्नव्याकरणेषु—अष्टोत्तरं
प्रश्नशतम्, अष्टोत्तरमप्रश्नशतम्, अष्टोत्तरं प्रश्नाऽप्रश्नशतम्,
तद्यथा-अद्भुष्टप्रश्नाः, बाहुप्रश्नाः, आदर्शप्रश्नाः, अन्येऽपि विचित्रा
विद्याविशया नागसुपर्णैः सार्धं दिव्याः संवादा आख्यायन्ते,
प्रश्नव्याकरणानां परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेदाः, संख्येयाः श्लोकाः, संख्येया निर्युक्तयः, संख्येयाः
सङ्ग्रहण्यः, संख्येयाः प्रतिपत्तयः, तान्यङ्गार्थतया दशममङ्गम्,
एकः श्रुतस्कन्धः, पञ्चचत्वारिंशदध्ययनानि, पञ्चचत्वा-
रिंशदुद्देशनकालाः, पञ्चचत्वारिंशत् समुद्देशनकालाः, संख्ये-
यानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि, अनन्ता गमाः,
अनन्ताः पर्यवाः, परीतास्त्रसाः, अनन्ताः स्थावराः, शाश्वतकृत-
निबद्धनिकाचिता जिणप्रज्ञप्ता भावा आख्यायन्ते, प्रज्ञा-
प्यन्ते, परूप्यन्ते, दर्श्यन्ते, निदर्श्यन्ते, उपदर्श्यन्ते, स एवमात्मा,
एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं चरणकरणप्ररूपणाऽऽख्यायते,
तान्येतानि प्रश्नव्याकरणानि ॥ सू. ५४ ॥

टीका—प्र०-देव ! वे प्रश्नोत्तरोंके दश अध्ययन कैसे हैं ? उ०-वे इस
प्रकार हैं—प्रश्नव्याकरणोंमें १०८ प्रश्न हैं अर्थात् पूछे हुए प्रश्नोंके जपमात्रसे
शुभाशुभ उत्तर कहनेवाली विद्या व मन्त्र १०८ हैं, १०८ अप्रश्न याने
विना पूछे शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ हैं, षष्ठाष्ट-पूछे या विनापूछे
शुभाशुभ कहनेवाली विद्याएँ भी १०८ हैं, जैसे कि-अद्भुष्ट प्रश्न-अद्भुष्ट विद्या,
बाहुप्रश्न, आदर्शप्रश्न अन्य भी अनेक विचित्रविद्यातिशय तथा नागकुमार
सुवर्णकुमार आदिके साथ दिव्यसंवाद इसमें कहे जाते हैं, प्रश्नव्याकरणकी
परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, तथा वेद-श्लोक, निर्युक्ति,
संग्रहणी और प्रतिपत्तियाँ ये सब संख्यात १ हैं, अङ्गकी अपेक्षा वह दशमा
अङ्ग है, एक श्रुतस्कन्ध और पैंतालीस इसके अध्ययन हैं, पैंतालीस उद्देशन-

काल और पैतासीसही सङ्ग्रहेशनकाल हैं । पशुपामिण्यसे संख्येय-इजारों पर हैं, संख्येय अक्षर, अनन्त गम अर्थज्ञान और अनन्तपर्यायें हैं, परिमित ब्रह्म व अनन्त स्यावर हैं तथा शाश्वत और कृत इसमें निबद्ध है, हेतु आधिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव यहाँ कहे जाते हैं । प्रज्ञापन, प्रकृपण दर्शन, निदर्शन और उपदर्शनसे विशेष कहे जाते हैं, फल-स्थिरचेता वह पाठक प्यम्भूत आत्मावाला हो जाता है तथा शास्त्रोक्त विद्यार्थोंका पर्याय ज्ञाता व बिज्ञाता बनता है, इसप्रकार प्रभध्याकरणमें चरणकरणकी प्रकृपणा की जाती है, वह प्रभध्याकरण इदानीं अष्ट वर्षनसे पूर्ण हुआ ॥ सू० ५४ ॥

सू०—से किं तं विवागसुय ? विवागसुय णं सुकडुडुङ्गळणं कम्माणं फलविवागे आधविज्जइ, तत्थ णं वस बुहविवागा, वस सुहविवागा, से किं तं बुहविवागा ? बुहविवागेसु णं बुहविवागणं नगराई, उज्जाणाई, वणसंढाई, वेइयाई, समोसरणाई, रायाणो, अम्मापियरो, घम्मायरिया, धम्मकथाओ, इहलोइयपरलोइया इड्डिविसेसा, निरयगमणाई, संसारमवपवंचा, दुहपरपराओ, दुक्कुलपचायाइओ, दुक्कुलबोहियत्त आधविज्जइ, से तं बुहविवागा ।

छाया—अथ किं तद् विपाकभुतम् ? विपाकभुते सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाक आख्यायते, तद्य वृश दुःखविपाकाः, वृश सुखविपाकाः, अथ के ते दुःखविपाकाः ? दुःखविपाकेषु दुःखविपाकानां नगराणि, उद्यानानि, वनलण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्मापितरः, धर्मोचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, निरयगमनानि, संसारमवपञ्चाः, दुःखपरम्पराः, दुष्कूलप्रत्यावृत्तयः, दुर्लभबोधिकत्वमाख्यायते, त एते दुःखविपाका ।

टीका—५०—सुखेव । यद् विपाकभुतं क्या है । ३०—विपाकभुतमें सुकृत-दुष्कृत जाने भ्रममह्यम-कर्मोंके फल-विपाक कहे जाते हैं, उसमें वृश दुःखविपाक और वृश सुखविपाक हैं । ५०—वेव । वे दुःखविपाक क्या हैं । ३०—

१ १२ अथ १९ इतर वर प्रथम व्याख्याके अनुसार होते हैं ।

२ दुःखविपाकप्रतिनिधिः ।

दुःखविपाकोंमें दुःखरूप विपाकोंको भोगनेवाले उन पुरुषोंके नगर, उद्यान, वन-खण्ड, व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता, धर्मगुरु और उनकी धर्मकथा, इसलोक व परलोकके ऋद्धिविशेष, दुरुपयोगसे निरयगमन, ससारमें जन्मका विस्तार, दुःखकी परम्परा, हीनकुलमें फिर उत्पात्ति, और सम्यक्त्व-धर्मकी दुर्लभता आदि विषय कहे जाते हैं, यह दुःखविपाकका वर्णन हुआ ।

मूल—से किं तं सुहविवागा ? सुहविवागेषु णं सुहविवागाणं नगराईं, उज्जाणाईं, वणसंडाईं, चेइयाइ, समोसरणाईं, रायाणो, अम्मा-पियरो, धम्मायरिया, धम्मकहाओ, इहलोईयपरलोइया इद्धिवि-सेसा, भोगपरिच्चागा, पव्वज्जाओ, परियागा, सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाईं, संलेहणाओ, भत्तपच्चक्खाणाईं, पाओवगमणाईं, देवलोगगमणाईं, सुहपरंपराओ, सुकुलपच्चायाईंओ, पुणबोहि-लाभा, अंतकिरियाओ आघविज्जंति । विवागसुयस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखिज्जाओ संगहणीओ, संखिज्जाओ पडिवत्तीओ, से णं अंगट्टयाए इक्कारसमे अंगे, दो सुयक्खंधा, वीसं अज्झयणा, वीसं उद्देसणकाला, वीसं समुद्देसणकाला, संखिज्जाईं पयसहस्साईं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघ-विज्जंति, पण्णविज्जंति, पखुविज्जंति, दंसिज्जंति, निदंसिज्जंति, उवदंसिज्जंति, से एवं आया, एवं नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जइ, से तं विवागसुयं ११
॥ सू ५५ ॥

छाया—अथ के ते सुखविपाकाः ? सुखविपाकेषु नु सुखविपाकानां नग-राणि, उद्यानानि, वनखण्डानि, चैत्यानि, समवसरणानि, राजानः, अम्बापितरः, धर्माचार्याः, धर्मकथाः, ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषाः, भोगपरित्यागाः, प्रव्रज्याः, पर्यायाः, श्रुतपरिग्रहाः,

तपउपधानानि, संलेशनाः, मक्तप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि, वेवलीकगमनानि, सुखपरम्परा, सुकुलप्रत्यावृत्तय, पुनर्बोधि
 छामा, अन्तक्रिया आम्भ्यायन्ते । विपाकभुतस्य परीता
 वाचना, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि, संख्येया वेदाः, संख्येयाः
 श्लोका, संख्येया निर्युक्तय, संख्येया सङ्गृह्य, संख्येया
 प्रतिपत्तय, तदङ्गनर्थतया पकादशमङ्गम्, द्वौ भुतस्कधौ,
 विंशतिरभ्ययनानि, विंशतिरुद्देशनकाला, विंशति समुद्देशन
 काला, संख्येयानि पदसहस्राणि पद्मिण, संख्येयान्यक्षराणि,
 अनन्ता गमा, अनन्ता पर्यवा, परीताञ्जसा, अनन्ता
 स्थावर, शाश्वतकृतनिबन्धनिकाचिता जिनमज्ञाता भावा
 आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, वृश्यन्ते, निवृश्यन्ते, उप-
 वृश्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एवं बरज-
 करणप्ररूपणाऽऽख्यायते, त एते विपाकभुतम् ॥ सू ५५ ॥

टीका—प्र०-गुरुनेत्र ! ये सुखविपाकके प्रतिपादक अभ्ययन कौनसे हैं ।

उ०-सुखविपाकमें सुखविपाक-फस-को भोगनेवासे पुरुषोंके नगर उद्यान,
 वनसङ्घ, चैत्य-भ्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, मातापिता धर्मगुरु,
 धर्मकथा, इसलोक व परलोकसम्बन्धी शक्तिविशेष भोमोंका परिचय,
 प्रज्ञा-धुनिदीक्षा शिक्षापर्याय भुतसंग्रह, तपउपधान संलेशना आहारत्याग
 पादपोपगमन-संधारा वेवलीकगमन, सुखकी परम्परा और फिर मनुष्य
 मन्त्रमें उलम कुरुमें उत्पन्न होना आदि फिर सम्यक्त्वसाम तथा अम्ल-
 क्रिया कही जाती है । विपाकभुतकी परिमित वाचनार्थ हैं, संख्येय
 अनुयोगद्वार और वेद-श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी व प्रतिपत्तियों भी संख्यात हैं
 हैं, बहूकी शक्तिसे यह ११ बौ अङ्ग हैं, बौ भुतस्कध और वीस इसके आम्भ-
 यन हैं, बीस उद्देशनकाल तथा बीसही समुद्देशनकाल भी हैं, पदपरिमाणसे
 संख्येय हजार पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थज्ञान और पर्याय भी अनन्त
 हैं, परिमित ब्रह्म व अनन्त स्थावर हैं तथा शाश्वत और कृतसे सम्बन्ध है, वेद
 आदिसे सिद्ध जिनप्रणीत भाव इसमें कथन किये जाते हैं, प्रज्ञापन प्ररूपण
 धर्मान निदर्शन, और उपदर्शनसे विशेष स्पष्ट कहे जाते हैं, फस दिलाते हैं-
 संवेकतामतासे पाठ करनेपर बह पाठक तद्रूप हो जाता है तथा सूत्रोंक
 विवर्योका पदार्थ ज्ञाता व इच्छीतरण विहाता बनता है, इस प्रकार विपाक-

श्रुतमें चरणकरणकी प्ररूपणा की जाती है, यह ११ वाँ अङ्ग विपाकश्रुत पूर्ण हुआ ॥ सू० ५५ ॥

मूल—से किं तं दिट्टिवाए ? दिट्टिवाए णं सव्वभावपरूवणा आघविज्जइ, से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मे १, सुत्ताइं २, पुव्वगए ३, अणुओगे ४, चूलिया ५ । से किं तं परिकम्मे ? परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—सिद्धसेणिया—परिकम्मे १, मणुस्ससेणिया—परिकम्मे २, पुट्टसेणिया—परिकम्मे ३, ओगाढसेणिया परिकम्मे ४, उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ५, विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ६, चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ७ ।

छाया—अथ कः स दृष्टिवादः ? दृष्टिवादे सर्वभावप्ररूपणाऽऽख्यायते, स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म १, सूत्राणि २, पूर्वगतम् ३, अनुयोगः ४, चूलिका ५ । अथ किं तत् परिकर्म ? परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म २, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ५, विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ६, च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७ ।

टीका—प्र०—देव ! वह दृष्टिवाद—सभी नयदृष्टियोंको कहनेवाला श्रुत किस प्रकार है ? उ०—दृष्टिवादसे सब भावोंकी प्ररूपणा की जाती है, वह दृष्टिवाद संक्षेपसे पांच प्रकारका है, जैसे—परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वगत ३ अनुयोग ४ और चूलिका ५ । प्र०—वह परिकर्म क्या है ? उ०—परिकर्म सात प्रकारका कहा गया है, जैसे—सिद्धश्रेणिकापरिकर्म १, मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म २, पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ३, अवगाढश्रेणिकापरिकर्म ४, उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म ५, विप्रजहत्श्रेणिकापरिकर्म ६, च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म ७ ।

मूल—से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ? सिद्धसेणियापरिकम्मे चउद्धसविहे पण्णत्ते, तं जहा—माउगापयाइं १, एगट्ठियपयाइं २, अट्टपयाइं ३, पाढोआगासपयाइं ४, केउभूयं ५, रासिबद्धं ६, एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केउभूयं १० पडिग्गहो ११,

संसारपड्विग्गहो १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्त १४, से तं सिद्ध
सेणियापरिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धभेणिकापरिकर्म ? सिद्धभेणिकापरिकर्म
चतुर्विंशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकप
दानि २, अर्थपदानि ३, पुष्यगाकाशपदानि ४, केतुमूर्त ५,
राशिबन्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुमूर्त १०,
प्रतिग्रह* ११, संसारप्रतिग्रह* १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्त १४,
तदेतत् सिद्धभेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

टीका—प्र०—यह सिद्धभेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—सिद्धभेणिका
परिकर्म बीस प्रकारका कहा गया है, जैसे—मातृकापद १ एकार्थकपद २
अर्थपद ३ पुष्यगाकाशपद ४ केतुमूर्त ५ राशिबन्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८
त्रिगुण ९ केतुमूर्त १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नन्दावर्त्त १३ सिद्धा
वर्त्त १४, इसप्रकार यह सिद्धभेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे
चत्तुर्विंशविधे पण्णसे, तं जहा—मातृगापयाइं १, एगट्टियपयाइं २,
अट्टुपयाइ ३, पादोभंगासपयाइ ४, केउमूर्य ५, रासिबन्धं ६,
एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुण ९, केउमूर्य १०, पड्विग्गहो ११,
संसारपड्विग्गहो १२, नन्दावर्त्त १३, मणुस्सावर्त्त १४, से तं
मणुस्सासेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

छाया—अथ किं तन्मनुष्यभेणिकापरिकर्म ? मनुष्यभेणिकापरिकर्म
चतुर्विंशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थक
पदानि २, अर्थपदानि ३, पुष्यगाकाशपदानि ४, केतुमूर्त ५,
राशिबन्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुण ८, त्रिगुणं ९, केतु-
मूर्त १०, प्रतिग्रह ११, संसारप्रतिग्रह* १२, नन्दावर्त्त १३,
मनुष्यापत्त १४, तदेतत् मनुष्यभेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

१ सिद्धवर्त्त । २ नन्दावर्त्त । ३ मणुस्सावर्त्त इति सञ्ज्ञायते ।

४ मणुस्सावर्त्त—सञ्ज्ञायते ।

टीप—प्र०—देव ! वह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—मनुष्यश्रेणिका-परिकर्म १४ प्रकारका कहा गया है, जैसे—मातृकापद १ एकार्यकपद २ अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुभूत ५ राशिवद्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८ त्रिगुण ९ केतुभूत १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नंदावर्त्त १३ और मनुष्यावर्त्त १४, यह मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म हुआ ॥ २ ॥

मूल—से किं तं पुट्टसेणियापरिकम्मे ? पुट्टसेणियापरिकम्मे इक्कारस-विहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासि-बद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० पुट्टावत्तं ११, से त्तं पुट्टसेणि-यापरिकम्मे ॥ ३ ॥

छाया—अथ किं तत्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ? पृष्टश्रेणिकापरिकर्म—एकाद-शविधं प्रज्ञसम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुभूतं २ राशि-बद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुभूतं ७ प्रति-ग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० पृष्टावर्त्तं ११, तदेतत्पृष्ट-श्रेणिकापरिकर्म ॥ ३ ॥

टीका—प्र०—गुरुदेव ! वह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—पृष्टश्रेणिका-परिकर्म एकादश प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २ राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० पृष्टावर्त्त ११, यह पृष्टश्रेणिकापरिकर्म पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

मूल—से किं तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ? ओगाढसेणियापरिकम्मे इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २ रासिबद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडि-ग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावत्तं १० ओगाढावत्तं ११, से त्तं ओगाढसेणियापरिकम्मे ॥ ४ ॥

१ हस्तलिखिते, आगमोदयसमितिसुद्विते चूर्णियुते रायधनपतिसिंहमुद्विते च ' पाढो आमास-पयाइं ' इति पाठ, पूज्य ऋषिसम्पादिते तु ' पाढो आपयाइं ' ' पाढो आगासपयाइं ' ईदृश पाठद्वय दृश्यते, तथापि अर्थस्य विशेषसङ्गततया एवविधाम्ब्यासेन मुनिप्रवरोपाध्यायानामभिमतत्वेन च ' पाढो आगासपयाइं ' अयमेव पाठो मूले मया न्यधायि—सम्पादक ।

संसारपडिग्गहो १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्त १४, से तं सिद्ध
सेणियापरिकम्मे ॥ १ ॥

छाया—अथ किं तत् सिद्धभेणिकापरिकर्म ? सिद्धभेणिकापरिकर्म
चतुर्विंशतिभिर् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थकप
दानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुमूर्त्त ५,
राशिबन्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतुमूर्त्त १०,
प्रतिग्रह* ११, संसारप्रतिग्रह* १२, नन्दावर्त्त १३, सिद्धावर्त्त १४,
तदेतत् सिद्धभेणिकापरिकर्म ॥ १ ॥

टीका—म०—यह सिद्धभेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—सिद्धभेणिका
परिकर्म चौदह प्रकारका कहा गया है, जैसे—मातृकापद १ एकार्थकपद २
अर्थपद ३ पृथगाकाशपद ४ केतुमूर्त्त ५ राशिबन्ध ६ एकगुण ७ द्विगुण ८
त्रिगुण ९ केतुमूर्त्त १० प्रतिग्रह ११ संसारप्रतिग्रह १२ नन्दावर्त्त १३ सिद्धा
वर्त्त १४, इसप्रकार यह सिद्धभेणिकापरिकर्म हुआ ॥ १ ॥

मूल—से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ? मणुस्ससेणियापरिकम्मे
षट्त्रिंशतिभिरे पण्णत्ते, तं जहा—मातृगापयाई १, एगट्टियपयाई २,
अट्टेपयाई ३, पाठोअंगासपयाई ४, केत्तमूर्य ५, रासिबन्धं ६,
एगगुणं ७, दुगुणं ८, तिगुणं ९, केत्तमूर्य १०, पडिग्गहो ११,
संसारपडिग्गहो १२, नन्दावर्त्त १३, मणुस्सावर्त्त १४, से तं
मणुस्ससेणियापरिकम्मे ॥ २ ॥

छाया—अथ किं तन्मनुष्यभेणिकापरिकर्म ? मनुष्यभेणिकापरिकर्म
चतुर्विंशतिभिर् प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—मातृकापदानि १, एकार्थक
पदानि २, अर्थपदानि ३, पृथगाकाशपदानि ४, केतुमूर्त्त ५,
राशिबन्धम् ६, एकगुणं ७, द्विगुणं ८, त्रिगुणं ९, केतु-
मूर्त्त १०, प्रतिग्रह* ११, संसारप्रतिग्रह* १२, नन्दावर्त्त १३,
मनुष्यावर्त्त १४, तदेतन्मनुष्यभेणिकापरिकर्म ॥ २ ॥

१ सिद्धवर्त्त । २ पारोक्ष्यवर्त्त । ३ भागात्त्य इति सम्भावने ।

४ मनुष्यवर्त्त—सम्भावने ।

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० विष्पजहणा-
वर्त्तं ११, से त्तं विष्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया—अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकाप-
रिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवन्दम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६
केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्र-
जहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका—प्र०—भगवन् ! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—विप्रजह-
च्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवन्द ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नंदावर्त्त १० विप्रजहदावर्त्त ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म
हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे
इकारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २
रासिवन्दं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडि-
ग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० चुयाचुयवर्त्तं ११, से
त्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरा-
सियाइं, से त्तं परिकम्मे ।

छाया—अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणि-
कापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवन्दम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतु-
भूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽ
च्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्-
चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका—प्र०—वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—च्युता-
च्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवन्द ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० च्युताऽच्युतावर्त्त ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरि-
कर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-

छाया—अथ किं तदवगाढभेणिकापरिकर्म ? अवगाढभेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञतम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि ? केतुमूर्त २ राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुमूर्तं ७ प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहं ९ नन्दावर्त्तं १० अबगाढावर्त्तं ११, तदेतदवगाढभेणिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०—वेव । यह अवगाढभेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—अवगाढभेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है जैसे—पृथगाकाशपद ? केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० और अवगाढावर्त्त ११ यह अवगाढभेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्म्म ? उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्म्म इकारसविहे पण्णत्ते, त अहा-पाठोआगासपयाई ? केउ मूर्यं २ राशिबन्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्यं ७ पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नन्दावर्त्तं १० उवसंपञ्चणावर्त्तं ११, से चं उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्म्म ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म ? उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञतम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि ? केतुमूर्त २ राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुमूर्तं ७ प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहं ९ नन्दावर्त्तम् १० उपसम्पादनावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०—गुक्केव । यह उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे कि पृथगाकाशपद ? केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७ प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११ यह उपसम्पादनभेणिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्पजहणसेणियापरिकर्म्म ? विप्पजहणसेणियापरिकर्म्म इकारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाठोआगासपयाई ? केउ मूर्यं २ राशिबन्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्यं ७

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० विप्पजहणा-
वर्त्तं ११, से तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया—अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकाप-
रिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६
केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्र-
जहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका—प्र०—भगवन् ! विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—विप्रजह-
च्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तं ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म
हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे
इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २
रासिवद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडि-
ग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० चुयाचुयवर्त्तं ११, से
तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरा-
सियाइं, से तं परिकम्मे ।

छाया—अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणि-
कापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतु-
भूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽ
च्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्-
चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका—प्र०—वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—च्युता-
च्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरि-
कर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-
१९

छाया—अथ किं तदवगाढभेजिकापरिकर्म ? अवगाढभेजिकापरिकर्म
एकादशविधं प्रकृतम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि ? केतुमूर्त २
राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुमूर्त ७
प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त १० अवगाढावर्त ११,
तदेतद्वगाढभेजिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—प्र०—वेव ! यह अवगाढभेजिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—
अवगाढभेजिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशप
१ केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७
प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त १० और अवगाढावर्त ११ यह अवगाढभेजिका
परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्मे ? उवसंपञ्चणसेणियाप-
रिकर्मे इकारसविहे पण्णत्ते, तं अहा-पाढोआगासपयाई ? केउ
मूर्यं २ राशिबन्धं ३ पगगुणं ४ बुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्यं ७
पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नन्दावर्त १० उवसंपञ्चणा
वर्त ११, से र्त्त उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्मे ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ? उपसम्पादनभेजिका
परिकर्म—एकादशविधं प्रकृतम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि ?
केतुमूर्त २ राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतु-
मूर्त ७ प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहं ९ नन्दावर्तम् १० उपसम्पाद-
नावर्त ११, तदेतद् उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—प्र०—गुरुवेव ! यह उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म क्या है ? उ०—
उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे कि पृथगाकाश-
प १ केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७
प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त १० उपसम्पादनावर्त ११ यह उप-
सम्पादनभेजिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्यजहणसेणियापरिकर्मे ? विप्यजहणसेणियापरि-
कर्मे इकारसविहे पण्णत्ते, तं अहा-पाढोआगासपयाई ? केउ-
मूर्यं २ राशिबन्धं ३ पगगुणं ४ बुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्यं ७

पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० विप्पजहणा-
वर्त्तं ११, से तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे ॥ ६ ॥

छाया—अथ किं तद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ? विप्रजहच्छ्रेणिकाप-
रिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६
केतुभूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० विप्र-
जहदावर्त्तम् ११, तदेतद् विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म ॥ ६ ॥

टीका—प्र०—भगवन् । विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म क्या है ? उ०—विप्रजह-
च्छ्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्तं १० विप्रजहदावर्त्तं ११, यह विप्रजहच्छ्रेणिकापरिकर्म
हुआ ॥ ६ ॥

मूल—से किं तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ? चुयाचुयसेणियापरिकम्मे
इक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाढोआगासपयाइं १ केउभूयं २
रासिवद्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउभूयं ७ पडि-
ग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नंदावर्त्तं १० चुयाचुयवर्त्तं ११, से
तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे ॥ ७ ॥ छ चउक्कनइयाइं सत्त तेरा-
सियाइं, से तं परिकम्मे ।

छाया—अथ किं तच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ? च्युताऽच्युतश्रेणि-
कापरिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुभूतं २ राशिवद्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतु-
भूतं ७ प्रतिग्रहः ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽ
च्युतावर्त्तं ११, तदेतच्च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म ॥ ७ ॥ षट्-
चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि, तदेतत्परिकर्म ।

टीका—प्र०—वह च्युताऽच्युतश्रेणिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ०—च्युता-
च्युतश्रेणिकापरिकर्म ११ प्रकारका है, जैसे—पृथगाकाशपद १ केतुभूत २
राशिवद्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुभूत ७ प्रतिग्रह ८ संसार-
प्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्तं १० च्युताऽच्युतावर्त्तं ११, यह च्युताच्युतश्रेणिकापरि-
कर्म हुआ ॥ ७ ॥ [सिद्धश्रेणिका आदि ७ परिकर्मोंमें पहलेके छ परिकर्म स्वस-
१९

छाया—अथ किं तदवगाहभेजिकापरिकर्म ? अवगाहभेजिकापरिकर्म
एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १ केतुमूर्तं २
राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतुमूर्तं ७
प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहः ९ नन्दावर्त्तं १० अवगाहावर्त्तं ११,
तदेतदवगाहभेजिकापरिकर्म ॥ ४ ॥

टीका—श्रु-वेव । यह अवगाहभेजिकापरिकर्म किस प्रकार है ? उ-
अवगाहभेजिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे-पृथगाकाशप
द १ केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७
प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० और अवगाहावर्त्त ११ यह अवगाहभेजिका
परिकर्म हुआ ॥ ४ ॥

मूल—से किं तं उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्म्म ? उवसंपञ्चणसेणियाप-
रिकर्म्म इकारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाडोआगासपपाई ? केउ-
मूर्पं २ राशिबन्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्पं ७
पडिग्गहो ८ संसारपडिग्गहो ९ नदावर्त्तं १० उवसंपञ्चणा-
वर्त्तं ११, से तं उवसंपञ्चणसेणियापरिकर्म्म ॥ ५ ॥

छाया—अथ किं तद् उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ? उपसम्पादनभेजिका-
परिकर्म—एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—पृथगाकाशपदानि १
केतुमूर्तं २ राशिबन्धम् ३ एकगुणं ४ द्विगुणं ५ त्रिगुणं ६ केतु
मूर्तं ७ प्रतिग्रहं ८ संसारप्रतिग्रहं ९ नन्दावर्त्तम् १० उपसम्पाद
नावर्त्तं ११, तदेतद् उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ॥ ५ ॥

टीका—श्रु-गुरुवेव । यह उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म क्या है ? उ-
उपसम्पादनभेजिकापरिकर्म ११ प्रकारका कहा गया है, जैसे कि पृथगाकाश-
पद १ केतुमूर्त २ राशिबन्ध ३ एकगुण ४ द्विगुण ५ त्रिगुण ६ केतुमूर्त ७
प्रतिग्रह ८ संसारप्रतिग्रह ९ नन्दावर्त्त १० उपसम्पादनावर्त्त ११ यह उप-
सम्पादनभेजिकापरिकर्म हुआ ॥ ५ ॥

मूल—से किं तं विप्यजहणसेणियापरिकर्म्म ? विप्यजहणसेणियापरि-
कर्म्म इकारसविहे पण्णत्ते, तं जहा-पाडोआगासपपाई ? केउ
मूर्पं २ राशिबन्धं ३ एगगुणं ४ दुगुणं ५ तिगुणं ६ केउमूर्पं ७

सम्भिन्नं ९ यथावादं १० स्वस्तिकावर्तम् ११ नन्दावर्तं १२ बहुलं १३ पृष्ठापृष्ठं १४ व्यावर्तम् १५ एवम्भूतं १६ द्विकावर्तं १७ वर्तमानपदं १८ समभिरूढं १९ सर्वतोभद्रं २० प्रशिष्यं २१ दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि—आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या, एवमेव सपूर्वापरिणाऽप्राशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्याख्यातम्, तान्येतानि सूत्राणि ।

टीका—प्र०—भगवन् ! वह सूत्ररूप दृष्टिवाद क्या है ? उ०—सूत्रं वाईस प्रकारके कहे गये हैं । जैसे—१ ऋजुसूत्र, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभङ्गिक, ४ विजयचरित, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ आसाण, ८ संयूथ, ९ सम्भिन्न, १० यथावाद, ११ स्वस्तिकावर्त, १२ नन्दावर्त, १३ बहुल, १४ पृष्ठापृष्ठ, १५ व्यावर्त, १६ एवम्भूत, १७ द्विकावर्त, १८ वर्तमानपद, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ प्रशिष्य, और २२ दुष्प्रतिग्रह, इसप्रकार ये वाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे याने स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर छिन्नच्छेदनयवाले हैं, ये ही वाईस सूत्र आजीविक-गोशालकके मतकी सूत्रपरिपाटीसे अच्छिन्नच्छेदनयवाले होते हैं, इसप्रकार ये ही वाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटीसे विवक्षित होनेपर तीन नयवाले होते हैं, तथा येही वाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर चतुष्क नयवाले हैं, इसतरह पूर्वापर याने पहले पीछेके सब मिलाकर अट्टासी सूत्र होते हैं, ऐसा तीर्थङ्करों व गणधरोंने कहा है, यह हुआ सूत्ररूप दृष्टिवादका भेद ।

मूल—से किं तं पुव्वगए ? पुव्वगए चउद्दसविहे पणत्ते, तं जहा—उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरियं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४ नागप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८ पच्चक्खाणप्पवायं ९ विज्जाणुप्पवायं १० अबंझं ११ पाणाऊ १२ किरियाविसाल १३ लोकाविट्ठुसारं १४ । उप्पायपुव्वस्स णं

१ सभी पूर्वके सूत्रार्थकी ये सूचना करनेवाले हैं, तथा सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय और सभी नय तथा सर्व भद्र-विकल्पोंके प्रदर्शक हैं अतः सूत्र कहे जाते हैं, सूत्र या अर्थ रूपसे ये अभी व्यवच्छिन्न हैं ।

मयकी वक्तव्यताके प्रकाशक हैं, गोशास्त्रके मतानुसार श्रुताश्रुतश्रौतिका-परिकर्मसहित सात परिकर्म कहे जाते हैं] अब हममें नयका विचार करते हैं-छ परिकर्म चार नयवाले हैं, अर्थात् निगम आदि सात नयोंमेंसे सामान्यभाषी नयमें संग्रह नयमें और विशेषभाषी व्यवहारनयमें अन्तर्हित होते हैं ऐसे ही शब्द सममिक्रम और पद्यमृत इन तीनोंका भी पर्यायाधिक रूप एक नयमें समावेश कर लेते हैं, तब संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और पर्यायाधिक [शब्दादि तीन] इस प्रकार चार नय हो जाते हैं । इनसे पहलेके छ परिकर्म स्वसमयकी वक्तव्यतासे विधारे जाते हैं, सात परिकर्म त्रैराशिक-गोशास्त्रके मतका अनुमनन करनेवाले हैं, यह परिकर्म पूर्ण हो चुका ।

[गणितके परिकर्मकी तरह सूत्र पूर्व व अनुयोग आदिके ग्रहणकी योग्यता करानेमें समर्थ इस विषयको भूतपरिकर्म कहते हैं । सिद्धश्रेणिका आदि ७ सूत्रमेव और ८१ इसके उत्तर मेव हैं । यह सब सूत्र व अर्थरूपसे विच्छिन्न हैं, अतएव इसका स्वरूप यथागत सम्प्रदायके अनुसार समझना चाहिये]

मूल—से किं तं सुप्ताई ? सुप्ताई बावीसं पद्मसाई, तं जहा—उज्जुसुप ? परिणयापरिणयं २ बहुमर्गियं ३ विजयचरियं ४ अर्णतरं ५ परं परं ६ आसाणं ७ संजुहं ८ संमिण्णं ९ आहव्वायं १० सोव-त्थियावत्तं ११ नंदावत्तं १२ बहूलं १३ पुट्टापुट्टं १४ वियावित्तं १५ एवंमूर्यं १६ बुयावत्तं १७ वत्तमाणपर्यं १८ सममिक्रमं १९ सव्वओमह्व २० पस्सासं २१ पुप्पडिग्गहं २२, इधेइयाई बावीसं सुप्ताई छिन्नच्छेपनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीप, इधे इयाई बावीसं सुप्ताई अच्छिन्नच्छेपनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीप, इधेइयाई बावीसं सुप्ताई तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीप, इधेइयाई बावीसं सुप्ताई चउक्कनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीप, एवामेव सपुब्बावरेणं अट्टासीइ सुप्ताई मर्वतिचि म(अ)क्खार्यं, से तं सुप्ताई ।

छाया—अथ कानि तानि सूत्राणि ? सूत्राणि द्वाविंशति प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुसूत्रम् ? परिणताऽपरिणतं २ बहुमर्गिकं ३ विजयचरितम् ४ अनन्तरं ५ परम्परम् ६ आसानम् ७ संयूर्यं ८

१—श्रौतश्रेणिक-श्रेणिक मतानुसारी त्रैराशिक कहे जाते हैं, सभी कर्मको वे तीन श्रौत श्रेणिकोंकी तरह व्यवस्था करते हैं, वास्तव त्रैराशिक हैं ।

सम्भिन्नं ९ यथावादं १० स्वस्तिकावर्तम् ११ नन्दावर्तं १२
 बहुलं १३ पृष्ठापृष्ठं १४ व्यावर्तम् १५ एवम्भूतं १६ द्विकावर्तं १७
 वर्तमानपदं १८ समभिरूढं १९ सर्वतोभद्रं २० प्रशिष्यं २१
 दुष्प्रतिग्रहम् २२, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयि-
 कानि स्वसमयपरिपाट्या, इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि
 अच्छिन्नच्छेदनयिकानि—आजीविकसूत्रपरिपाट्या, इत्येतानि
 द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या,
 इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्र-
 परिपाट्या, एवमेव सपूर्वापरेणाऽप्याशीतिः सूत्राणि भवन्तीत्या-
 ख्यातम्, तान्येतानि सूत्राणि ।

टीका—प्र०—भगवन् । वह सूत्ररूप दृष्टिवाद क्या है ? उ०—सूत्रं बाईस प्रका-
 रके कहे गये हैं । जैसे—१ ऋजुसूत्र, २ परिणतापरिणत, ३ बहुभङ्गिक, ४ विजय-
 चरित, ५ अनन्तर, ६ परम्पर, ७ आसाण, ८ संयूथ, ९ सम्भिन्न, १० यथावाद,
 ११ स्वस्तिकावर्त, १२ नन्दावर्त, १३ बहुल, १४ पृष्ठापृष्ठ, १५ व्यावर्त, १६ एवम्भूत,
 १७ द्विकावर्त, १८ वर्तमानपद, १९ समभिरूढ, २० सर्वतोभद्र, २१ प्रशिष्य,
 और २२ दुष्प्रतिग्रह, इसप्रकार ये बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे याने
 स्वदर्शनकी वक्तव्यताका आश्रयण कर छिन्नच्छेदनयवाले हैं, ये ही बाईस सूत्र
 आजीविक—गोशालकके मतकी सूत्रपरिपाटीसे अच्छिन्नच्छेदनयवाले होते
 हैं, इसप्रकार ये ही बाईस सूत्र त्रैराशिकसूत्र परिपाटीसे विवक्षित होनेपर तीन
 नयवाले होते हैं, तथा येही बाईस सूत्र स्वसमयसूत्रकी परिपाटीसे स्वदर्शनकी
 वक्तव्यताका आश्रयण कर चतुष्क नयवाले हैं, इसतरह पूर्वापर याने पहले
 पीछेके सब मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं, ऐसा तीर्थङ्करों व गणधरोंने कहा है,
 यह हुआ सूत्ररूप दृष्टिवादका भेद ।

मूल—से किं तं पुव्वगए ? पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा-
 उप्पायपुव्वं १ अग्गाणीयं २ वीरियं ३ अत्थिनत्थिप्पवायं ४
 नागप्पवायं ५ सच्चप्पवायं ६ आयप्पवायं ७ कम्मप्पवायं ८
 पच्चक्खाणप्पवायं ९ विज्जाणुप्पवायं १० अबंझं ११ पाणाऊ १२
 किरियाविसाल १३ लोकविंदुसारं १४ । उप्पायपुव्वस्स णं

१ सभी पूर्वके सूत्रार्थकी ये सूचना करनेवाले हैं, तथा सर्व द्रव्य, सर्व पर्याय और सभी नय
 तथा सर्व भङ्ग—विकल्पोंके प्रदर्शक हैं अतः सूत्र कहे जाते हैं, सूत्र या अर्थ रूपसे ये अभी
 व्यवच्छिन्न हैं ।

मयकी वक्तव्यताके प्रकाशक हैं, मोशासकके मतानुसार श्रुताश्रुतभेदिका-परिकर्मसहित सात परिकर्म कहे जाते हैं] अब इनमें मयका विचार करते हैं—छ परिकर्म चार नयवाले हैं, अर्थात् नैमम आदि सात नयोंमेंसे सामान्यभाही नैमममें संप्रह नयमें और विशेषभाही व्यवहारनयमें अन्तर्हित होते हैं ऐसे ही शब्द समभिकह और एवम्भूत इन तीनोंका भी पर्यावाधिक रूप एक नयमें समावेश कर लेते हैं, तब संप्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, और पर्वा पार्थिक [शब्दादि तीन] इस प्रकार चार नय हो जाते हैं । इनसे पहलेके छ परिकर्म स्वसमयकी वक्तव्यतासे विचार जाते हैं, सात परिकर्म त्रैराशिक-मोशासकके मतका अनुमन करनेवाले हैं, यह परिकर्म पूर्ण हो चुका ।

[मथितके परिकर्मकी तरह सूत्र पूर्व व अनुयोग आदिके ग्रहणकी योग्यता करानेमें समर्थ इस द्विपयको श्रुतपरिकर्म कहते हैं । सिद्धभेदिका आदि ७ सूत्रभेद और ८१ इसके उत्तर भेद हैं । यह सब सूत्र व अर्थरूपसे विशिष्ट हैं, अतएव इसका स्वरूप यथामत सम्प्रदायके अनुसार समझना चाहिये]

मूल—से किं तं सुत्ताई ? सुत्ताई धावीसं पञ्चत्ताई, तं जहा—उज्जुसूर्यं ? परिणयापरिणयं २ बहुभगिर्यं ३ विजयचरिचं ४ अणतरं ५ पर परं ६ आसाणं ७ संजुहं ८ संमिण्णं ९ आहव्वायं १० सोव थियावत्तं ११ न्वावत्तं १२ बहुल १३ पुट्टापुट्टं १४ वियावित्तं १५ एवंभूर्यं १६ वुयावत्तं १७ वत्तमाणपर्यं १८ समभिकत्तं १९ सव्वओभह २० पस्सासं २१ वुप्पडिग्गहं २२, इधेइयाई बावीसं सुत्ताई छिन्नच्छेयनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, इधेइयाई धावीसं सुत्ताई अछिन्नच्छेयनइयाणि आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इधेइयाई धावीसं सुत्ताई तिगणइयाणि तेरासियसुत्तपरिवाडीए, इधेइयाई धावीसं सुत्ताई चउक्कनइयाणि ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुब्बावरेणं अट्टासीइ सुत्ताई भवतिचि म(अ)क्खायं, से तं सुत्ताई ।

छाया—अथ कानि तानि सूत्राणि ? सूत्राणि द्वाविंशति प्रज्ञतानि, तद्यथा—ऋजुसूत्रम् १ परिणताऽपरिणतं २ बहुभङ्गिकं ३ विजयचरितम् ४ अनन्तरं ५ परम्परम् ६ आसानम् ७ संयुधं ८

१—आजीविक—दीर्घाच्छ मत्तानुवानी भिन्निक कहे जाते हैं, सभी अणतमें से जीव अर्थात् जीनाजीवकी तरह प्रकृतक करते हैं वस्तु त्रैराशिक है ।

वीर्यपूर्वस्याऽष्टौ वस्तवः, अष्टौ चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य—अष्टादश वस्तवो दश चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ४, ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ५, सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वौ वस्तु प्रज्ञप्तौ ६, आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ७, कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः ८, प्रत्याख्यानपूर्वस्य विंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः ९, विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १०, अबन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ११, प्राणायुःपूर्वस्य त्रयोदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १२, क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः १३, लोकबिन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः १४ ।

गाथा—८९

दश १ चतुर्दश २ अष्टाऽष्टादशैव ३-४ द्वादश ५ द्वौ ६ च वस्तवः ।
षोडश ७ त्रिंशद् ८ विंशतिः ९ पञ्चदश १० अनुप्रवादे ॥ १ ॥

९०—द्वादशैकादशे, द्वादशे त्रयोदशा एव वस्तवः ।

त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ द्वादश २ अष्टौ ३ चैव दश ४ चैव चूलवस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका नास्ति ॥ ३ ॥

तदेत्पूर्वगतम् ।

टीका—प्र०—देव! वह पूर्वगत दृष्टिवाद कौनसा है? पूर्वगत दृष्टिवाद १४ प्रकारका कहा गया है—

जैसे कि—१ उत्पादपूर्व [इसमें सब द्रव्य और पर्यायोंके उत्पाद—उत्पत्तिकी प्ररूपणा की गई है—इसके कोटि पदपरिमाण हैं] २ अग्रायणीयपूर्व [सभी द्रव्य, पर्याय और जीवाविशेषके अग्र-परिमाणका इसमें वर्णन किया गया है, इसके ९६ लाख पद हैं] ३ वीर्यप्रवादपूर्व [सकर्म या निष्कर्म जीव तथा अजीवके वीर्य-शक्तिविशेषका इसमें वर्णन है तथा ७० लाख इसके पद हैं] ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व [यह वस्तुओंके अस्तित्व नास्तित्वका वर्णन करने-वाला है, धर्मास्ति आदि द्रव्यका अस्तित्व और खपुष्प वगैरहका नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्यमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व प्रतिपादन किया गया है, इसके ६० लाख पद हैं] ५ ज्ञानप्रवादपूर्व [मति आदि पांच

१ तीर्थप्रवृत्तिके समयमें तीर्थद्वार गणधरोंकी सकल श्रुतार्थमें अवगाहन करनेलायक समझकर पहले पूर्वगत सूत्र कहते हैं, इसलिये ये पूर्व कहलाते हैं, वे पूर्व चौदह हैं ।

दसवत्सू चत्वारि शूलियावत्सू पण्णत्ता, अग्गाणीयपुब्बस्स णं
 चोद्वसवत्सू दुवालस शूलियावत्सू पण्णत्ता, वीरियपुब्बस्स णं अट्ठ
 वत्सू अट्ठ शूलियावत्सू पण्णत्ता, अत्थिनात्थिप्पवायपुब्बस्स णं
 अट्ठारसवत्सू दस शूलियावत्सू पण्णत्ता, नाणप्पवायपुब्बस्स णं
 धारस वत्सू पण्णत्ता, सत्थप्पवायपुब्बस्स णं दोण्णि वत्सू पण्णत्ता,
 आयप्पवायपुब्बस्स णं सोलस वत्सू पण्णत्ता, कम्मप्पवायपुब्बस्स
 णं तीसं वत्सू पण्णत्ता, पञ्चक्खलाणपुब्बस्स णं वीसं वत्सू
 पण्णत्ता, विज्जाणुप्पवायपुब्बस्स णं पन्नरसवत्सू पण्णत्ता,
 अर्धज्ञापुब्बस्स णं धारसवत्सू पण्णत्ता, पाणाऊप्पुब्बस्स णं तेरस-
 वत्सू पण्णत्ता, किरियाविसालपुब्बस्स णं तीसं वत्सू पण्णत्ता,
 लोकविन्दुसारपुब्बस्स णं पणवीस वत्सू पण्णत्ता—

गाहा—८९

दस १ चोद्वस २ अट्ठ ३ अट्ठारसेव ४ धारस ५ दुवे ६ य वत्सूणि ।
 सोलस ७ तीसा ८ वीसा ९, पन्नरस १० अणुप्पवायमि ॥ १ ॥

९०—धारस इकारसमे, धारसमे तेरसेव वत्सूणि ।

तीसा पुण तेरसमे, चोद्वसमे पण्णवीसाओ ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ दुवालस २, अट्ठ ३ चैव दस ४ चैव चुल्लवत्सूणि ।

आइहाण चठण्हं, सेसाणं शूलिया नत्थि ॥ ३ ॥

से ते पुब्बगए ।

छाया—अथ किं तत् पूर्वगतम् ? पूर्वगत चतुर्विंशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—
 उत्पावपूर्वम् १ अद्यायणीय २ वीर्यम् (प्रवादम्) ३ अस्तिनास्ति
 प्रवाद ४ ज्ञानप्रवाद ५ सत्यप्रवादम् ६ आरम्भप्रवाद ७ कर्म
 प्रवाद ८ मत्याख्यानप्रवादं ९ विद्यानुप्रवादम् १० अचान्भ्ये ११
 प्राणायुः १२ क्रियाविशाल १३ लोकविन्दुसारम् १४ । उत्पाव
 पूर्वस्य द्वादशवस्तवः, चत्वारश्चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः १, अद्या-
 यणीयपूर्वस्य चतुर्विंश वस्तवो द्वादशचूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः २,

वीर्यपूर्वस्याऽष्टौ वस्तवः, अष्टौ चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ३, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वस्य—अष्टादश वस्तवो दश चूलिकावस्तवः प्रज्ञप्ताः ४, ज्ञानप्रवादपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ५, सत्यप्रवादपूर्वस्य द्वौ वस्तु प्रज्ञप्तौ ६, आत्मप्रवादपूर्वस्य षोडश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ७, कर्मप्रवादपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः ८, प्रत्याख्यानपूर्वस्य विंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः ९, विद्यानुप्रवादपूर्वस्य पञ्चदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १०, अबन्ध्यपूर्वस्य द्वादश वस्तवः प्रज्ञप्ताः ११, प्राणायुःपूर्वस्य त्रयोदश वस्तवः प्रज्ञप्ताः १२, क्रियाविशालपूर्वस्य त्रिंशद् वस्तवः प्रज्ञप्ताः १३, लोकविन्दुसारपूर्वस्य पञ्चविंशतिर्वस्तवः प्रज्ञप्ताः १४ ।

गाथा—८९

दश १ चतुर्दश २ अष्टाऽष्टादशैव ३-४ द्वादश ५ द्वौ ६ च वस्तवः ।
षोडश ७ त्रिंशद् ८ विंशतिः ९ पञ्चदश १० अनुप्रवादे ॥ १ ॥

९०—द्वादशैकादशे, द्वादशे त्रयोदशा एव वस्तवः ।

त्रिंशत्पुनस्त्रयोदशे चतुर्दशे पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

९१—चत्वारि १ द्वादश २ अष्टौ ३ चैव दश ४ चैव चूलवस्तूनि ।
आदिमानां चतुर्णां, शेषाणां चूलिका नास्ति ॥ ३ ॥

तदेत्पूर्वगतम् ।

टीका—प्र०—देव ! वह पूर्वगत दृष्टिवाद कौनसा है ? पूर्वगत दृष्टिवाद १४ प्रकारका कहा गया है—

जैसे कि—१ उत्पादपूर्व [इसमें सब द्रव्य और पर्यायोंके उत्पाद-उत्पत्तिकी प्ररूपणा की गई है—इसके कोटि पदपरिमाण हैं] २ अग्रायणीयपूर्व [सभी द्रव्य, पर्याय और जीवविशेषके अग्र-परिमाणका इसमें वर्णन किया गया है, इसके ९६ लाख पद हैं] ३ वीर्यप्रवादपूर्व [सकर्म या निष्कर्म जीव तथा अजीवके वीर्य-शक्तिविशेषका इसमें वर्णन है तथा ७० लाख इसके पद हैं] ४ अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व [यह वस्तुओंके अस्तित्व नास्तित्वका वर्णन करनेवाला है, धर्मास्ति आदि द्रव्यका अस्तित्व और स्वपुण्य वगैरहका नास्तित्व तथा प्रत्येक द्रव्यमें स्वरूपसे अस्तित्व और पररूपसे नास्तित्व प्रतिपादन किया गया है, इसके ६० लाख पद हैं] ५ ज्ञानप्रवादपूर्व [माति आदि पाँच

१ तीर्थप्रवृत्तिके समयमें तीर्थद्वार गणधरोंको सकल श्रुतार्थमें अवगाहन करनेलायक समझकर पहले पूर्वगत सूत्र कहते हैं, इसलिये ये पूर्व कहलाते हैं, वे पूर्व चौदह हैं ।

ज्ञानोका इसमें सविस्तर वर्णन किया गया है, पक्षपरिमाण इसके एककम एक कोटिका है] १ सत्यप्रवाहपूर्व [यह सत्यवचन या संयमका विस्तारसे और प्रतिपक्षके साथ वर्णन करनेवाला है इसके एक कोटि और छ पक्ष हैं] ७ आत्मप्रवाहपूर्व [अनेक प्रकारके मयमतसे यह पूर्व आत्मोका वर्णन करने वाला है, इसमें २६ कोटि पक्ष हैं] ८ कर्मप्रवाहपूर्व [आठ प्रकारके कर्मोका प्रकृति स्थिति आवि बंधके भेदप्रमत्तसे विस्तारपूर्वक इसमें वर्णन किया गया है, इसके एक कोटि अस्ती हजार पक्ष हैं] ९ प्रत्याख्यान-प्रवाहपूर्व यह प्रत्याख्यानका भेदप्रमत्तके साथ विस्तारपूर्वक वर्णन करता है इसके ८४ साल पक्ष हैं] १० विद्यानुप्रवाहपूर्व [इसमें अनेक प्रकारकी अतिहाससम्पन्न विद्यार्थ और साधनकी अनुकूलतासे उनकी सिद्धि कही गई है, इसके एक कोटि १० साल पक्ष हैं] ११ अबन्ध्यपूर्व [यहाँ ज्ञान तप आवि समी सत्कर्म छामफलवासे कीर प्रमाद आवि कार्य अछामफलवासे कहे गये हैं, इसलिये यह अबन्ध्य है, इसके २६ कोटि पक्ष हैं] १२ प्राणायामपूर्व [आयु और अन्य प्राणोका वर्णन करनेसे सम्भेद यह पूर्वमी उपचारसे प्राणायामपूर्व कहाता है, ७४ कोटि ५६ साल इसके पक्ष होते हैं] १३ क्रियाविशालपूर्व [यह कायिकी आवि क्रियाओके वर्णनसे विशाल है, इसका पक्षपरिमाण नव कोटिका है] १४ लोकविन्दुसारपूर्व [सर्वोत्तर सन्धिपात आवि लक्ष्यो-विशेषशक्तियोंके कारण संसारमें वा सुतलोकमें यह अक्षरके विन्दुकी तरह सर्वोत्तम सार है अतः लोग इसको विन्दु सार कहते हैं, १९४ कोटि इसके पक्ष हैं] उत्पादपूर्वके दशवस्तु और चार ब्रह्मिकोमस्तु-प्रकरण कहे गये हैं, अमायणीयपूर्वके चौदह वस्तु तथा बारह ब्रह्मिकावस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, १ वीर्यपूर्वके आठ वस्तु और आठ ब्रह्मिकावस्तु कहे गये हैं, ४ अस्तित्वास्तिसंप्रवाहपूर्वके अठारह वस्तु व दश ब्रह्मिकावस्तु कहे गये हैं, ५ ज्ञानप्रवाहपूर्वके बारह वस्तु कहे गये हैं, ६ सत्यप्रवाहपूर्वके दो वस्तु हैं, ७ आत्मप्रवाहपूर्वके सोलह वस्तु हैं, ८ कर्मप्रवाहपूर्वके तीस वस्तु हैं, ९ प्रत्याख्यानप्रवाहपूर्वके तीस वस्तु हैं, १० विद्यानुप्रवाहपूर्वके पन्ध्रह वस्तु-ग्रन्थविशेष कहे गये हैं, ११ अबन्ध्यपूर्वके बारह वस्तु कहे गये हैं, १२ प्राणायामपूर्वके तेरह वस्तु हैं १३ क्रियाविशालपूर्वके तीस वस्तु कहे गये हैं, १४ लोकविन्दुसारपूर्वके पचीस वस्तु कहे गये हैं । प्रत्येक वस्तु व पुस्तकवस्तुका गायाले वर्णन कियाते हैं- प्रथममें दश वस्तु, द्वितीयमें चौदह, तीसरेमें आठ और चौथेमें अठारह, पाँचवेंमें बारह और छठेमें दो वस्तु हैं, सातवेंमें सोलह, आठवेंमें तीस नवमेंमें बीस तथा दसवें अष्टमसाह-विद्यानुप्रवाहमें पन्ध्रह हैं, एनारहवेंमें बारह वस्तु, बारहवेंमें तेरह वस्तु हैं, फिर तेरहवें पूर्वमें तीस और चौदहवें पूर्वमें पचीस वस्तु हैं । ४ ८९-९० ४ आदिक चार पूर्वोको क्रमसे चार, बारह, आठ, और दश पुस्तु-(छहक)वस्तुएँ हैं, दोष पूर्वोके ब्रह्मिका-छहक वस्तु नहीं हैं ॥ ११ ॥ यह पूर्वमतका वर्णन हुआ ।

मूल—से किं तं अणुओगे ? अणुओगे द्विविहे पण्णत्ते, तं जहा—मूल-
पढमाणुओगे, गंडियाणुओगे य । से किं तं मूलपढमाणुओगे ?
मूलपढमाणुओगे णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोग-
गमणाइं, आउं, चवणाइं, जम्मणाणि, अभिसेया, रायवरसिरीओ,
पव्वज्जाओ, तवा य उग्गा, केवलनाणुप्पयाओ, तित्थपवत्त-
णाणि य, सीसा, गणा, गणहरा, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स
चउव्विहस्स जं च परिमाणं, जिणमणपज्जवओहिनाणी,
सम्मत्तसुयनाणिणो य, वाई, अणुत्तरगई य, उत्तरवेउव्विणो य
मुणिणो, जत्तिया सिद्धा, सिद्धिपहो जह देसिओ, जच्चिरं च
कालं, पाओवगया जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं (अणसणाए)
छेइत्ता अंतंगडे, मुणिवरुत्तमे तिमिरओघविप्पमुक्के, मुक्खसुह-
मणुत्तरं च पत्ते, एवमन्ने य एवमाइभावा मूलपढमाणुओगे
कहिया, से तं मूलपढमाणुओगे ।

छाया—अथ कः सोऽनुयोगः ? अनुयोगो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूल-
प्रथमानुयोगः, गण्डिकानुयोगश्च, अथ कः स मूलप्रथमानुयोगः ?
मूलप्रथमानुयोगेऽर्हतां भगवतां पूर्वभवाः, देवलोकगमनानि,
आयुः (यूपि), च्यवनानि, जन्मानि, अभिषेकाः, राज्यवरश्रि-
यः, प्रव्रज्याः, तपांसि चोग्राणि, केवलज्ञानोत्पादः, तीर्थप्रवर्तनानि
च, शिष्याः, गणाः, गणधराः, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, सङ्घस्य चतु-
र्विधस्य यच्च परिमाणम्, जिमनः पर्यवावधिज्ञानिनः, समस्त-
श्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः, अनुत्तरगतयश्च, उत्तरवैकुर्विणश्च
मुनयः, यावन्तः सिद्धाः, सिद्धिपथो यथादेशितो यावच्चिरञ्च
कालं पदापोपगताः, ये यत्र यावन्ति भक्तानि छित्त्वाऽन्तकृतो
मुनिवरोत्तमास्तिमिरौघविप्रमुक्ता मोक्षसुखमनुत्तरञ्च प्राप्ताः,
एवमन्ये चैवमादिभावा मूलप्रथमाऽनुयोगे कथिताः, स एष
मूलप्रथमानुयोगः ।

टीका—प्र०—भगवन् ! वह अन्तुयोग किस प्रकार है ? उ०—अन्तुयोग दो प्रकारका कहा है, जैसे—१ मूलप्रथमानुयोग, और २ गण्डिकानुयोग । प्र०—वह मूल-प्रथमानुयोग क्या है ? उ०—मूलप्रथमानुयोगमें भरिहन्त भगवन्तके सम्यक्त्व प्राप्तिके भवसे छेकर पूर्वभव वैवलोकमें गमन वहाँकी आयुमर्यादा । देवभव वा उमसे पूर्वमर्षीमें अथवा तीर्थकररूपसे जन्म, अभियेक—देवभावहित जन्माभियेक तथा राज्याभियेक प्रधान राज्यस्यमी, प्रव्रज्या—साधुवीक्षा और उग्र-घोर तप, केवलज्ञानकी उत्पत्ति, और तीर्थकी प्रवृत्ति करना, उनके शिष्य, मज्ज-गच्छ मज्जघट, आर्याये व प्रवृत्तियों, और चतुर्विध संघका जो परिमाण है, मिन-केवसी, मन्मथ्यवह्यामी, भवधिह्यामी, और सम्यक् (समस्त) श्रुतज्ञानी चावी-चावस्यस्यसम्पन्न मुनि और अनुत्तरगतिवाले फिर उत्तर वैकिय करनेवाले मुनि, जितने सिद्ध हुए, तथा जिसप्रकार सिद्धिमार्यक उपदेश किया और जितने लम्बे समयतक सिद्धिमार्य छगतर चला जो उहाँ पाषपोपगमन संघाए चारण किये व जितने भक्त अनशनसे छेकर पाने बिना आहारके बिताकर संसारका अन्त किये, अर्थात् अन्तकृत हुए, और अज्ञानरूप तिमिर-अन्धकारके प्रवाहसे विप्रमुक्त मुनिभेद जिसप्रकार सर्वोत्तम मोक्ष-सुखको प्राप्त किये वे सब और इस प्रकारके अन्ध भी जो ऐसे भाव हैं वे सब मूल प्रथमानुयोगमें कहे गये हैं, यह मूल प्रथमानुयोग हुआ ।

मूल—से किं तं गंडियाणुओगे ? गंडियाणुओगे कुलगरगंडियाओ, तिथपरगंडियाओ, चक्रवह्निगंडियाओ, वृषारगंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ, गणधरगंडियाओ, मह-बाहुगंडियाओ, तपोत्कम्मगंडियाओ, हरिवंसगंडियाओ, उस्स-पिणीगंडियाओ, ओसपिणीगंडियाओ, चिंततरगंडियाओ, अमरनरतिरियनिरयगङ्गमणविविहपरिपहणाणुओगेसु एवमाइ पाओ गंडियाओ आचविज्वंति, पण्णविज्वंति, से चं गंडिया णुओगे, से चं अणुओगे ॥ ४ ॥

छापा—अथ कं स गण्डिकानुयोग ? गण्डिकानुयोगे कुलकरगण्डिकाः, तीर्थकरगण्डिकाः, चक्रवर्तिगण्डिकाः, वृषारगण्डिकाः, बल-देवगण्डिकाः, वासुदेवगण्डिकाः, गणधरगण्डिकाः, मह-बाहुगण्डिकाः, तप-कर्मगण्डिकाः, हरिवंशगण्डिकाः, उस्स-पिणीगण्डिकाः, अवसपिणीगण्डिकाः, विघ्नान्तरगण्डिकाः, अमरनरतिर्यङ्गनिरयगतिगमनविविधपरिवर्त्तनानुयोगेषु—एवमादि

का गण्डिका आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, स एष गण्डिकानुयोगः,
स एषोऽनुयोगः ।

टीका-प्र०-देव । वह गण्डिकानुयोग क्या है ? उ०-गण्डिकाके व्याख्यानमें कुलकरगण्डिका-जिनमें विमलवाहन आदि कुलकरोंके पूर्वभव व नाम आदिका विस्तृत वर्णन है, तीर्थङ्करगण्डिका, चक्रवर्तिगण्डिका, दशार-गण्डिका, वलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगण्डिका, अवसर्पिणीगण्डिका, चित्रान्तरगण्डिका अर्थात् प्रथम व द्वितीय तीर्थङ्करके अन्तरकालके चित्र-अनेक अर्थको कहनेवाली गण्डिका, मनुष्य तिर्यग् और निरयगतिमें गमनरूप अनेक परिवर्तों-भवभ्रमणोमे जीवोंका गमन, इत्यादि बहुतसी गण्डिकाएँ कही जाती हैं, विशेष रूपसे दिखाई जाती हैं, यह हुआ गण्डिकानुयोग, इस प्रकार दोनों प्रकारका यह अनुयोग पूर्ण हुआ ।

मूल—से किं तं चूलियाओ ? चूलियाओ आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं
चूलिया, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं, से तं चूलियाओ ।

छाया-अथ कास्ताः-चूलिकाः ? चूलिका आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां
चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाण्यचूलिकानि, ता एताश्चूलिकाः ।

टीका-प्र०-देव दृष्टिवादका शिखररूप वह चूला(डा) किस प्रकार है ? उ०-चूलिका इसप्रकार है (परिकर्म आदि दृष्टिवादके चारों अङ्गोंमे कहे हुए तथा कुछ अनुक्त विषय चूलामे कहे गए हैं)-आदिके चार पूर्वोंकी चूलाएँ हैं, शेष पूर्व विना चूलिकाके हैं यह हुआ चूलारूप दृष्टिवाद ।

अब बारहवें दृष्टिवाद अङ्गका उपसंहार करते हैं—

मूल—दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा
वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जाओ
निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगद्वयाए बारसमे
अंगे, एगे सुयक्खंधे, चौदस पुव्वाइं, संखेज्जा वत्थू, संखेज्जा
चूलवत्थू, संखेज्जा पाहुडा, संखेज्जा पाहुडपाहुडा, संखेज्जाओ
पाहुडियाओ, संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ, संखेज्जाइं पय-
सहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता

१ ऋषभदेव स्वामीके वंशज सभी राजा मोक्ष या सर्वार्थसिद्ध विमानमें ही गये हैं, ऐसा इस गण्डिकामें वर्णन किया गया है ।

पञ्चवा, परिष्ठा तसा, अणता थावरा, सासयकबनिबद्धनिकाह्या
जिणपण्णसा भावा आघविज्जति, पण्णविज्जति, परुविज्जति,
वसिज्जति, निवंसिज्जति, उववसिज्जति, से एवं आया, एवं
नाया, एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरुवणा आघविज्जति,
से सं विट्ठिवाए १२ ॥ सू० ५६ ॥

छाया-दृष्टिवाद्(पात)स्य परीता वाचनाः, संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि,
संख्येया वेदाः (धृत्तय*), संख्येया श्लोकाः, संख्येया* प्रति-
पत्तय*, संख्येया निर्युक्तय*, संख्येया* सङ्ग्रहण्य*, सोऽङ्गनार्धतया
द्वादशमङ्गम्, एक* भुतस्कन्ध*, चतुर्विंश पूर्वाणि, संख्येयानि
वस्तूनि, संख्येयानि चूलावस्तूनि, संख्येयानि प्रामृतानि, संख्ये-
यानि प्रामृतप्रामृतानि, संख्येया प्रामृतिका*, संख्येया* प्रामृत
प्रामृतिकाः, संख्येयानि पद्मसहस्राणि पद्माग्रेण, संख्येयान्यक्षराणि,
अनन्ता गमाः, अनन्ता* पर्यवा*, परीतास्त्रसा*, अनन्ता*
स्थावरा*, शाश्वतकृतनिबद्धनिकाशिता जिनप्रज्ञता भावा
आख्यायन्ते, प्रज्ञाप्यन्ते, प्ररूप्यन्ते, वृश्यन्ते, निवृश्यन्ते, उप-
वृश्यन्ते, स एवमात्मा, एवं ज्ञाता, एवं विज्ञाता, एव चरण
करणप्ररूपणाऽऽख्यायते, स एव दृष्टिवाद् १२ ॥ सू० ५६ ॥

टीका-चारदशैः दृष्टिवाद् अङ्कैः परिमित वाचनार्थं हि, संख्येय अनुयोग-
द्वार, संख्यात वेद संख्यात श्लोक, संख्यात प्रतिपत्ति श्रीर निर्युक्ति य संग्रहणौ
भी संख्यात १ हि, अङ्कैः दृष्टिसे यद् चारदशौ अङ्क हि, एक भुतस्कन्ध और
षीद्द पूर्व हि, संख्येय वस्तु तथा संख्येय युक्त (सुक्त)-छोटी वस्तु हि संख्यात
प्रामृत और प्रामृतप्रामृत भी संख्येय हि, प्रामृतिका य प्रामृतप्रामृतिका ये
कोशो संख्यात १ हि, पत्रपरिमाणसे संख्येय पत्रसदृश हि अहार संख्यात हि
परिमित अथ य अनन्त स्थावर हि, धर्मद्रव्य आवि शाश्वत तथा प्रयोग आवि
कृतसे निबद्ध हि देव आविसे विद्व जिमप्रणीत भाष इसमें कहे जाते हि,
प्रज्ञापन प्ररूपण वर्णन निर्वर्णन तथा उपवर्णनसे विशय समझाप जाते हि ।
फल-दृष्टिवाद्का यद् पाठक लक्ष्य दा जाता हि, सुशोक भाषोका यद्यार्थ
ज्ञाता य वेमेही विज्ञाता बनता हि, इमप्रकार चरणकरणकी इसमें प्ररूपणा
की जाती हि, यद् दृष्टिवाद् चारदशौ अङ्क पूर्व हुआ ॥ सू. ५६ ॥

मूल—इच्छेद्वयंमि दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा, अणंता अभावा, अणंता हेऊ, अणंता अहेऊ, अणंता कारणा, अणंता अकारणा, अणंता जीवा, अणंता अजीवा, अणंता भव-सिद्धिया, अणंता अभवसिद्धिया, अणंता सिद्धा, अणंता असिद्धा पण्णत्ता—

(संग्रहणी गाथा)

१२—भावमभावाहेऊ,—महेऊकारणमकारणे चैव ।

जीवाजीवाभवियम,—भविया सिद्धा असिद्धा य ॥ १ ॥

छाया—इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटकेऽनन्ता भावाः, अनन्ता अभावाः, अनन्ता हेतवः, अनन्ता अहेतवः, अनन्तानि कारणानि, अनन्तान्यकारणानि, अनन्ता जीवाः, अनन्ता अजीवाः, अनन्ता भवसिद्धिकाः, अनन्ता अभवसिद्धिकाः, अनन्ताः सिद्धाः, अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञप्ताः—

१२—भावाऽभावौ हेत्वहेतू कारणाऽकारणे चैव ।

जीवा अजीवा भविका अभविकाः सिद्धा असिद्धाश्च ॥ १ ॥

टीका—इस प्रकार इस द्वादशाङ्गी गणिपिटकमें अनन्त जीवादि भाव और अनन्त हेतु और अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त ही अजीव, अनन्त भवसिद्धिक तथा अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्तसिद्ध व अनन्त असिद्ध-संसारि जीव कहे गये हैं । इसी बातको संग्रहणी गाथासे कहते हैं—भाव १ अभाव २, हेतु ३ व असहेतु ४, कारण ५ और अकारण ६, जीव ७, अजीव ८, मव्य ९, अमव्य १०, सिद्ध ११ और असिद्ध १२, ये सब अनन्त हैं ।

मूल—इच्छेद्वयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतरं अणुपरियट्टिसु, इच्छेद्वयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णकाले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतरं अणुपरियट्टिति, इच्छेद्वयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतं संसारकंतरं अणुपरियट्टिसंति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटिषु, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रस्युत्पन्नकाले परिता—परिमिता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनागते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारमनुपर्यटिष्यन्ति ।

टीका—अथ द्वादशाङ्गीकी विराधनाका त्रैकालिक फल कथ्यते है—मत्कालमें अनन्त जीवोंने पूर्वोक्त इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे विराधना कर चारों ओर चतुर्यतिकर अन्तवाले संसारकान्तारमें भ्रमण किया इसी प्रकार द्वादशाङ्गी इस गणिपिटकका आज्ञारूपसे स्पष्टन करके (परिमित) संख्यात जीव चार गतिकर संसारकान्तारमें वर्तमानकालमें चक्र घगते हैं, मविष्यकालमें भी इस पूर्वोक्त द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञाको मद्द कर अनन्त जीव चार गतिकर संसारकान्तारमें भ्रमण करेंगे ।

मूल—इद्येइयं दुवालसंगं गणिपिडगं तीप काले अणता जीवा आणाए आराहिता चाउरंत संसारकतारं वीईवइसु । इद्येइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पनुप्पणकाले परिता जीवा आणाए आराहिता चाउरंतं संसारकतारं वीईवयंति । इद्येइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणता जीवा आणाए आराहिता चाउरंतं संसारकतारं वीईवइस्संति ।

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीते कालेऽनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यस्यवाजिषु, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रस्युत्पन्नकाले परिता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिवजन्ति, इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकमनन्ता जीवा आज्ञयाऽऽराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिवजिष्यन्ति ।

टीका—अथ द्वादशाङ्गीकी आराधनाका फल कथ्यते है—मत्कालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना—पालन कर अनन्त जीव चारगतिकर संसारकान्तारको तिर भए, वर्तमानकालमें परिमित—संख्येय जीव इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञासे आराधना कर चार गतिवाले संसारकान्तारको

पार कर जाते हैं। ऐसेही भविष्यकालमें इस द्वादशाङ्गी गणिपिटककी आज्ञानुसार आराधना करके अनन्त जीव चतुरन्त संसारकान्तारको पार कर जायेंगे।

अब अर्थरूपसे इस द्वादशाङ्गीकी नित्यता दिखाते हैं—

मूल—इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ न भवइ, न कथाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अब्बए, अवट्टिए, निच्चे । से जहानामए पंच अत्थिकाया न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अब्बए, अवट्टिए, निच्चे, एवामेव दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए, सासए, अक्खए, अब्बए, अवट्टिए, निच्चे । से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—द्व्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ, तत्थ, द्व्वओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वद्व्वाइं जाणइ पासइ, खित्तओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं खेत्तं जाणइ पासइ, कालओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं कालं जाणइ पासइ, भावओ णं सुयनाणी उवउत्ते सव्वं (व्वे) भावं (वे) जाणइ पासइ ॥ सू ५७ ॥

छाया—इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, न कदाचित् भवति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वतमक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, स यथानामकः पञ्चास्तिकायो न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवो नियतः शाश्वतोऽक्षयोऽव्ययोऽवस्थितो नित्यः, एवमेव द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीत्, न कदाचिन्नास्ति, न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च, भवति च, भविष्यति च, ध्रुवं नियतं शाश्वतमक्षयमव्ययमवस्थितं नित्यम्, तत्समासतश्चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतो, भावतः, तत्र द्रव्यतः श्रुत-

ज्ञानी-उपयुक्तः सर्वद्रव्याणि जानाति पश्यति, क्षेत्रतः श्रुत
 ज्ञानी-उपयुक्तः सर्वं क्षेत्रं जानाति पश्यति, कालतः श्रुतज्ञानी-
 उपयुक्तः सर्वं कालं जानाति पश्यति, भावतः श्रुतज्ञानी-उप-
 युक्तः सर्वान् भावान्-जानाति पश्यति ॥ सू० ५७ ॥

टीका-अब ब्राह्मशास्त्रीकी नित्यता बिस्राते हैं—पूर्वोक्त यह ब्राह्मशास्त्री
 मणिपिटक कभी नहीं था ऐसा नहीं कभी नहीं है वैसा भी कोई समय नहीं,
 तथा कभी नहीं होमा यह भी नहीं, मतकालमें या वर्त्तमानमें है, और मणिप्यमें
 भी रहेगा, यह ब्राह्मशास्त्री भुव नियत शाश्वत अक्षय अक्षय-अक्षयरहित, अब
 स्थित तत्त्वरूपसे एकसा अतप्य नित्य है, इसी बातको उदाहरणसे समझाते
 हैं, जैसे-यथानामक [संभाव्य नामवासे] पाँच अस्तिकाय कभी नहीं थे कभी
 नहीं हैं या कभी नहीं होंगे ऐसा कोई समय नहीं मिलता, किन्तु मतकालमें
 थे वर्त्तमानमें हैं और मणिप्यमें होंगे भुव, नियत, शाश्वत अक्षय, अक्षय अब
 स्थित तथा नित्य-सदाकाल रहनेवाले हैं, इसी प्रकार ब्राह्मशास्त्री मणिपिटक कभी
 नहीं था यह नहीं कभी नहीं है और कभी नहीं होमा यह भी नहीं, किन्तु या,
 वर्त्तमानमें है और मणिप्यमें भी रहेगा क्योंकि भुव, नियत, शाश्वत, अक्षय,
 अक्षय अबस्थित होनेसे यह नित्य है। श्रुतज्ञानका सामान्यरूपसे उपसंहार
 करते हैं—यह श्रुतज्ञान लक्षणेसे चार प्रकारका कहा गया है, जैसे १ ब्रह्म १ क्षेत्र
 १ काल और ४ भावसे, उन चारों प्रकारोंमेंसे—ब्रह्मसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त-
 उपयोगवाला सब द्रव्योंको जानता व देखता है, क्षेत्रसे उपयुक्त श्रुतज्ञानी
 सब क्षेत्रके पदार्थोंको जानता व देखता है, कालसे श्रुतज्ञानी उपयुक्त होकर
 सब काल धाने त्रिकावर्ती विषयोंको जानता व देखता है, भावसे श्रुतज्ञानी
 उपयुक्त सब भावों-पर्यायोंको जानता व देखता है ॥ सू० ५७ ॥

१३—मूल-गाथा

(अक्षरसस्त्री सम्मं, साह्यं खलु सपञ्जवसिषं च ।

गमिर्यं अंगपविट्टं, सप्तवि एष सपञ्जिवक्त्रा ॥ १ ॥

१४—आगमसत्पद्मगण, जं बुद्धिगुणेहिं अट्टुहिं विट्टं ।

बिंति सुपनाणलंभं, तं पुष्वविसारया धीरा ॥ २ ॥

१५—सुस्तुसइ १ पठिपुच्छइ २, सुणेद ३ गिणहइ ४ व ईहए ५ यावि ।

तत्तो अपोहए ६ वा, वा घारेइ ७ करेइ वा सम्मं ८ ॥ ३ ॥

१६—मूर्अं हुकारं वा, वाठकारं पठिपुच्छ वीमसा ।

तत्तो पसंगपारायणं च परिणिट्ट सप्तमए ॥ ४ ॥

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे ॥ ५ ॥
से त्तं अंगपविट्ठं, से त्तं सुयनाणं, से त्तं परोक्खनाणं, [से
त्तं नाणं] से त्तं नदी ।

॥ नंदी समत्ता ॥

१३—छाया

अक्षरसंज्ञि सम्यक्, सादिकं खलु सपर्यवसितं च ।
गमिकमङ्गप्रविट्ठं, सत्ताऽप्येते सप्रतिपक्षाः ॥ १ ॥

१४—आगमशास्त्रग्रहणं, यद्बुद्धिगुणैरष्टभिर्दृष्टम् ।

ब्रुवते श्रुतज्ञानलाभं, तत्पूर्वविशारदा धीराः ॥ २ ॥

१५—शुश्रूषते प्रतिपृच्छति, शृणोति गृह्णाति चेहते वाऽपि ।

ततोऽपोहते वा धारयति करोति वा सम्यक् ॥ ३ ॥

१६—मूकं, हुङ्कारं, वाढंकारं, प्रतिपृच्छां विमर्शम् ।

ततः प्रसङ्गपरायणं च परिनिष्ठा सप्तमके ॥ ४ ॥

१७—सूत्रार्थः खलु प्रथमः, द्वितीयो निर्युक्ति-मिश्रितो भणितः ।

तृतीयश्च निरवशेष एष विधिर्भवत्यनुयोगे ॥ ५ ॥

तदेतदङ्गप्रविष्टम्, तदेतच्छ्रुतज्ञानम्, तदेतत्परोक्षज्ञानम्,

[तदेतज्ज्ञानम्]

॥ सा एषा नंदी समाप्ता ॥

टीका—श्रुतज्ञानका उपसंहार व शास्त्रकी समाप्ति-१ अक्षर २ संज्ञि
३ सम्यक् ४ सादिक और निश्चयसे ५ सपर्यवसित अन्तवाला ६ गमिक व ७
अङ्गप्रविष्ट, ये सातों प्रतिपक्षके साथ अर्थात् अक्षरश्रुत १ अनक्षरश्रुत २
संज्ञि ३ व असंज्ञिश्रुत ४ सम्यक्श्रुत ५ तथा मिथ्याश्रुत ६ सादिक ७ व अना-
दिकश्रुत ८ सपर्यवसितश्रुत ९ और अपर्यवसितश्रुत १० गमिकश्रुत ११ घेसे
अगमिकश्रुत १२ अङ्गप्रविष्टश्रुत १३ व अनङ्गप्रविष्टश्रुत १४ इसप्रकार श्रुतज्ञानके
१४ भेद होते हैं ॥ १३ ॥ आगे कहे जानेवाले आठ बुद्धिगुणोंसे जो आगम
मर्यादापूर्वक यथावस्थित अर्थोंकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रका ग्रहण देखा है,
उसको पूर्वविशारद धीर-व्रतपालनमें स्थिर मुनि श्रुतज्ञानका लाभ कहते हैं
अर्थात् जिनप्रणीत वचनका अर्थपरिज्ञानही परमार्थसे श्रुतज्ञान है, अन्य

नहीं। अब पूर्वोक्त आठ बुद्धिगुणोंको कहते हैं—पहले सुनना चाहता है १, फिर शाब्दाके स्पर्शोंको विनयसे पूछता है २, पूछनेपर मुह जो कई उसे सावधान मनसे सुनता है ३ और ग्रहण करता है ४ फिर उसपरभी विचार करता है ५ तब विचार करनेके बाद सम्यक् निश्चय करता है ७ फिर हृदयमें धारण करता और सम्यक् प्रकारसे आचरणमें लाता है ८। श्रुतज्ञानावरण करनेके क्षयोपशमके निमित्त होनेसे इन आठोंको गुण कहा है। अब शाब्द सुननेकी विधि कहते हैं—प्रथम मूक-धूमिकी तरह रहके सुने फिर हुंकार करे बाने-स्वीकार-मूचक अल्पक ध्वनि करे १, बादमें वाहंकार-सीं हों, तब आदि पहले स्वीकार करे २, कुछ पूछे ४ विमर्श-मिज्ञासा करे ५, बाद छट्टे अक्षरमें प्रसङ्ग-उत्तरगुणप्रसङ्गमें परायण होता है और सातवें अक्षरमें गुरुकी तरह परिभ्रित हो जाता है (उपरोक्त गायमें कई आचार्य सात बारमें अक्षरका अक्षिकार पूर्ण करते हैं)। अब गुरुके व्याख्यान करनेकी विधि दिखाते हैं—पहले अनुषोम-व्याख्यान सूत्रार्थ-मूल और अर्थरूपसे वृत्तरा अनुषोम निर्मुक्तिसहित कहा गया है, और तीसरा अनुषोम प्रसङ्गमुपसङ्गके कथनसे मिरबशेष कहा जाता है, यह अनुषोम-व्याख्यान-वाकमें विधि कही गई है, (इन तीन अनुषोमोंमेंसे किसी एकके चारवार विचार करनेसे सात अक्षर करवाये जाते हैं। यह अक्षर और अनुषोमकी रीति साधारण बुद्धिवाले शिष्योंकी दृष्टिसे कही गई है) इति—यह अङ्गमन्त्रिश्रुतज्ञान व समस्त श्रुतज्ञान पूर्ण हुआ साय ही परोक्षज्ञान भी हो चुका, यह ज्ञानका वर्णन हुआ और गन्धीसूत्र भी पूर्ण हुआ।

पूज्य श्रीहस्तिमङ्गलनिर्मित च्छायाऽनुबाषोपेतं

श्रीशिवसिद्धि मणिज्ञानाम्ममण विरचितं

श्रीमद्गन्धीसूत्रं

समाप्तमवाह

आनन्दो नन्दनं नन्दिर्नन्दी संमदभाषकाः ।

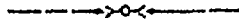
उपचारात्समाप्तास्ते, स्वार्थतः सर्वदाऽऽस्ताम् ॥ १ ॥

मङ्गलाऽऽगमससर्गान्यङ्गसं यन्मयाऽर्जितम् ।

आयतां तत्प्रभावेण, जगज्जैनं सुमङ्गलम् ॥ २ ॥

प्रथम परिशिष्टम् ।

पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दोंपर टिप्पण ।



(१) अंगुल (पृ ३२ गा. ५७)—अङ्गुलको अनुयोगद्वार सूत्रमें विभाग-निष्पन्न क्षेत्रप्रमाणमे आदिप्रमाण माना है। आत्माङ्गुल, उच्छेदाङ्गुल और प्रमाणाङ्गुल इस प्रकार वह अङ्गुल प्रमाण तीन प्रकारका है, उनमेंसे यहाँ उच्छेदाङ्गुल समझना चाहिए। आठ जवमध्योंका एक उच्छेदाङ्गुलप्रमाण होता है। इसका खुलासा 'वालग' नामक सातवे टिप्पणमे देखे।

(२) आवलिया (पृ ३२ गा ५७)—असंख्यात समयोंकी एक आवलिका होती हैं। एक श्वासोच्छ्वासमें संख्यात आवलिकाएँ हो जाती हैं। (अनुयोग-द्वारसूत्रमें कालानुपूर्वी देखिए)

(३) गाउय (पृ ३२ गा ५८)—कौटिलीय अर्थशास्त्रमे 'गाउय' के अर्थमें 'गोरुत' शब्द मिलता है, जैसे—'धनुस्सहस्रं गोरुतम्, चतुर्गोरुतं योजनम्'। उपरोक्त श्लोकमें १००० धनुषका कोश माना है किन्तु वह मगधदेश-प्रसिद्ध है, शीरसेन देशमें दो हजार धनुषका कोश माना जाता था। इस विषयका वैजयन्ती कोशमें निम्न उल्लेख है—

‘चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो धनुर्धन्वन्तरं युगम् ।’

“धन्वन्तरसहस्रं तु कोशो गव्या तु तद्द्वयम् ।

स्त्री-गव्यूतिश्च गव्यूतं गोरुतं गोमतं च तत् ॥

गव्यूतानि च चत्वारि योजनं कोशलादिषु ।

गव्यूतिद्वयमेव स्याद्योजनं मगधादिषु ॥ ६३ ॥”

वैजयन्ती-देशाध्याय ४० ।

(४) जंबूद्वीप (पृ. ३२ गा० ५९)—जम्बूद्वीप यह प्रमाण अङ्गुलोंसे ४ लाख कोशके विस्तारवाला द्वीप है। इसके भरत आदि अनेक क्षेत्र विभाग हैं।

(५) मनुष्यलोक (पृ ३२ गा ५९)—जितनी भूमिमें मनुष्य रहते हैं उसको मनुष्यलोक कहते हैं, इसमें जम्बूद्वीप, घातकीखण्ड व अर्द्धपुष्करद्वीप पेसे ढाईद्वीप और दो समुद्र हैं। कुल ४५ लाख योजनके विस्तारका यह भूखण्ड है।

(६.) ओसापिणी (पृ ३२ गा ६२)—जिस समयमें भूमि व धान्य आदिके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श क्रमशः हीन होते जाते और मनुष्य एवं

तिर्यग् प्राणियोंकी आयु व शरीरकी लम्बाई कम होती ही, तथा सन्तुष्टोंकी हीनता होती जाय ऐसे कालको अवसर्पिणी काल कहते हैं, उसके परमसु-काल १, सुकाल १, सुपमदुष्पम-पहले अच्छा किन्तु अन्तमें बुरा १ दुष्पम सुपम-सुष्पमें कुछ अशुभ फिर अच्छा ४, दुष्पम-दुष्पमप्रधान साधनवाला ५, दुष्पमदुष्पम-पूर्व दुष्प व अवगतिका समय ६ ऐसे इस अवसर्पिणी कालके छ विभाग होते हैं, भिन्न ही आठ भी कहते हैं। यह अवसर्पिणीकाल १० कोडा कोडी सामरका होता है। वर्तमानमें पाँचवें दुष्पम समयके १३ हजार वर्ष बँते हैं, यह समय कुछ ११ हजार वर्षका है। वेलें—नन्वीर्यकी टीका या जम्बू द्वीप-प्रकृतिसूत्रका कालवर्षन।

(७) बाल्यम (पृ ३५ सू १४)—रथके चक्रस आहत होकर उबनेवाला घुँघि-कण रथरेणु कहा जाता है, आठ रथरेणुसे १ बाल्याम होता है, बाल्यामसे आठ गुण अधिक १ लीख व लीखसे आठ गुण अधिक एक जू (पूका) होती है, जूसे आठगुण अधिक एक जवमध्य और आठ अवमध्य-परिमाणका एक अणुस होता है। छ अणुसका एक पिर-चरणसक होता है, ११ अणुओंकी एक वितस्ति-वैत और १४ अणुओंका एक रत्नि-हाथ, दो हाथोंकी एक कुम्हि और चार हाथोंका एक धनुष दोहजार धनुष अर्थात् आठ हजार हाथोंका एक क्रोश और चार कोशोंका एक योजन होता है। (विशेष जाननेके लिये अशुभयोगद्वारसूत्रमें क्षेत्रप्रमाणके अणुताधिकारको वेलें)

(८) उत्सर्पिणी (पृ ३७ सू १५)—पहले कहे गये अवसर्पिणी कालसे विपरीत शुभ भागोंकी वृद्धि करनेवाले कालको उत्सर्पिणीकाल कहते हैं। इसके ६ विभागोंमें क्रमशः पचासोंके वर्ष रस, गन्ध, अग्निकी उन्नति होती रहती है, इसलिये इस कालको उत्सर्पिणीकाल कहा है, इस कालक्रमको अवसर्पिणीके उल्टे समझे यह काल भी १० कोडाकोडी सामरोपम परिमाणका है। वेलें—जम्बूद्वीप-प्रकृति।

(९) संसृष्टिम मनुस्ता (पृ ३९ सू १७)—मनुष्य जाति प्राणियोंके मनुष्य कीरसे विना गर्भके पैदा होनेवाले जीवोंकी संसृष्टिमनस या संसृष्टिम कहते हैं, मनुष्यमानके १ मस १ मूत्र १ श्लेष्मा, ४ सिंजाज-माकका मस, ५ वमन, ६ पित्त, ७ शोणित-रक्त ८ पू-राज, ९ बीर्य, १० सुते हुए बीर्यके पुत्रोंका फिर भीला होना ११ स्त्री-पुरुषका संयोग १२ शरीरकी नन्वी मासियों, १३ मुँहके कलेयर, तथा १४ सर्व अणुविके स्थान, इन १४ स्थानोंमें ४८ मिनटोंके भीतर संसृष्टिम मनुष्य जीवोंकी उत्पत्ति होती है, इनका जीवनकालभी अन्तर्मुहूर्तका होता है (पृ १ पृ १)।

(१०) कर्मभूमिय, अकर्मभूमिय, अंतरद्वीपम (पृ ३९ सू १७)—कर्म-भूमिय, अकर्मभूमिय और अन्तरद्वीपम इस प्रकार गर्भज मनुष्योंके संश्लेषके

तीन प्रकार होते हैं। जहाँ अस्ति, मासि व कृपिरूप साधनोंसे जीविका चलती है और जहाँ राजा और धर्माचार्य आदि होते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं। भरत, ऐरवत व महाविदेह ये तीन कर्मभूमि-क्षेत्र हैं। इनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य कर्मभूमिज कहे जाते हैं।

अकर्मभूमि—इससे उलट जहाँ कृपि, वाणिज्य या शास्त्र-जीवनकी वृत्ति नहीं हो, सभी पूर्ण स्वतन्त्र व कल्पवृक्षसे सुखमय जीवन विताते हों, उसको अकर्मभूमि या भोगभूमि-क्षेत्र कहते हैं। देवकुरु १, उत्तरकुरु २, हरिवर्ष ३, रम्यवर्ष ४, हैमवत ५, हैरण्यवत ६, ये छ अकर्मभूमिक्षेत्र हैं। यहाँ जन्मनेवाले मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं।

अन्तरद्वीप—दोनों वाजू पानीसे घिरे हुए व जम्बूद्वीपसे सम्बन्धित भूमिप्रदेशको अन्तरद्वीप कहते हैं। चुल्लहिमवान् और शिखरी पर्वतकी दो २ दाढ़ाएँ लवणसमुद्रमे निकली हुई हैं, जो पूर्व-पश्चिम दोनों दिशाओंमें हैं। उनपर ५६ अन्तरद्वीपके क्षेत्र हैं। यहाँ भी कृपि, वाणिज्य आदि कर्म नहीं होते हैं। फिर भी समुद्रवर्ती भूभागमें होनेसे इनको अकर्मभूमि नहीं कहके अन्तरद्वीप कहा है। यहाँके मनुष्य अन्तरद्वीपज कहलाते हैं।

(११) पञ्जत्तग (पृ ४१ सू १७)—छ प्रकारकी पञ्जत्ति-पर्याप्तिओंमेंसे अपने २ योग्य शक्तिओंको जिसने पूर्ण प्राप्त करलिया उसे पञ्जत्त या पर्याप्त कहते हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनःपर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ हैं। मनुष्यमें ये छहही पर्याप्तियाँ होती हैं, इन छह पर्याप्तिओंको पा लेने-पर मनुष्य पर्याप्त कहाता है। इनकी व्याख्या प्रथम कर्मग्रन्थकी ४९ वीं गाथाके अर्थमें देखे

(१२) पलिओवम (पृ ४५ सू १८)—पल्योपम—उद्धारपल्य १, अद्धारपल्य २ व क्षेत्रपल्य ३, इसप्रकार पल्योपमके तीन प्रकार हैं। सूक्ष्म और व्यावहारिक भेदसे प्रत्येकके दो दो प्रकार हैं। उद्धार पल्योपमसे द्वीप-समुद्रोंका परिमाण किया जाता है और क्षेत्रपल्योपमसे दृष्टिवादके द्रव्योंका परिमाण समझा जाता है। किन्तु कालमान व आयुमान अद्धारपल्योपमसेही

१ पर्याप्तिका स्वरूप—पर्याप्ति वह शक्ति है, जिसके द्वारा जीव आहार-श्वासोच्छ्वास आदिके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है और गृहीत पुद्गलोंको आहार-आदि-रूपमें परिणत करता है। ऐसी शक्ति जीवमें पुद्गलोंके उपचयसे बनती है। अर्थात् जिसप्रकार पेटके भीतरके भागमें वर्तमान पुद्गलोंमें एक तरहकी शक्ति होती है, जिससे कि खाया हुआ आहार भिन्न २ रूपमें बदल जाता है, इसीप्रकार जन्मस्थान-प्राप्त जीवके द्वारा गृहीत पुद्गलोंसे ऐसी शक्ति बन जाती है, जो कि आहार आदि पुद्गलोंको खल-रस आदि रूपमें बदल देती है, वही शक्ति पर्याप्ति है। पर्याप्तिजनक पुद्गलोंमेंसे कुछ तो ऐसे होते हैं, जो कि जन्मस्थानमें आए हुए जीवके द्वारा प्रथमसमयमें ही ग्रहण किये हुये होते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जो पीछेसे प्रत्येक समयमें ग्रहण किये जाकर पूर्वगृहीत पुद्गलोंके ससर्गसे तद्रूप बने हुये होते हैं—चतु० कर्म० परिशिष्ट।

किया जाता है । उसका स्वरूप इस प्रकार है—एक भोजन सम्बा चौड़ा व जतमाही महारा तथा कुछ अधिक तीनगुण परिधिवाला एक नर्त-कण्डू है, उसको एक दिन, दो दिन यावत् उत्कृष्ट ७ दिनोंके पैदा हुए बाळकके बाळामोंसे छुप कसकर भर दें । पस्यको भरनेमें बाळामोंको इतना कसदेना चाहिये जिससे कि उसके बाळाम अग्निसे जले नहीं, पानीसे गले नहीं तथा वायुसे उबे नहीं व चक्रवर्तीकी चतुरङ्गिणी सेनासे भी डरे नहीं, इसप्रकार कसकर भरवनेपर सौ सौ वर्षोंसे एक एक बाळाम निकाला जाय तब अितने समयमें वह लड्डा साखी होजाय अर्थात् एक एक बाळाम निकल जाय उसको व्यावहारिक अन्त्रापस्योपम कहते हैं । जब इन बाळामोंको प्रत्येकके बिन्न नहीं पडे इतने छोटे हुकडे-असंख्य लण्ड करके पूर्ववत् पस्य-कण्डूको भरे और उसमेंसे एक एक हुकडाको सौ सौ वर्षोंसे निचाले वैसे करनेपर अितने दिनोंमें वह पस्य अर्थात् लड्डा साखी हो उस सम्बको सूक्ष्म अन्त्रापस्य कहते हैं । इस कोडाकोभी पस्यका एक साम्योपम काळ होता है, इसीसे वेच नारकोंकी आयुका मास होता है । अन्त्रापस्य व शेषपस्यमें प्रतिसमय बाळामका अपहरण किया जाता है, शेष वर्ज्य इसी प्रकार है ।

(११) अर्धतरसिद्धकेवलनायं (पृ ४१ सू ११)—दीर्घेशी-अवस्थाके अन्तिम समयमें जो सिद्ध हुए हैं उनका केवलज्ञान अर्धतरसिद्ध-केवलज्ञान है, पूर्ववत्सम्बन्धी उपाधिके भेदसे वे सिद्ध १५ प्रकारके होते हैं, जैसे—

१ तीर्थसिद्ध—वीतपग व सर्वज्ञ तीर्थहू महराजसे प्रणीत आत्म वा सङ्ग तीर्थ कहाता है । उस तीर्थकी स्थापना हो जानेपर जो सिद्ध हुए वे तीर्थसिद्ध होते हैं ।

२ अतीर्थसिद्ध—पूर्वोक्त तीर्थकी स्थापना होनेसे पहले वा तीर्थके विच्छेदके समय आतिस्मरण भावसे मन्वेदीकी तरह सिद्ध होनेवाले अतीर्थसिद्ध हैं ।

३ तीर्थहूरसिद्ध—सपम आवि तीर्थहूर होकर जो सिद्ध हुए उन्हें तीर्थहूरसिद्ध कहत हैं ।

४ अतीर्थहूरसिद्ध—जो सामान्य केवलीपदसे सिद्ध हुए हैं ।

५ स्वपन्मुखसिद्ध—शुभ आविके उपदेशके विना स्वयं बोध पाकर सिद्ध होनेवाले ।

६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध—करकण्डू आविकी तरह सुपम आवि किसी बाह्य वस्तुके निमित्तसे बोध पाकर सिद्ध होनेवाले प्रत्येकबुद्धसिद्ध कहे जाते हैं ।

७ बुद्धबोधितसिद्ध—माचार्य आविसी बोध पाकर जो सिद्ध हुए हैं ।

८ जीलिसिद्ध—जो अग्नि शरीरसे सिद्ध होते हैं ।

९ पुलिसिद्ध—पुरुषसिद्धसे जो सिद्ध हुए हैं ।

१० नपुंसकलिसिद्ध—नपुंसकके शरीरसे जो सिद्ध हुए हैं ।

११ स्वलिङ्गसिद्ध—रजोहरण मुखवस्त्रिकारूप जैनलिङ्ग(चिह्न)से सिद्ध होनेवाले ।

१२ अन्यलिङ्गसिद्ध—परिव्राजक आदिके लिङ्गसे सिद्ध होनेवाले ।

१३ गृहिलिङ्गसिद्ध—भावोंकी उच्चतासे-भावसाधुतासे गृहस्थवेशमें सिद्ध होनेवाले ।

१४ एकसिद्ध—एकसमयमें एकही सिद्ध होनेवाले ।

१५ अनेकसिद्ध—एकसमयमें अनेक सिद्ध होनेवाले ।

तीर्थसिद्ध व अतीर्थसिद्ध इन दो भेदोंमें सब सिद्धोंका समावेश हो जानेपर भी जो १५ भेद दिखाये गए हैं, वे विशेष बोधके लिये हैं। इन १५ सिद्धोंके आश्रयसे केवलज्ञान भी १५ प्रकारका है, जैसे-धर्मभेदसे धर्मीमें भेद होता है, वैसे धर्मीके भेदसे धर्ममें भी भेद होता है, जैसे-कुड्य, नभ व वृक्षपर बैठने उडनेवाले पक्षी ।

(१४) मिथ्याश्रुत (पृ १११ सू. ४१)—जैन आचार्योंने विषय-कषायोंसे निवृत्त होकर निजात्मभावमें प्रवृत्ति करनेकोही उपादेय माना है। पुरुषार्थ चतुष्टयीमें भी ' धर्मं प्रवरं वदन्ति 'के अनुसार मोक्षसाधक धर्मतत्त्वकोही वे पुरुषार्थ मानते हैं, और प्रधानतासे उस शुद्ध धर्मके प्रदर्शक शास्त्रकोही वे सम्यक्श्रुत कहते हैं, देखें श्रुतका लक्षण—' जं सुच्चा पडिवज्जंति तवं खंतिमहिंसयं ' अर्थात् जिस शास्त्रको सुनकर श्रोता तप क्षांति और अहिंसाको धारण करता हो उसे सम्यक्शास्त्र कहते हैं (उ ३ गा ८)। इस लक्षणके अनुसार कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, भाषाशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, व इतिहास आदि शास्त्र व्यवहारज्ञानके पोषक और प्रधानतासे प्रवृत्तिसाधक होनेसे मोक्ष मार्गसे विपरीत हैं, अतएव इन ' भारत आदि ' लौकिक शास्त्रोंको यहां मिथ्याश्रुत कहा है। किसी विशिष्ट व्यक्तिको विशुद्ध दृष्टिके कारण इनशास्त्रोंसे भी सम्यक्ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है, उसके लिये ये सम्यक्श्रुत होते हैं। परिचय—इनमें भारत, महाभारत और रामायण व कौटिलीय-अर्थशास्त्र प्रसिद्ध है, भीमासुरोक्त १, शकट-भद्रिका २, घोटकमुख-वात्स्यायन ' नो पूर्वगामी कामशास्त्रनो रचनार ' देखें—जैन साहित्यनो ('सक्षित इतिहास' गु.) ३, कार्पासिक ४, नागसूक्ष्म ५, कनकसप्तति ६, त्रैरासिक ७, लोकायत ८, पुण्यदैवत ९, ये उपरोक्त ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, माठर-माठराचार्यकृत सांख्यकारिकाकी माठरवृत्ति जो वर्तमानमें उपलब्ध है, पुराण, व्याकरण, भागवत, पातञ्जल (योगसूत्र) और साङ्गोपाङ्ग चार वेद ये वर्तमानमें उपलब्ध एवं प्रायः प्रसिद्ध हैं ।

(१५) उत्कालिक-श्रुत (पृ ११५ सू ४३)—नियत समयके अलावा भी जो पढ़े जावें उनको उत्कालिकश्रुत कहते हैं ।

वसवेमाखिय १ उववाइय ५, रायपसेणइय ६, जीवामिमम ७, पञ्चववा ८, नवी ११, अणुभोगवा १२, सूरपण्यसि १५ ये ७ भुत वर्तमानमें उपलब्ध हैं। २, ३ ४ ९, १० १५, १७, १८, १९, २१ २६, २८, २९, २७, २७, २७, ये १४ भुत वर्तमानमें अनुपलब्ध हैं। वेवेन्द्रस्तव आदि शेष भुत उस नामसे वृषा प्रकीर्णकोंमें मिलते हैं। किन्तु उनकी माया व रचना आदिसे माहुरम होता है कि आचार्योंने प्राचीन भुतके आभारसे उन ग्रन्थोंका पिछेसे निर्माण किया हो वेवेन्द्र-मरणासमाधिकी प्रशस्ति—

पर्यं मरणविमर्शि मरणविसीर्हि च नाम गुणरस्यम् ।

मरण समाहिं तदर्थं, संलेख्यसुर्यं चउत्थं च ॥ ६३१ ॥ १८९६ ॥

पंचम मत्तपरिण्या, छट्टं आठरपचचक्ष्णार्णं च ।

सप्तम महपचक्ष्णार्णं अष्टम आराह्यपचक्ष्णो ॥ ६३२ ॥ १८९७ ॥

इमामो अहस्रुयाओ भावाउ महिर्यमि छेस मत्थाओ ।

मरणविमर्सी एव, वियनाम मरणसमाहिं च ॥ ६३३ ॥ १८९८ ॥

इति सिरिमरणविमर्सी पण्ययं संमर्त्तं ॥ ८ ॥ इति संलेखनाश्रुतम् ।

उत्क्रासिक भुतोंकी सूची ।

वृषावैकालिक सूत्र—ओ वृषा अभ्ययनोंसे सामुओंके आचारोंको कहनेवाला है, वह शास्त्र मसिद्धही है ॥ १ ॥

कस्य गीर अकल्पका वर्णन करनेवाला शास्त्र कस्याकस्य कहा जाता है। यह मही मिलता ॥ २ ॥

एवविरकस्य आदि मर्यादाको कहनेवाला ग्रन्थ कस्यभुत कहा जाता है। यह दो तरहका है, एक सूत्र तथा अर्थके परिमाणसे छोटा है, उसे उक्त कस्यभुत कहते हैं, दूसरा सूत्रार्थके परिमाणसे विशाल है उसे महाकस्यभुत कहते हैं ॥ ३-४ ॥

उववाइ, रायपसेणि और जीवामिमम ये तीनों क्रमसे पहले दूसरे व तीसरे उपाह्व हैं ॥ ५-६-७ ॥

प्रहापना—इसमें जीव जमीनका ज्ञान करामा गया है ॥ ८ ॥

महामहापना—यह सूत्रार्थोंकी अपेक्षासे प्रथम प्रहापनासे बड़ा है ॥ ९ ॥

प्रमावाऽप्रमावशास्त्र—इसमें प्रमाव गीर अप्रमावके भेद स्वरूप गीर फल विज्ञाप गये हैं ॥ १० ॥

मन्वी—पौष ज्ञानोंको कहनेवाला शास्त्र ॥ ११ ॥

अनुभोगद्वार—इसमें उपक्रम, निक्षेप आदि व्याख्याके द्वारोंका वर्णन है ॥ १२ ॥

वेवेन्द्रस्तव—वेव व वेवेन्द्रकी स्तुति, तन्मुखविचारिक—ग्रन्थ व जीवभाव आदि शास्त्रमन्वी वर्णन करनेवाला वृषा प्रकीर्णकोंमें इस नामका एक प्रकीर्णक उपलब्ध है ॥ १३ ॥

चन्द्रविद्या-चन्द्रसम्बन्धी ज्ञान करानेवाला ग्रन्थविशेष, यह वर्तमानमें अनुपलब्ध है ॥ १४ ॥

सूर्यप्रज्ञप्ति-इसमें सूर्यकी गति आदिका वर्णन है ॥ १६ ॥

पौरुषीमण्डल-इसमें पुरुषके शरीर या शङ्खुकी छायासे पौरुषीका ज्ञान कराया गया है, जैसे उत्तरायणके अन्त और दक्षिणायनके प्रारम्भमें केवल एक दिन शङ्खु वगैरह किसी भी वस्तुकी अपने बराबर छाया हो, तब पौरुषी-प्रहर दिन समझना चाहिए। इसप्रकार प्रत्येक सूर्यमण्डलकी अपेक्षासे पौरुषीका वर्णन करनेवाला अध्ययन पौरुषीमण्डल है ॥ १७ ॥

मण्डलप्रवेश-इसमें दक्षिण और उत्तरके मण्डलोंमें चन्द्रसूर्यके एक मण्डलसे दूसरे मण्डलमें प्रवेशका वर्णन किया गया है ॥ १८ ॥

विद्याचरणविनिश्चय-इसमें सम्यग्ज्ञान और चरणके फलका निश्चय कहा गया है ॥ १९ ॥

गणिविद्या- ज्योतिष व निमित्तके विषयमें आचार्यकी विद्या-इसी नामसे यह प्रकीर्ण उपलब्ध है ॥ २० ॥

ध्यानविभक्ति- इसमें आर्त, रौद्र आदि ध्यानोंके विभाग व उनके स्वरूपोंका वर्णन है ॥ २१ ॥

मरणविभक्ति- इसमें अनुसमय आदि मरण विभागोंका वर्णन है ॥ २२ ॥

आत्मविशुद्धि- इसमें आलोचना व प्रायश्चित्त आदि प्रकारसे जीवकी विशुद्धिका वर्णन है ॥ २३ ॥

वीतरागश्रुत- इसमें वीतरागके स्वरूपका वर्णन है ॥ २४ ॥

संलेखनाश्रुत- इसमें द्रव्यभावसे संलेखनाका वर्णन है ॥ २५ ॥

विहारकल्प- स्थविर आदि कल्पके विहारकी व्यवस्था करनेवाला ग्रन्थ ॥ २६ ॥

चरणविधि-व्रत आदि चरणका वर्णन करनेवाला ग्रन्थ ॥ २७ ॥

आतुरप्रत्याख्यान-महाप्रत्याख्यान-रोगिओंको प्रत्याख्यान करानेका विस्तारसे वर्णन करनेवाला तथा भवचरम प्रत्याख्यानका प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ। ये सब प्रायः अनुपलब्ध हैं ॥ २८ ॥

कालिक श्रुतोंकी सूची।

१ उत्तराध्ययन-सभी प्रकारके भावोंको ३६ अध्ययनोंमें वर्णन करनेवाला शास्त्र।

२ दशाश्रुतस्कन्ध- इसमें १० अध्ययनोंसे २० असमाधिस्थानोंको लेकर ९ निदानतकका वर्णन है।

३ कल्प- बृहत्कल्पसूत्र।

४ व्यवहारसूत्र--इसमें साधुओंके आलोचनादि व्यवहारका वर्णन है।

- १६ जीव ईश्वरसे अपनेही कारणोंसे उत्पन्न होकर नित्य रहता है ।
 १७ जीव अपने निमित्तसे ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी अनित्य होता है ।
 १५ जीव परकारणोंसे ईश्वरसे बनाया जाता और नित्य है ।
 १६ जीव ईश्वरसे परकारणोंको निमित्त लेकर बनाया जाता व अनित्य है ।

आत्मा—

- १७ जीव स्वयं आत्मरूपसे उत्पन्न होता और नित्य है ।
 १८ जीव आत्मरूपसे स्वयं पैदा होकर अनित्य रहता है ।
 १९ आत्मरूपसे जीव वृक्षसे उत्पन्न होता व नित्य है ।
 २० जीव वृक्षसे आत्मरूपमें उत्पन्न होता और अनित्य है ।

जीवके साथ जैसे २० विकल्प हुए ऐसेही अजीव १ पुण्य २ पाप ३ आनन्द ४ संवर ५ निर्जरा ६ बन्ध ७ और मोक्ष ८ इन आठोंके २०-२० विकल्प होते हैं जो मिलानेसे सब १८० हो जाते हैं । ये क्रियावादीके १८० प्रकार हुए ।

१ अक्रियावादी—क्रियावादीसे विपरीत—यकाम्त जीव आविष्कार निवेश करनेवाले अक्रियावादी हैं, इनके ८४ भेद होते हैं, जैसे—पुण्यपाप आविष्कार छोड़कर जीव अजीव आविष्कार पदार्थोंको छिन्नकर उनके नीचे स्व-पर ये दो भेद रखना, फिर काष्ठ, यहच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन ६ को नीचे रखनेसे ८४ प्रकार हो जाते हैं, जैसे—

- १ जीव स्वयंकाष्ठसे नहीं है ।
 २ जीव परतः काष्ठसे नहीं है ।
 ३ जीव स्वयं यहच्छासे नहीं है ।
 ४ जीव परतः यहच्छासे नहीं है ।
 ५ जीव नियतिसे स्वयं नहीं है ।
 ६ जीव नियतिका आश्रयणकर परसे नहीं है ।
 ७ स्वभावसे जीव स्वयं नहीं है ।
 ८ स्वभावसे जीव परतः नहीं है ।
 ९ ईश्वरसे जीव स्वयं नहीं है ।
 १० ईश्वरसे जीव परतः नहीं है ।
 ११ आत्मरूपसे जीव स्वयं नहीं है ।
 १२ जीव आत्मरूपसे परतः नहीं है ।

जीवके साथ जिस प्रकार १२ विकल्प हुए इसी प्रकार अजीव आविष्कार पदार्थोंके साथ भी १२ १२ विकल्प होते हैं, सब मिलकर अक्रियावादीके ८४ प्रकार होते हैं ।

३ अज्ञानवादी—अज्ञानसेही कार्यसिद्धि प्राप्तनेवाले अज्ञानवादीके ६० भेद हैं जीव आविष्कार पदार्थोंके विषयमें राक्ष असद आविष्कारमद्वारा संशय करकेपर ६० प्रकार होते हैं, जैसे—

पारिभाषिक और विभिन्न शब्दोंपर टिप्पण

१ जीव सत् है यह कौन जानता ? और यह जाननेसे क्या प्रयोजन
 २ जीव असत् है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे क्या मतलब
 ३ जीव सदसद्रूप है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे
 लाभ है ?

४ जीव अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे
 प्रयोजन ?

५ जीव सत् होकर अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके ज
 ननेसे क्या प्रयोजन है ?

६ जीव असत् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? अथवा इसके ज
 ननेसे क्या प्रयोजन है ?

७ जीव सदसद् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? तथा इसके ज
 ननेसे प्रयोजन भी क्या है ?

जिस प्रकार जीवके साथ सप्तभंग हुए उसी प्रकार अजीव आ
 तत्वोंके भी सात १ भङ्ग होते हैं, वे सब मिलकर अज्ञानवादिओंके ६३
 होते हैं, फिर-

१ पदार्थोंकी उत्पत्ति सती (वर्तमान) है यह कौन जानता ? वा इ
 जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

२ पदार्थोंकी उत्पत्ति असती है इसे भी कौन जानता ? अथवा
 जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

३ पदार्थोंकी उत्पत्ति सदसती है यह भी कौन जानता ? तथा इसके ज
 ननेसे क्या प्रयोजन है ?

४ पदार्थोंकी उत्पत्ति अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? व इसके ज
 ननेसे भी क्या प्रयोजन है ? ६३ के साथ इन चारको मिला देनेसे अज्ञानवा
 ६७ भेद हो जाते हैं ।

३ विनयवादी-विनयसे परलोककी सिद्धि माननेवाले वैश्विकवादीके
 भेद हैं, १ देव २ राजा ३ यति ४ ज्ञाति ५ वृद्ध ६ अधम ७ माता और ८ पि
 इन आठोंमें प्रत्येकके साथ मन वचन काय और दानसे चार प्रकारका ति
 किया जाता है, आठोंके चार २ भेद मिलानेसे सब विनयवादीके ३२ प्र
 हो जाते हैं ।

क्रियावादीके १८०, अक्रियावादीके ८४, अज्ञानवादीके ६७
 विनयवादीके ३२, इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ एकान्तवादिओंके प्र
 होते हैं । एकान्तवादी होनेसे ये मिथ्यादृष्टि कहाते हैं, इन्हीं बातोंको स
 गृह्ये नयदृष्टिसे अनेकान्तरूपमें मानते हैं । विशेष ज्ञानके लिए सूत्रकृता
 द्वादश समग्रसरण अध्ययन देखें ।

५ निरीय—इसमें साधुसाधिव्योके वृषित चारित्रको छुड़ करनेके लिये प्रायश्चित्तका विधान है, ये पाँच शास्त्र वर्तमानकालमें उपलब्ध हैं।

६ महानिरीय—यह शास्त्र निरीयसूत्रकी अपेक्षा मन्थपरिमाणमें बड़ा है।

७ क्षपिभाषित—

८ जम्बूद्वीपप्रवृत्ति—इसमें क्षेत्र व कालभेदसे जम्बूद्वीपके मार्वाका वर्णन है।

९ द्वीपसागरप्रवृत्ति—यह मन्थ द्वीप और समुद्रोंका वर्णन करनेवाला है।

१० चन्द्रप्रवृत्ति—यह शास्त्र चन्द्रकी मण्डलमति और नक्षत्रपरिवार आवृत्ति वर्णन करता है।

११-१२ शुद्धिकाबिमानप्रविमक्ति और महतीविमानप्रविमक्ति ये दोनों मन्थ आवृत्तिकामविह व पुष्पावकीर्ण बिमानोंके बिभागोंका वर्णन करते हैं।

१३-१४ अङ्गशुद्धिका—आचाराङ्गविकी चूला, वर्णचूला—बर्गोंकी शुद्धिका।

१५ व्याख्याशुद्धिका—मन्वतीसूत्रकी चूला।

१६ अरुणोपपात—उपयोगपूर्वक जिसके पठनसे अरुणदेव बड़े आर्षे।

१७—बहुषोपपात—इसके उपयोगपूर्वक पठनसे बहुषदेवका आनमन होता है।

१८ मरुषोपपात।

१९ भरुषोपपात।

२० वैभ्रमणीपपात।

२१ वेङ्गमरोपपात।

२२ वेदेन्द्रोपपात। इन पाँच शास्त्रोंका भी उपयोगपूर्वक पठन करनेपर मरुह आदि देव व इन्द्रका भी आनमन होता है, उन शास्त्रोंकी रचना इसी प्रकारकी जाकर्यकतावाली थी। उपरोक्त काष्ठिकश्रुतोंमें ६-७ संख्याके मन्थ उस नामसे उपलब्ध हैं किन्तु अपने मूलरूपमें नहीं, जो उनकी रचना आदिसे मात्स्य हो सकता है।

२३ उत्थानश्रुत—कौपी हुप मुनि जिस गाँव या नगरके लिये संकल्पके साथ उपयोगपूर्वक तीनवार पठन करें तो वह गाँव या नगर रोता हुआ सूत्रसे उठजाय।

२४ समुत्थानश्रुत—वेदी मुनि जब प्रसन्न होकर सङ्कल्पके साथ उपयोग पूर्वक तीनवार समुत्थानश्रुतका पाठ करें तो वह गाँव या नगर फिर बहों आजाय।

२५ नागपरिहा—इसको जब साधु उपयोगपूर्वक पढ़ते हैं तब सङ्कल्पके बिना भी नागहृमारदेव यहाँ विराजमान उन मुनिओंको जान जाते हैं तथा वन्दन करते हैं और प्रयोजनासुसार वरदान भी देते हैं।

२६ निरयावृत्तिका—नरकापासोंका तथा नरक्यामी जीवोंका वर्णन करनेवाला।

२७ कल्पिका—इसमें सौधर्म आदि कल्पका तथा देवलोक और उनमें जाने-वाले जीवोंका वर्णन है।

२८ कल्पावतांसिका—इसमें सौधर्म ईशानके कल्पविमानोंमें उत्पन्न हुई देवियोंका वर्णन किया गया है।

२९ पुष्पिता—संयमभावसे पुष्पित-सुखी आत्माओंका वर्णन करने-वाला शास्त्र।

३० पुष्पचूला—प्रस्तुत अर्थकी विशेषताका वर्णन करनेवाला शास्त्र।

३१ वृष्णिदशा—अन्धकवृष्णि राजाकी वक्तव्यताबोधक शास्त्र।

९ और ११ से २५ तककी संख्याके ग्रन्थ वर्तमानमें प्रायः अनुपलब्ध हैं। आसीविसभावना, दिष्टीविसभावना, चारणभावना, सुवि(मि)णभावना, तेय-निसग्ग, कालिकश्रुतमे उपरोक्त नाम किसी किसी प्रतिमे मिलते हैं। व्यवहार-सूत्रके २० वें उद्देशकमें इनका उल्लेख मिलता है, इससे इनको मूलपाठमें मानना सङ्गत दिखता है। ये सर्व श्रुत नियत समयमेही पढ़े जाते हैं, इसलिये कालिक कहाते हैं।

(१६) तिण्हं तेसट्टाणं पासंडिय सयाणं पृ १२१ सू ४६—क्रियावादी आदि एकान्तवादी तीर्थिकोंके ३६३ भेद इस प्रकार होते हैं—

१ क्रियावादी—जीव अजीव पुण्य पाप आदि हैं और क्रियाही आत्मसाधक हे इस प्रकार इनका एकान्त अस्तित्व माननेसे ये—क्रियावादी मिथ्यादृष्टि हैं, इनके १८० प्रकार मन्तव्य भेदसे होते हैं, जिसमें जीव आदि नवपदार्थ स्वपर दृष्टिसे नित्य व अनित्यरूपमें विचारे जाते हैं, काल स्वभाव आदि ५ विकल्पसे प्रत्येकका विचार करनेपर १८० होते हैं, जैसे—

१ जीव स्वतः कालसे नित्य है।

२ जीव स्वतः कालसे अनित्य है।

३ जीव परतः कालसे नित्य है।

४ जीव परतः कालसे अनित्य है।

५ जीव स्वयं चेतन स्वभावसे नित्य है।

६ जीव स्वतः होकर भी स्वभावसे अनित्य है।

७ जीव परतः होकर भी स्वभावसे नित्य है।

८ जीव परसे प्रकट होता और स्वभावसे अनित्य है।

९ जीव होनहारसे स्वयं हजारोंकी संख्यामें उत्पन्न होता है और नित्य रहता है।

१० होनहारकोही लेकर जीव परतः उत्पन्न होता व नित्य रहता है।

११ होनेवाला हुआ तो जीव स्वयं उत्पन्न होकर भी अनित्य रहता है।

१२ होनहारके कारणही जीव परतः उत्पन्न होकर अनित्य रहता है।

ईश्वरसे भी चार विकल्प।

- १३ जीव ईश्वरसे अपनेही कारणोंसे उत्पन्न होकर नित्य रहता है ।
 १४ जीव अपने निमित्तसे ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी अनित्य होता है ।
 १५ जीव परकारणोंसे ईश्वरसे बनाया जाता और नित्य है ।
 १६ जीव ईश्वरसे परकारणोंको निमित्त लेकर बनाया जाता व अनित्य है ।

आत्मा—

- १७ जीव स्वयं आत्मरूपसे उत्पन्न होता और नित्य है ।
 १८ जीव आत्मरूपसे स्वयं पैदा होकर अनित्य रहता है ।
 १९ आत्मरूपसे जीव दूसरेसे उत्पन्न होता व नित्य है ।
 २० जीव दूसरेसे आत्मरूपमें उत्पन्न होता और अनित्य है ।

जीवके साथ जैसे १० विकल्प हुए ऐसेही अजीव १ पुण्य २ पाप ३ आश्रय ४ संवर ५ निर्धरा ६ बन्ध ७ और मोह ८ इन आठोंके १०-१० विकल्प होते हैं जो मिछानेसे सब १८० हो जाते हैं । ये क्रियावादीके १८० प्रकार हुए ।

२ अक्रियावादी-क्रियावादीसे विपरीत-प्रकान्त जीव आदिका निषेध करनेवाले अक्रियावादी हैं, इनके ८४ भेद होते हैं, जैसे-पुण्यपाप आदिको छोड़कर जीव अजीव आदि सात पदार्थोंको छिन्नकर उनके भीचे स्व-पर ये दो भेद रखना, फिर कास, पदच्छा, नियति स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन ६ को भीचे रखनेसे ८४ प्रकार हो जाते हैं, जैसे—

- १ जीव स्वयंकाष्ठसे नहीं है ।
 २ जीव परतः काष्ठसे नहीं है ।
 ३ जीव स्वयं पदच्छासे नहीं है ।
 ४ जीव परतः पदच्छासे नहीं है ।
 ५ जीव नियतिसे स्वयं नहीं है ।
 ६ जीव नियतिका आश्रयप्रकार परसे नहीं है ।
 ७ स्वभावसे जीव स्वयं नहीं है ।
 ८ स्वभावसे जीव परतः नहीं है ।
 ९ ईश्वरसे जीव स्वयं नहीं है ।
 १० ईश्वरसे जीव परतः नहीं है ।
 ११ आत्मरूपसे जीव स्वयं नहीं है ।
 १२ जीव आत्मरूपसे परसे नहीं है ।

जीवके साथ जिस प्रकार १९ विकल्प हुए इसी प्रकार अजीव आदि ६ पदार्थोंके साथ भी ११ १२ विकल्प होते हैं, सब मिछकर अक्रियावादीके ८४ प्रकार होते हैं ।

३ अज्ञानवादी-अज्ञानसेही कार्यसिद्धि चाहनेवाले अज्ञानवादियोंके ६७ भेद हैं-जीव आदि नव पदार्थोंके विषयमें सत् असत् आदिसत्तमहोंसे सदाय करनेपर ६७ प्रकार होते हैं, जैसे—

- १ जीव सत् है यह कौन जानता ? और यह जाननेसे क्या प्रयोजन ?
 २ जीव असत् है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे क्या मतलब है !
 ३ जीव सदसद्रूप है यह कौन जानता ? और इसके जाननेसे क्या लाभ है ?

४ जीव अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन ?

५ जीव सत् होकर अवक्तव्य है यह कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

६ जीव असत् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? अथवा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

७ जीव सदसद् अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? तथा इसके जाननेसे प्रयोजन भी क्या है ?

जिस प्रकार जीवके साथ सप्तभंग हुए उसी प्रकार अजीव आदि ८ तत्त्वोंके भी सात २ भङ्ग होते हैं, वे सब मिलकर अज्ञानवादिओंके ६३ भेद होते हैं, फिर-

१ पदार्थोंकी उत्पत्ति सती (वर्तमान) है यह कौन जानता ? वा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

२ पदार्थोंकी उत्पत्ति असती है इसे भी कौन जानता ? अथवा ऐसा जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

३ पदार्थोंकी उत्पत्ति सदसती है यह भी कौन जानता ? तथा इसके जाननेसे क्या प्रयोजन है ?

४ पदार्थोंकी उत्पत्ति अवक्तव्य है यह भी कौन जानता ? व इसके जाननेसे भी क्या प्रयोजन है ? ६३ के साथ इन चारको मिला देनेसे अज्ञानवादीके ६७ भेद हो जाते हैं ।

३ विनयवादी-विनयसे परलोककी सिद्धि माननेवाले वैयर्थिकवादीके ३२ भेद हैं, १ देव २ राजा ३ यति ४ ज्ञाति ५ वृद्ध ६ अधम ७ माता और ८ पिता, इन आठोंमें प्रत्येकके साथ मन वचन काय और दानसे चार प्रकारका विनय किया जाता है, आठोंके चार २ भेद मिलानेसे सब विनयवादीके ३२ प्रकार हो जाते हैं ।

क्रियावादीके १८०, अक्रियावादीके ८४, अज्ञानवादीके ६७ और विनयवादीके ३२, इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ एकान्तवादिओंके प्रकार होते हैं । एकान्तवादी होनेसे ये मिथ्यादृष्टि कहते हैं, इन्हीं बातोंको सम्यग्दृष्टि नयदृष्टिसे अनेकान्तरूपमें मानते हैं । विशेष ज्ञानके लिए सूत्रकृताङ्गका द्वादश समवसरण अध्ययन देखे ।

(१७) सीलत्वयगुण-वेरमण पच्चक्खाण पो० (पृ १३० सू १)

शीलव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, स्वदारसन्तोष व इच्छापरिमाण,

इन पाँच अणुव्रतोंको क्षीलव्रत कहते हैं ।

गुणव्रत—विस्रवत भोगोपभोग—परिमाण और अनर्घवृण्डविरमणव्रत ये तीन गुणव्रत होते हैं ।

विरमण—विरमण—क्रोध, मान छोम आवि सवीप (बुद्ध) कापोंसे निवृत्ति करनेरूपसाधयमविरमण—सामायिक व्रत आवि विरमण कहाते हैं ।

पञ्चकलाण—नमोकारसी व पोरसी आवि व्रत प्रत्याख्यान कहाते हैं ।

पोसहोचवास—वीपय याने अहमी आवि पर्वदिनोंमें आहार, शरीर सत्कार—वेदायुषा स्नान आवि तथा धम्मा व्यापार आविका त्याग करना इसको वीपभोपवास कहते हैं ।

(१८) पञ्चिमा (वृ ११० सू ५१)—अभिप्रहविशेषको या कायोत्सर्गको प्रतिमा कहाते हैं । अभिप्रहरूप उपासकोंकी ११ प्रतिमायें हैं जैसे—

१ दर्शन—प्रतिमा—इसमें निर्दोष सम्यक्त्वकी आराधना की जाती है ।

२ व्रतप्रतिमा—इसमें उपासकोंके ११ व्रतोंकी निर्दोष आराधना की जाती है ।

३ सामायिक—प्रतिमा—इसमें दोनों सभ्या सामायिक की जाती है ।

४ वीपभप्रतिमा—इसमें पर्वतिथिमें उपवास किया जाता है ।

५ प्रतिज्ञा—पाँच प्रतिज्ञाओंके साथ एक रात्रिको कायोत्सर्ग करना ।

६ अन्नहत्याग—प्रतिमा—पूर्व ब्रह्मचर्य व रात्रिमोजनका त्याग करना ।

७ सच्चित्त्याग—प्रतिमा—इसमें सजीव—सच्चित्त धनस्पति व कच्चा पानी आवि आहारका त्याग करना ।

८ आरम्भत्याग—प्रतिमा—स्वर्ग आरम्भ करनेका त्याग करना ।

९ प्रेष्यारम्भत्याग—प्रतिमा—सेवक आविसेमी आरम्भ नहीं करना ।

१० उद्दिष्टत्याग—प्रतिमा—अपने लिये आरम्भपूर्वक की हुई वस्तुको भी नहीं सेना ।

११ भ्रमणभूत—प्रतिमा—साधुकी तरह विशेष नियमसे रहना । (विशेष समझनेके लिये वेल्लिप—उपाध्यायजी महाराज सम्पादित ब्रह्माभुतस्कन्धका १ वृ अध्ययन, अथवा उपासकब्रह्माहूके प्रथमाध्ययनकी टीका)

(१९) उद्देशणकाल और समुद्देशणकाल (सू० ४६ से ५६)—

किसी भी शास्त्रका दिक्षण करना हो तो गुरुकी आज्ञा प्राप्त करके सिना पेसा शास्त्रीय नियम है । उसके अनुसार जब कोई शिष्य गुरुसे पूछता है कि महाराज ! मैं कौनसा सूत्र पढ़ूँ ? तब आचाराहू अथवा 'सूत्रकृताहू' पढ़ पेसी गुरुकी सामान्य आज्ञाको उद्देश कहते हैं, तथा आचाराहूके प्रथम भुतस्कन्धके प्रथम अध्ययनको पढ़ इस प्रकारकी विशेष आज्ञाको समुद्देश कहते हैं । पूर्वसमयमें गुरुजन अपने शिष्योंको कण्ठाम ही शास्त्रकी बाचनादि बते थे । इसलिये अध्ययन आवि विभायके अनुसार उन्तोंने नियत दिनमें

सूत्रार्थ-प्रदानकी व्यवस्था निर्माण की, जिसको उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल कहते हैं ।

मौखिक शिक्षणकी समाप्तिके लगभगही यह प्रथा बंद हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है, अतएव भगवती तथा उपाङ्गशास्त्रोंके उद्देशनकालका उल्लेख नहीं मिलता ।

अङ्ग, श्रुतस्कन्ध, अध्ययन और उद्देशकका एकही उद्देशनकाल है, आचाराङ्गके ८५ उद्देशनकाल हैं । जो इस प्रकार कहे गए हैं—१ शास्त्रपरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशन, २ लोकविजयके ६ उद्देशनकाल, ३ शीतोष्णीयके ४ उद्देशनकाल, ४ सम्यक्त्व अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, ५ लोकसार अध्ययनके ६ उद्देशनकाल, ६ श्रुत अध्ययनके ५ उद्देशनकाल, ७ विमोह अध्ययनके ८ उद्देशनकाल, ८ महापरिज्ञा अध्ययनके ७ उद्देशनकाल, ९ उपधानश्रुत अध्ययनके ४ उद्देशनकाल, १० पिण्डैपणा अध्ययनके ११ उद्देशनकाल, ११ शय्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १२ ईर्या अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, १३ भाषाजात अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १४ वस्त्रैपणा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १५ पात्रैपणा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १६ अवग्रह प्रतिमा अध्ययनके २ उद्देशनकाल, १७-२३ इन सात अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल, २४ भावना अध्ययनका १ उद्देशनकाल, और २५ विमुक्ति अध्ययनका १ उद्देशनकाल, इस प्रकार सब मिलकर ८५ उद्देशन काल होते हैं, ऐसेही समुद्देशनकाल भी समझे ।

सूत्रकृताङ्गके ३३ उद्देशनकाल होते हैं—“ जैसे प्रथम अध्ययनमे ४ उद्देशनकाल, २ य अध्ययनमें ३ उद्देशनकाल, तीसरे अध्ययनमे ४ उद्देशनकाल, चतुर्थ अध्ययनमे २ उद्देशनकाल, पञ्चम अध्ययनमें २ उद्देशनकाल, और शेष ११ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार प्रथम श्रुत स्कन्धके २६ उद्देशन काल होते हैं । द्वितीय श्रुतस्कन्धके ७ अध्ययनोंके ७ उद्देशनकाल हैं, इसप्रकार कुल मिलाकर ३३ उद्देशनकाल होते हैं ।

स्थानाङ्गके २१ उद्देशनकाल होते हैं, वे इस प्रकार हैं—दूसरे, तीसरे व चौथे अध्ययनके ४-४ उद्देशनकाल हैं, पञ्चम अध्ययनके ३ उद्देशनकाल, बाकी ६ अध्ययनोंमें प्रत्येकका एक एक उद्देशनकाल, इस प्रकार सब २१ एकवीस उद्देशनकाल होते हैं । ४ समवायाङ्गका एकही उद्देशनकाल कहा गया है । ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति-भगवतीके उद्देशनकालका निर्देश मूलमें नहीं किया है ।

६ ज्ञाताधर्मकथाके २९ एकोनतीस उद्देशनकाल व समुद्देशनकाल होते हैं जैसे प्रथमश्रुत स्कन्धके १९ अध्ययनोंमें १९ उद्देशनकाल और दूसरे श्रुत-स्कन्धके १० अध्ययनोंमें १० उद्देशनकाल, ऐसे २९ उनतीस उद्देशनकाल हो जाते हैं ।

७-८ उपासकदशाङ्ग और अन्तकृद्दशाङ्गके अध्ययन व वर्गके अनुसारही क्रमशः १० और ८ उद्देशनकाल होते हैं ।

१ अनुसूचीपातिकाके भी १ उद्देशकाल और १ समुद्देशकाल हैं।

१० प्रथमकारणके ४५ उद्देशकाल व समुद्देशकाल कहे गए हैं। किन्तु समवायाङ्के वृत्तिकार श्री अमरदेवसूरि १० वें अङ्कपरिचयकी वृत्तिमें लिखते हैं कि ओ भी अभ्ययन १० होनेसे उद्देशकाल भी इशती होते हैं, फिर भी वाचमान्तरकी अपेक्षासे ४५ संख्याका सम्भव होता है।

११ विपाकश्रुतके-दोनो श्रुतस्कन्धके १० उद्देशकाल और १० समुद्देशकाल हैं।

(१०) परिक्रम (पृ १४१ सू. ५६) -परिक्रम—योग्यता उत्पन्न करना, जैसे-गणितशास्त्रमें सङ्कलन आदि सोसह परिक्रमोंको समझनेवाला बाकीके गणितशास्त्रको ग्रहण करनेयोग्य होता है, वैसे विद्यार्थित परिक्रमसूत्रके अर्थको ग्रहण किया हुआ मनुष्य द्वितीयाङ्के अन्यश्रुतको ग्रहण करनेयोग्य होता है अन्यथा नहीं। इसीलिये परिक्रम(कर्म)को द्वितीयाङ्के प्रथम प्रकारमें कहा है।

(११) आजीविय (पृष्ठ ११०) -यहां आजीविय शब्दसे मोशालकका आजीविकमत लिया जाता है। धीरनिवाणसे १६ वर्ष पूर्व मल्लिखिपुत्र मोशालकने महावीरसे अलग होकर इस मतकी स्थापना की थी।

मगवान् महावीरका द्वितीय चातुर्मास जब राजगृहीके मालन्नापाठमें था, उसी समय मोशालकने उनको गुरुत्वीके स्वीकार किये और १ वर्षतक प्रणीत भूमिमं उनके साथ रहा। किसी समय सिन्धार्यग्रामसे कूर्मग्राम जाते हुए उसने महावीरसे तिलके बूझके फलके वाचत प्रश्न किया उसपर प्रभुने उत्तर दिया कि—यह तिलका बूझ फलेगा और इन ७ फूसोंके जीव मरके तिलके साथ जीवरूपसे उत्पन्न होंगे। मोशालकने प्रभुकी बात झूठी करनेके लिये धीरेसे पीछे आकर उस झाड़को उल्लेख फेंका। फिर भी कुछ समयके बाद यह झाड़ विष्य वृष्टि आदि संयोगसे रूप गया जब पीछे आते हुए मोशालकने उस तिलके झाड़को फसा हुआ देखा तब महावीरकी सत्यताके साथ उसको यह निश्चय हुआ कि सब जीव निश्चयसे प्रवृत्त-परिहारी हैं, मनुष्य कितना भी प्रयत्न करे किन्तु आदिर यही होता है जो नियत-होना-होता है। इसप्रकार परिवर्तयाव तथा मियतिवादकी लेकर बाद श्रीमहावीरसे अलग हुआ। और लाम, अलाम, सुल इल जीवन और मरण इन छ बातोंकी जमतामें प्ररूपणा करने लगा। अष्टाद्वनिमित्त विज्ञाकर जीविका चक्षुसे इसको आजीविक कहते हैं, आजीविक सम्प्रदायकी मुख्य मान्यताएँ निम्न प्रकार हैं—सभी जीव सच्चिदानंदी हैं इसलिये वे दानम छेदन लुम्पन, विलुम्पन, व उपद्रव बिनादा इन क्रियाओंको करके आहार करते हैं। आजीविकोपासकोंके अरिहन्त (गंगासक) वेप हैं। धर्म-माता-पिताकी भक्ति करना, और उम्बरके फल घटके फल व बोट, सतरके फल, व विम्पलके फल इन ५ फलोंका धर्जन करना, पर्व-कान्वा (प्याज), लसुण तथा कम्पूलको

नहीं खाना तथा विना खसी किये व विना नाक बंधे हुए बैलोंसे त्रस जीवोंकी जिसमें हिंसा न हो ऐसे व्यापारके द्वारा आजीविका चलाना धर्म है इत्यादि । विशेष जाननेके लिये देखें--भगवतीसूत्र श० १५ तथा श० ८ उ० ५ ।

(२२) तेरासिय (पृ ११०)

[अ] टीकाकारने आजीविक सम्प्रदायकोही तेरासिय-त्रैराशिक माना है, रोहगुप्तसे प्रचलित 'त्रैराशिक' सम्प्रदायका इन्होंने उल्लेख नहीं किया है ।

[ब] वीर निर्वाण ५४४ मे रोहगुप्तसे त्रैराशिक मतकी स्थापना हुई । उसने अंतरंजिका नगरीमें 'पोद्दशाल' नामक एक परिव्राजकके साथ विवाद किया, जिस समय परिव्राजकने जीव और अजीव इस प्रकार संसारमें दोही राशि हैं ऐसा पूर्वपक्ष रक्खा । उस समय श्रीगुप्तके शिष्य रोहगुप्तने कहा-यहीं, तीन राशि हैं, जैसे-जीव, अजीव, नोजीव ३, शुभ, अशुभ, शुभाशुभ ३ आदि । परिव्राजकको वाग्बल और विद्याबलसे जीतकर रोहगुप्त जब गुरुके पास आया और गुरुको सब हाल कह सुनाया तब गुरु बोले कि रोहगुप्त तुमने तीन राशिकी स्थापना की यह शास्त्रविरुद्ध है, अतः इसका सभामें जाकर पीछा स्पष्टीकरण करो । रोहगुप्तने इसको नहीं सुना । गुरुजीने ६ मासतक राजाके समक्ष शास्त्रार्थ करके आखिर रोहगुप्तको पराजित किया । उसने भी अपना हठ न छोडकर 'त्रैराशिक' मतकी स्थापना की । विशेषावश्यकमे इसको 'षडलूक' और 'वैशेषिक' दर्शनके नामसे भी कहा है । यह द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ऐसे ६ पदार्थोंको मानता है-देखें-विशेषावश्यक भाष्य या आवश्यककी बृहद्रवृत्ति ।

१ आजीवियोवासगा अरिहत देवतागा, अम्मा-पिक सुस्सूसागा, पच फलपडिक्कंता, तंजहा-उंबरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खहिं, पलङ्क-ल्लसुणकदमूलविवज्जगा, अणिल्लच्छिएहिं अणक्कमिन्नेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं वित्तेहिं वित्ति कप्पेमाणा विहरति भग० श० ८ उ० ५ सू० १० ।

द्वितीयं परिशिष्टम् । समवायाङ्गस्थो द्वादशाङ्ग्याः परिचय ।



नं सू ५६-से किं तं आधारे । आधारे णं आधारेणोपरिचयनेण्यपट्टाजममज्जं
कमज्जपमाज्जोमज्जुज्जणमासासमितिमुत्तीसेज्जोवद्विमत्तपायठग्गम
उप्पायजपसप्पाविसोहि सुत्तासुत्तग्गहण्यवयणियमतवोवहाणसुप्प-
सत्थमाहिज्जह, से समासभो (जाव) निरिवापारे, आधारेत्स णं (जाव)
संसेज्जा भणु संसेज्जाभो पडि संसेज्जा वेडा संसेज्जा सि संसेज्जाभो
नि (जाव) अत्तारस पच्चसस्सार्थं (जाव) सासया वडा निचद्दा निक्काया (जाव)
पण्णविज्जति इत्तिज्जति निद्विसिज्जति उवद्विसिज्जति, से च आधारे
॥ सूत्र १३६ ॥

नं सू ५७-से किं तं सूअगडे । सूअगडे णं ससजया सूज्जति (जाव) जीवाजीवा सू
ज्जति स्सेगो सूज्जति (जाव) स्सेगस्सेगो सूज्जति, सूअगडे णं जीवाजीव
पुण्णपावासासयसंबरनिउत्तरणसंबमोकत्तावसाया पयस्था सूज्जति,
समण्यार्थं अधिरकासपध्वयार्थं कुसमयभोहभोहमभोहिद्यार्थं
संबेहजायसहजजुत्तिपरिणामसंभयार्थं पावकरमस्सिनमभयुप्पविसो-
हणत्थं अतीमत्त किरिवापारपत्तस (जाव) तिणं तेवद्वीणं अण्णदिट्ठि
पत्तयाण वूई किप्पा ससण्णं ठारिज्जति आजाविट्ठितवयणमिस्सार्थं सुत्तु
वरिसयता विविहवित्थराणुगमपरमसबभावगुप्पविसिद्दा भोकत्त
पहोयारया उवारा अण्णपातर्मथकारणुग्गेसु वीवभूमा सोषाणा अेव
सिद्धिसुमहगिहुसमत्स विक्खोभमिप्पकपा सुत्तस्था, सूअगत्त णं
परिवा (जाव) पपमेयं प संसेज्जा उवत्तरा अर्त्तता म्मा अर्त्तत पज्जया परिवा
(जाव) एवं चरणकरणपद्धणया आपविज्जति, से से सूअगडे ॥ सूत्र १३७ ॥

नं सू ५८-से किं तं ठाने । ठाने णं ससजया ठारिज्जति (जाव) स्सेगस्सेगो अविज्जति
ठाने णं वध्वगुणसेत्तकासपज्जमपयत्थार्थं-

सेत्ता सस्सिठा य सत्तुद्दा सुरमयण विमाय आगर ण्णवीओ ।

णिदिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंभाळा ॥ १ ॥

एअविहपत्तध्वयं इविद्द जाय इत्तविहत्तध्वयं जीवाज वीम्वज्जय व
स्सेगदुग्गं व णं वद्वयया आपविज्जति उवत्तर णं परिवा वाचया (जाव)
संसेज्जाभो संगइवीभे, से णं अंगदुपाए तद्द अंगे एने मुक्कसंघे द्द
अज्जणया एक्कवीसं पद्देत्तवकाए वाचत्तिं वपत्त इत्तार्थं पचमोयं प (जाव) से
तं ठाने ॥ सूत्र १३८ ॥

न० सू० ४९-से किं तं समवाए ? समवाए ण ससमया (जाव) लोगालोगा सुइज्जति, समवाएण एकाइयाण एगट्ठाणं एगुत्तारिथपरिवुट्ठीए दुवालसगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवगे समणुगाइज्जइ टाणगसयस्स बारसाविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समयारे आहिज्जति, तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिंया वित्थरेण अवरे वि अ बहुविहा विसेसा नरगतिरियमणुअसुरगणाणं आहारुस्सासलेसा-आवाससंखआययप्पमाणउववायचवणउग्गहणोवहिवेयणविहाण-उवओगजोगइंदियकसायविविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेहपरिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थ-गरगणहराणं सम्मत्तभरहाहियाण चक्कीणं चेव चक्कहरहलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति, समवायस्स ण परिता वायणा जाव से णं अगट्ठयाए चउत्थे अगे एगे अज्जयणे एगे सुयक्खधे एगे उट्ठेसणकाले एगे चउयाले पदसहस्से पदग्गेण प० सत्तेज्जाणि अक्खराणि जाव चरणकरणपल्लवणया आघविज्जति, से त्त समवाए ॥ सूत्र १३९ ॥

न० सू० ५०-से किं तं वियाहे ? वियाहे ण ससमया (जाव) जीवाजीवा विआहिज्जति (जाव) लोगालोगे विआहिज्जति, वियाहे णं नाणाविहसुरनरिंदरायरि-सिविविहसंसइअपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं द्व्व-गुणखेत्तकालपज्जवपदेसपरिणामजहच्छिट्ठियभावअणुगमनिकखेव-णयप्पमाणसुानिउणोवक्कमविह्विह्वकारपगडपयासियाणं लो-गालोगपयासियाणं संसारसमुद्धरुंदउत्तरणसमत्थाणं सुरवइसंपूजि-याणं भवियजणपयहिययाभिनांवियाणं तमरयविद्धंसणाणं सुदिट्ठदी-वभूयईहामतिबुद्धिवद्धणाणं छत्तीससहस्समपूणयाणं वागरणाणं वंसणाओ सुयत्थवहुविह्विह्वगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था, वियाहस्स ण परिता वायणा (जाव) निज्जुत्तीओ, से ण अगट्ठयाए पंचमे अगे एगे सुयक्खधे एगे साइरेगे अज्जयणसत्ते दस उट्ठेसणसहस्साइ दस समु-ट्ठेसणसहस्साइ छत्तीस वागरणसहस्साइ चउरासीई पयसहस्साइ पयग्गेण पणत्ता (जाव) से त्त वियाहे ॥ सूत्र १४० ॥

न० सू० ५१-से किं त नायाधम्मकहाओ ? नायाधम्मकहासु ण (जाव) अतकिरियाओ २२ य आघविज्जंति जाव नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरणजिण-साभिसासणवरे संजमपईणणपालणधिइमइवसायदुब्बलाणं १ तव-नियमतवोवहाणरणइद्धरभरभग्गयणिस्सहयणिसिद्धाणं २ घोरपरि-सहपराजियाणं सहपारद्धरुद्धसिद्धालयमगनिग्गयाणं ३ विसय-सुहतुच्छआसावसदोसमुच्छियाणं ४ विराहियचरित्तनाणदंसणजइ गुणविविह्वपयारनिस्सारसुत्तायणं ५ संसारअपारदुक्खदुग्गइभव-विविह्वपरंपरापवंचा ६ धीराण य जियपरिसहकसायसेण्णाधिइध-

णियसंजमउच्छाहनिदिष्टयाणं ७ आराहियनाथर्वसजचरित्तजोग
 निस्सत्तसुत्तसिद्धासयमग्गमभिसुवाणं सुरमवणविमानसुक्काई
 अप्पोवमाई भुक्खुण चिरं च भोगभोमाणि ताणि दिव्वाणि महुरिहाणि
 तता य कालकमपुयाण जह य पुणो छन्दसिद्धिमग्गानं अंतकिरिया
 चाळियाण य संवेदमाणुस्सधीरकरणकारणाणि बोधयप्रणुसास
 णाणि गुणबोसवरित्तणाणि विद्वंते पद्ये य सोऊण सोग्गुणिजो
 अहद्वियसासयम्मि जरमरणनासअकरे आराहिसंसंजमा य सुर
 खोगपडिमियत्ता ओवेन्ति अह सासयं सिधं सम्बुद्धसमोक्खं
 एए अण्णे य प्रवमाइअत्था वित्थरण य, भाषापम्भकइणु णं परिता
 वापणा संसेखा अनुभोगदाता जाव संसेग्गामो संगइणीमो, से णं मंगहुपाए
 छन्दे णंगे दो पुमकत्तवा एगुणवीरं अग्गपणा ते समासभो बुद्धिवा पण्णसा
 तं अह्मा-चरित्ता य कप्पिया य, दस धम्मकइणु वग्गा, एम्म णं एमगेवाए
 धम्मकइणु (जाव) अनुत्तामो अवत्ताइयाजोईमो भवतीति मक्खापामो,
 एगुणतसिं उद्देसणकाला एगुणतसिं समुद्देसणकालं संसेग्गाई पपतइत्साई
 पपमेणं पण्णसा (जाव) से तं जावावम्भकइणो ॥ सुव १२१ ॥

मं सु ५२-से किं तं उवात्तगइत्तामो ! उवात्तगइत्तासु णं उवात्तवाणं (जाव) इम्मैए-
 वरत्थेवव्विदिसेत्ता उवात्तयाणं सीलम्भपदेमणगुणपक्कवक्काणपोत्तमेववात्त
 पडिक्खणवाभो (जाव) आपनेज्जंति उवात्तगइत्तासु णं उवात्तयाणं
 रिद्धिदिसेत्ता परिता वित्थरणम्मसवणाणि बोद्धिसाम अभिमम
 सम्मत्त विसुत्तया धिरत्तं मूळगुणउत्तरगुणाइयारा ठिईदिसेत्ता य
 वहुविसेत्ता पडिमाभिग्गहग्गइणपासणा उवसग्गाहियासणा विरुक्क-
 तत्ता य तत्ता य विचिन्ता सीसम्भयगुणवेरमणपक्कवक्काणपोत्तमो
 उवात्ता अपथिम्ममारयंतिया य संसेइण्णोत्तजाहिं अप्पायं जह
 य मावइत्ता वहुणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उवइण्णा
 कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवतिं सुरधरविमाणवरपोत्तरीप्पसु
 सोक्काई अणोवमाई कमेण भुक्खुण उत्तमाई तमो भाउक्कसण्यं पुवा
 समाणा जह मिजमयम्मि दोहिं छन्दुण य संसमुत्तमं तमरपोथ-
 विप्यमुक्का उवैति जह अक्कयं सम्बुद्धसमोक्खं एते अत्थे य
 पवमाइअत्था वित्थरणेण य, उवात्तगइत्तासु णं परिता वापणा (जाव)
 एवं चरणकरणसत्तवया भावनेज्जंति से तं उवात्तगइत्तामो ॥ सुव १२२ ॥

मं सु ५३-से किं तं अंतगइत्तामो ! अंतगइत्तासु णं अंतगइत्ता णं जगताई (जाव)
 पडिमाभो वहुबुद्धिओ कमा अत्थे महं च सोमं च सक्कसहिंयं
 सत्तरसिद्धो य संजमा उत्तमं च वेमं व्याकिचणया तवो विद्याओ
 समिहयुत्तीओ वेध तह्म अप्पमायसोगो सज्जायज्जाजेण य उत्त-
 माणं दोण्हंपि कक्कण्णाई पत्ता ण च संसमुत्तमं जियपरीसहायं

चउच्चिहकम्मक्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य
जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि
छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघविप्पमुक्को मोक्खसुहमणंतरं
च पत्ता एए अत्ते य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेई, अतगइदसासु
ण परित्ता वायणा सत्सेज्जा अणुओगदारा जाव सत्सेज्जाओ संगहणीओ, जाव
से ण अंगट्टयाए अट्टमे अगे एगे सुयक्खधे दस अज्झयणा सत्त वग्गा
दस उद्वेसणकाला दस समुद्वेसणकाला सत्सेज्जाइ पयसहस्ताइ (जाव)
से त्त अतगइदसाओ ॥ सूत्र १२३ ॥

न० सू० ५२—से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ? अणुत्तरोववाइयदसासु ण अणुत्तरोववाइयाणं
नगराइ उज्जाणाइ चेइयाइं वणत्तडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइ धम्मा-
यरिया धम्मकहाओ इहलोगपरलोगइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ
सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइ परियागो पडिमाओ सलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खा-
णाइ पाओवगमणाइ अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया पुणो बोहिलाभो अत-
किरियाओ य आपविज्जति, अणुत्तरोववाइयदसासु ण तित्थकरसमोसरणाइं
परमंगल्लजगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं
चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं थिरजसाणं परिसहसेणपरिउवलपम-
ट्टाणाणं तवदित्तचरित्तणाणसम्मत्तसारविविहप्पगारवित्थरपसत्थ-
गुणसंजुयाणं अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वणणओ, उत्तम-
वरतवविसिट्ठणाणजोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा
इड्ढिविसेसा देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउवभावा य जिणसमीवं
जह य उवासंति जिणवरं जह य परिकहांति धम्मं लोगगुरू अमर-
नरसुरगणाणं सौऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्मविसयविरत्ता
नरा जहा अब्भुवेंति धम्मसुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं
जह बह्वणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा
जिणवयणमणुगयमहियं भासित्ता जिणवराण हिययेणमणुण्णेत्ता
जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तम-
ज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति
जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिति
संजया जहा य अंतकिरियं एए अत्ते य एवमाइअत्था वित्थरेण,
अणुत्तरोववाइयदसासु ण (जाव) एगे सुयक्खधे दस अज्झयणा तिन्नि वग्गा
दस उद्वेसणकाला दस समुद्वेसणकाला सत्सेज्जाइ पयसयसहस्ताइ
(जाव) से त्त अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ सूत्र १२४ ॥

नं० सू० ५५—से किं त पण्हावागरणाणि ? पण्हावागरणेषु अट्टुत्तर पसिणसय (जाव)
विज्जाइसया नागसुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा सवाया आपविज्जंति, पण्हावा
गरणदसासु णं ससमयपरसमयपण्णवयपत्तेअबुद्धविविहत्थ-

भासाभासियाणं अहसयगुणउवसमजाप्यमारआयरिबभासियाणं
 बित्यरेणं बीरमहोशीर्हि विविहवित्यरभासियाणं च समहियाणं
 अह्रागंगुदुवाहुअसिमणित्थोमआहबभासियाणं विविहमहापत्तिब
 दिउजामजपसिणविउआहेवयपयोगपहाणगुणप्यगासियाणं सड्मूव-
 गुणप्यभावनरमणमहकिमह्यकराणं अहसयमह्यकाहसमयडम-
 समतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं इरहिगमसुरवगाहस्स
 सव्वसव्वेनुसम्मभस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पचचकलय
 पचचयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्त्या जिणवरप्यणीया आब-
 विउजंति, पण्हागारणेणु णं परिता वत्तया (जाव) एणे सुपक्कंते पण-
 पाठींते उहेतणकाहा पणचम्मिंते समुहेतणकाहा संसेग्गणि पचसइस्साणि
 (जाव) से सं पण्हागारणां ॥ सुप १२५ ०

न सू ५५-से किं तं विवायसुप ! विवायसुर ण (जाव) से समासओ पुविहे प तं-
 इहविवाये चेष सुहविवाने चेष (जाव) से किं तं सुविवागाणि ! पुह-
 विवागेतु णं (जाव) कम्मकइमो नमर (नरय) ममप्याई संसारपथे इह
 परपराओ (जाव) से किं तं सुविवागाणि ! सुविवागेतु पुहविवागाणं (जाव)
 पुविवागेसु णं पण्हावत्तमअडिबववपचोरिइकरणपरवामेदुयत्तंगपाए मइसिब
 कसत्तइपिप्यमापत्तप्यभोजअतुइग्गसपसाणसंविपाणं कम्मणं पावपाणं
 पावअणनामकस्सविवाणा गिरपगतितिरिक्कजोविबुविहवत्तवत्तपरपत्तमवइणं
 मणुपसेवि बागपाणं जइ पावकम्मतेसेण पावना हेमिं उहविवाणा वइवत्तप-
 विवासत्तसाकणुहुहुकरवरअमइच्छेयणजिअच्छेअअअजणकइमिइत्तणवक्क
 प्पमइणकासगइहवत्तपसुत्तपात्तइत्तिहुभंगयत्तवसीत्तगतत्तेहकसकसम्महि-
 तिंअणकुमिवागककंअणविरवैअणवैअणउकसमपतिमपकरपरपत्तीअविहाह-
 नाणि बुक्कअणि अलोअमणि वहुविविहपरंवरगुवइया ण मुचंति पावकम्मवइणं,
 अवेपइया इ णमिं मोक्कओ तवेण विहवपिपवइकच्छेण छाडेमं तत्त वा वि
 हुण्ण, एणे व इहविवागेतु णं सीत्तसंजमपिमगुजतवोवइण्येणु उअणु सुविहिउ
 अणुक्कपासप्यभोगतिकारुअइविउइमत्तपायाई पपपमजसा डिपतुइमिंतेत्त
 तिअपीरिआमनिच्छिअमई पवच्छिअणं पयोगसुदुई जइ व निअत्तिंति उ बोहि-
 अमं जइ व परिच्छिअंति नरनरपतिरिपत्तकम्मपिउसपरिवहअरतिअवविछ-
 पसोगमिच्छत्तसेत्तसंकेअं अआत्तसंअकारविनिच्छत्तुत्तारं जमरअजोवि-
 संसुमिपवइण्णत्त सीत्तत्तकसापत्तपत्तइणं अणत्तमं अजवत्तं संसार
 सागमिं जइ प विवर्धंति आअनं तुगणेणु जइ व अजुअरंति तुगणजिअण
 सोवइअणि अलोअमणि ततो व कारुंते तुआणं इहेव नरलोअनापवाणं आउ
 वगुण्णवइअजिअण्णजम्मआरोगपुहिमेइविहेता मिअणत्तपपवअवअण्णविअ-
 वत्तमिइत्तारत्तवइविहेता वहुविहकाअमोअण्णत्तत्त सोवइअण इहविवायोपमेणु
 अणुवत्तवत्तपत्तुवइया अणुमार्थं इण्णं वेद कम्मणं भासिआ वहुविह विवाणा
 विवागसुपमि अणवपा जिअवरेण संविगकात्तया अणे वि प इणत्तया वइ-

विहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जति, विवागसुअस्स णं परित्ता वायणा
(जाव) एक्कारसमे अगे वीसं अज्जयणा (जाव) पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प०
(जाव) से त्त विवागसुए ॥ सूत्र १५६ ॥

न० सू० ५७—से किं त दिट्ठियाए ! दिट्ठियाए णं सव्व० से समासओ पचविहे प तं. (जाव)
ओगाहणसे० उवसंपज्जसे० चुआचुअसे० से किं त सिद्धसे० ! २ सिद्ध-
सेणियापरिकम्मे चोद्धसविहे प०त. माउयापयाणि एगट्ठिय० पादोद्ध० आगास०
केउभूय रासिवद्ध (जाव) सिद्धवद्धं, से त्त सिद्ध० से किं त मणुस्ससेणिया०
ताइं चेव माउआपयाणि (जाव) नदावत्तं मणुस्सवद्धं, से त्त मणुस्स०
अवसेसा परिकम्माइं पुट्टाइयाइं एक्कारसविहाइं पण्णत्ताइं, इच्चेयाइ
सत्तपरिकम्माइ सत्तमइयाइ सत्तआजीवियाइं छ चउक्कणइयाइ सत्ततेरा-
सियाइ एवामेव सपुच्चावरेणं सत्तपरिकम्माइं तेसीति भवंतीति
मक्खायाइं, से त्त परि० से किं त सुत्ताइ ! सुत्ताइ अट्टासीति भवंतीति
मक्खायाइं, तं ...से त्तं सुत्ताइ ४ विप्पच्चइयं (विनय चरियं) ७ समाणं
१० अहाच्चयं ११ सोवत्थि (वत्त य) १ पणाम (इन भेदोंके सिवाय समवा-
यांगमें शेष सूत्रके भेद नन्दीसूत्रवत् हैं) से किं त पुव्वगयं ! पुव्वगयं चउद्ध-
सविह पण्णत्त, तं २ अग्गेणीय, (शेष १३ पूर्वोंके नाम नन्दीवत् हैं, पूर्वोंकी
शूलिकाके अधिकारमें ' अग्गणीय पुव्वस्स णं ' आदिके स्थानपर समवायांगमें
अग्गेणीयस्स णं पुव्वस्स, वीरियपवायस्स णं पुव्वस्स, ऐसे सर्वत्र दोनों पद
स्वतंत्र पद्यी विभक्तयन्त मिलते हैं, बाकी पाठ समान हैं ।) अनुयोगके वर्णनमें
नन्दीसूत्रकी अपेक्षा समवायांगमें कुछ पाठ न्यूनाधिक है ।

जैसे:—

नन्दी

समवायांग

मूल पढमाणुओमे ण

एत्थ ण

देवगमणाणि

देवलोगगमणाणि

रायवरसिरीओ

रायवरसिरीओ सीयाओ

तवा य उग्गा

तवा य भत्ता

केवलनाणुप्पयाओ

केवलनाणुप्पया अ

तित्थपवत्तनाणि य सीसा

{ —पवत्तनाणिय सघयण संठाण उच्चत्तं
आउ वल्लविभागो सीसा

अज्जपवत्तणीओ

अज्जापवत्तणीओ

ज च परिमाणं

जं वा विपरि०

अणुत्तर गइय उत्तर वेउव्विणो य मुणिनो

अणुत्तरगई य

सिद्धा, सिद्धिपहो जह्देसिओ

सिद्धा, पाओवगया

जच्चिर च कालं पाओ०

मसार्धं अणसप्पाए
 तिमिरओषधिप्यमुष्णे मुक्त्तसुहमणु
 पथे एवमथे य
 कहिया, से सं—
 गंडियाणुओगे ? २ कुम्भर०
 चक्रवर्तिगंडियामो
 ० निरयगद्गमणविबिहपरियह्वप्सु
 पणविज्वंति से सं—
 से सं अणुओगे
 —शूटियामो २ आह०
 संसिन्जा अणुओगद्वारा संसिन्जा वेडा
 संसेज्जार्धं पयसहस्साई पयगेणं,
 सप्पभाषपरकणवा
 आषविज्वंति
 परिक्कम्मे
 ओणादधेयिया
 उषसंपज्जधेयिया
 विप्यज्जधेयिया
 सिन्धुवर्धं
 माउवापयार्धं
 मणुस्सवर्धं

मसार्धं
 तमरओषधिप्यमुष्णा सिद्धिपद्मणु
 पत्ता, ए ए अक्षं य
 कहिया आषविज्वंति पण्ण. परू. से सं
 गंडियाणुओगे ? अणुगविहे दे., तं कुम्भर०
 चक्रवर्तिगंडियामो
 ० निरियगद्गमणविबिहपरियह्वणाणुओगे,
 पणविज्वंति परूविज्वंति से सं

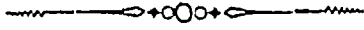
०

—शूटियामो ? अणु आह०
 संसिन्जा अणुओगद्वारा
 संसेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयगेणं प०
 सप्पभाषपरकणवा
 आषविज्वंति
 परिक्कम्मे
 ओणादधेयिया
 उषसंपज्जधेयिया
 विप्यज्जधेयिया
 सिन्धुवर्धं
 तार्धं वेध माउवापयवर्धं
 मणुस्सवर्धं
 अषसेसा परिक्कम्भार्धं पुहाइवार्धं एकासविहार्धं
 पण्णवार्धं
 एवमेव सपुम्मापरेव सप्तपरिक्कम्भार्धं तेवीति
 भवतीति मक्खापाई
 अहासीति भवतीति मक्खापायाई
 विप्यज्जवर्धं
 समार्णं
 महावर्धं
 सीवन्धि
 पणाम
 अग्गिणीयं
 अग्गिणीवत्स धं पुप्पस

(सेप पाठ दोनोमें समान हैं)

तृतीय परिशिष्टम् ।

नन्दीसूत्रेणसह शास्त्रान्तरपाठानां साम्यम्



- न सू गा ५१-सेलघणकुडग चालिणी (पूर्ण) बृहत्कल्पसूत्र पाठिकाभाष्य गा ३३५,
 " " " " " आ. नि गा १३९
 " " ५२-स्त्रीरभिव राय हसा जे घोटति उ गुणे गुण समिद्धा दोसेवि य छडुता
 बृ पी भा गा ३६६
 " " ५३-जे होंति पगय मुद्धा मिगछावगसीह कुयकुरग० रयणमिव. असठविया
 बृ पी. भा. गा ३६७
 " " ५४-नय कथ्यह निम्मातो नय पुच्छइ परि दोसेण, वत्थीव० बृ पी. भा. गा ३७१
 सू १ (प्र) कातिविहे...गोयमा ! पचविहेणाणे प त-आभिणिबोहियणाणे
 सुय (पूर्ण) भग शा ९ उ २ सू १७
 " " " " " " राय सू. १६५
 " " २ दुविहे नाणे पण्णत्ते त पच्चक्खे चैव परोक्खे चैव १,
 स्थानांग स्था. २ उ १ सू ७१
 " " ३ पच्चक्खे दुविहे प त. इदिय पच्चक्खेअ णोहदिअपच्चक्खेअ अनु
 जीवगुण प्र सू १४४
 " " ४ से किं त इदिअपच्चक्खे ! पचविहे प० त० सो इदियपच्चक्खे चक्खु-
 रिदिय प घाणिदिअ
 " " ५ जिद्धिभदिय फासिदिअ. से त इदिय । से किं त णो इदिय ! २ तिविहे
 प० त० (पूर्ण) अनु जी सू १४४
 " " ६ ओहिणाणे दुविहे प० त०-भवपच्चइए चैव सओवसमिए चैव १३,
 " " " " " स्थानां स्था २ उ १ सू ७१
 " " " ओहिणाण भवपच्चइय सओवसमिय, राय सू १६५
 " " ७ दोण्ह भवपच्चइए प० त० देवाण चैव नेरइयाणं चैव १४, स्थानां स्था २
 उ. १ सू ७१
 " " " " " पन्नवणा ३३ वां पद
 " " ८ दोण्ह सओवसमिए प० त०-मणुस्साण चैव पचिदियतिरिक्खजोणियाण चैव १५
 स्था स्था २ उ १ सू ७१
 " " ९ रायपत्तेणइय सू. १६५, पन्नवणा पद ३३ वां स्था स्था ६ उ सू
 गा ५५-जावइया तिसमया-हारगस्त सुहुमस्त पणगजीवस्त आव नि गा ३०
 " " ५६-सव्वबहु अगणिजीवा, निरतर जत्तिय मरिज्जसु । " " ३१
 " " ५७-अगुलमावलिायाण, भागमससिज्ज दोसु ससिज्जा । . " " ३२
 " " ५८-हत्थमि मुहुत्ततो, दिवसतो गाउयमि बोद्धव्वी ।... " " ३३

- नं सू. गा. ५९-मरुदंमि अह्ममातो, जंबूवीरंमि साहिमो मातो । .. आ. लि. गा. ३४
- " " ६-संशिरुंमि बह्मन्ते, वीषसमुद्वावि दुति संशिरुणा । " " " ३५
- " " ६१-काले चउभ्रवुडुणी काले मरुदन्तु शित्तवुडुणिर । " " " ३६
- " " ६२-सुडुमोष देव काले ततो सुडुमवरं इव शित्तं । " " " ३७
- " " १६-से समासमो चउभ्रिडे पन्नसे तंजइ-इण्णो शित्तमो, कालमो, मावमो, ।
 वण्णमो ण ओहिमायी इविद्वन्हां जाण्ण पासइ, जाव मावमो म. श. ८
 उ २ सू १ ४
- " " " ६४-जेरइपवेवतिर्यंका प... आ. लि. गा. ६६
- " " " १८-मणपउजवणाले दुविडे प तं -उण्णुमती वेव विउत्तमति वेव १६,
 स्या स्या २ उ १ सू ७१
- " " " " " " रामप्तेण्णप सू १६५
- " " " -से समासमो चउभ्रिडे प तं -इण्णो शेतमो, कालमो, मावमो, । इण्ण
 मो जं उण्णुमती वणंते अणतपवेसिए जाव मावमो । मय श. ८ उ २
 सू १ ५
- " गा. ६५-मणपउजवणालं पुय जणमणपतिविन्तिवधपापइणं ।.. आ. लि. गा. ७६
- " " सू. १९-केवळणाले दुविडे प तं -भवत्थ केवळणाले वेव सिद्धकेवळणाले वेव १
 मवत्थ केवळणाले दुविडे प तं-सजोगिमवत्थ केवळणाले वेव अजोगि
 मवत्थ केवळणाले वेव ४ सजोगिमवत्थ केवळणाले दुविडे प तं पडमसमपत्त
 जोगिमवत्थ केवळणाले वेव अणवत्तसमपत्तजोगिमवत्थ केवळणाले वेव ५
 अण्णो वरिम समपत्तजोगिमवत्थ केवळणाले वेव अण्णरिमसमपत्तजोगिमवत्थ
 केवळणाले वेव ६ एवं अजोगिमवत्थ केवळणालेइदि ७ । स्या. स्या. २
 उ १ सू ७१
- " " २ -सिद्धकेवळणाले दुविडे प तं -अण्णतरसिद्ध केवळणाले वेव परंपरसिद्ध केवळ-
 णाले वेव ६ । स्या स्या. २ उ १ सू ७१
- " " २१-इत्थी पुरित्तिइहा वतइव व नुत्तगा । सस्सि अण्णस्सि प विविस्सिणे तइव व.
 उ सू अ ३६ गा. ५
- " " २१-अण्णतरसिद्ध अण्णतरसमावण्ण पण्णरसिद्ध प तं मियासिद्धा अतिवध
 सिद्धा(जाव) अजेयसिद्धा. पण्ण. व १ सू ७
- " " २२-से किं तं परंपरसिद्ध अजेयसिद्ध प तं अणवत्तसमपत्तसिद्धा (जाव) अण्णत
 समपत्तसिद्ध, शेषं पण्ण. व १ सू. ८
- " " " -से समासमो चउभ्रिडे प तं-इण्णो शित्तमो कालमो, मावमो, । इण्णो
 नं केवळ मावी सण्णइण्णं जाण्ण पासइ । एवं जाव मावमो. म. श. ८
 उ २ सू. १ ६

- नं. सू. गा. ६६-अह सव्वद्वपरिमाण-भावविण्णत्तिकारणमणंतं । आव. नि. गा. ७७
- ” ” ” ६७-केवलणाणेणत्थे णाउं, जे तत्थ पणवणजोगे ।.. ” ” ” ७८
- ” ” सू. २४-परोक्खणाणे दुविहे प० तं० आभिणिबोहियणाणे चेव सुयनाणे चेव १७
स्था स्था २ उ. १ सू. ७१
- ” ” ” २६-आभिणिबोहियणाणे दुविहे प० तं०-सुयनिस्सिए चेव असुयनिस्सिए चेव १८
स्था स्था २ उ १ सू ७१
- ” ” गा. ६८-उप्पत्तिया वेणइया, कम्मिया परिणामिया ।... ..आ नि. म गा ९३८
- ” ” ” ६९ से ८१ तक-पुव्वमदिट्ठ-इत्यादि ६९ गाथासे ८१ गाथातक, आ नि म गा.
९३८ से ९५१
- ” ” सू. २७-आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे प०त०-उग्गहो, ईहा अवाओ, धारणा,
भग श ८ उ २ सू १८
- ” ” ” २८-से किं तं उग्गहे! उग्गहे दुविहे पन्नत्ते तं०-अत्थुग्गहे य,-” ” ” ” २१
- ” ” ” २९ से ३४-एवं जहेव आभिणिबोहियनाणं तहेव, नवर एगट्ठियवज्ज जाव नोइदि-
यधारणा सेत्त धारणा
भ श ८ उ. २ सू २१
- ” ” ” ३७-से समासओ चउव्विहे प तं दव्वओ, सित्तओ, कालओ, भावओ । दव्वओ
णं आभिणिबोहियनाणी आएसेण सव्वदव्वाइ जाणइ पासति सेत्तओणं आभि-
णिबोहियनाणी...
भ श. ८ उ २ सू १०२
- ” ” गा ८२-उग्गह ईहाज्वाओय धारणा एव हुंति चत्तारि,..... . आ. नि गा २
- ” ” ” ८३-अत्थाणं ओगहणम्मि, उग्गहो तह विचारणे ईहा” ” ” ३
- ” ” ” ८४-उग्गह इक्क समयं ईहावाया मुहुत्त मद्धंतु । काल..... .” ” ” ४
- ” ” ” ८५-पुट्ट सुणेइ सद्द रूव पुण पासई अपुट्टतु । गंधं रस.... .” ” ” ५
- ” ” ” ८६-मासासमसेढीओ सद्धं. ज सुणइ मीसय सुणई” ” ” ६
- ” ” ” ८७-ईहा अपोह वमिंसा, मग्गणा य गवेसणा । सण्णा” ” ” १२
- ” ” ” ८८-ऊससिय ... णीसिंधिय मणुसार” ” ” २०
- ” ” सू ४१-जं हंमं अरिहतेहिं भगवतेहिं.... ..दिट्ठिवाओ अ, (लोकोत्तर भावश्रुत)
अनु सू ४२
- ” ” ” ” ” ” ” ” (लोकोत्तर आगम) ” ज्ञानप्रमाण
- ” ” ” ४२-जं हंमं अण्णाणिएहिं,चत्तारि वेआ संगोवगा, (लौकिक भावश्रुत)
अनु सू ४१
- ” ” ” ” ” ” ” ” (लौकिक आगम) ज्ञानप्रमाण.
- ” ” ” ४४-
” ” ” ४५-सुयनाणे दुविहे प त -अंगपविट्ठे चेव अंग चाहिरे चेव २१ स्था स्था सू ७१
- ” ” ” ” -अंगचाहिरे दुविहे प त -आवस्सए चेव आवस्सयवइरित्ते चेव २२
स्था स्था २ सू ७१.

चतुर्थ परिशिष्टम् ।

श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे ज्ञानकी प्ररूपणा ।

१ श्वेताम्बर दृष्टिमें पांच ज्ञानमें प्राथमिक तीन ज्ञान मिथ्यादृष्टिके लिये मिथ्यारूप होते हैं, अतः पांच ज्ञान और तीन अज्ञान माने गये हैं। लेकिन दिगम्बर इन आठ भेदोंके अलावा मिश्रप्रकृतिके उदयसे होनेवाला एक मिश्र-ज्ञान मानते हैं, देखें—गोम्मटसार, जीव० गा. ३०१ ।

२ श्वेताम्बर मतिज्ञानके मूल २८ भेद मानते हैं। प्रथम कर्मग्रन्थमें ३४० भेद भी मतिज्ञानके मिलते हैं, लेकिन दिगम्बर मूल २८ भेदोंकेही बहु, अल्प, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिसृत, उक्त, अनुक्त, युव, और अयुव, इन बारह विषयोंके भेदसे गुणन करनेपर ३३६ भेद मानते हैं, देखें—गोम्मटसार गा० ३०९ । अश्रुतानिश्रितके चार भेद गोम्मटसारमें नहीं मिलते हैं।

३ सैद्धान्तिक मतसे श्रुतज्ञानके अक्षर, अनक्षर—श्रुत आदि १४ भेद हैं, और कर्मग्रन्थके मतसे पर्यवश्रुत, अक्षरश्रुत आदि २० भेद भी होते हैं, संक्षेपसे अक्षरात्मक श्रुत अङ्गप्रविष्ट और अनङ्गप्रविष्ट (अङ्गबाह्य) ऐसे दो प्रकारका है। अङ्गबाह्यमें दशवैकालिक आदि उत्कालिक और उत्तराध्ययन आदि कालिक शास्त्रोंका समावेश होता है। अङ्गप्रविष्ट आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग आदि बारह प्रकारका हैं। श्वेताम्बरदृष्टिसे उपलब्ध शास्त्रोंमें अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य सब मिलकर ३२ या ४५ आगम पूर्ण प्रामाणिक माने गये हैं। गुफशिष्यपरम्परासे ये शास्त्र मूल परम्पराको नहीं छोड़कर अविच्छिन्न चले आ रहे हैं। वाचनाओंके समय भी मूल भावके संरक्षणका पूर्ण ध्यान रक्खा गया है।

श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरह दिगम्बर भी श्रुतके अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट ऐसे दो प्रकार मानते हैं। अङ्गबाह्यमें उनकी दृष्टिसे १४ प्रकीर्णक संमिलित हैं, जो इसप्रकार हैं—१ सामायिक, २ संस्तव, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५ विनय, ६ कृतिकर्म, ७ दशवैकालिक, ८ उत्तराध्ययन, ९ कल्पव्यवहार, १० कल्पाकल्प, ११ महाकल्प, १२ पुण्डरीक, १३ महापुण्डरीक और १४ निषीधिका। अङ्गप्रविष्ट आचार, सूत्रकृत आदि बारह भेदयुक्त हैं। द्रव्यसङ्ग्रहमें प्रत्येकके पीछे 'अङ्ग' शब्द जोड़कर आचाराङ्ग आदि नाम लिखे हैं, छोटे अङ्गको ज्ञातृधर्मकथा और नामधर्मकथा भी लिखा है, शेष सब समान है। दिगम्बर उपरोक्त अङ्ग एवं अङ्गबाह्यादि श्रुत इभिक्ष आदि कारणसे विच्छिन्नप्राय

मानते हैं, अतएव वर्तमानमें उपलब्ध आधाराङ्गादि शास्त्र उनकी दृष्टिसे प्रामाणिक नहीं हैं।

४ श्रुतके इन २० भेदोंमें एक पद-श्रुत भी आता है। पदका परिमाण श्वेताम्बर सम्प्रदायमें निश्चितरूपसे नहीं मिलता। कहीं कहीं ५१०८८९ (८४० श्लोकोंका) प्रायः पदपरिमाण सिखा है। द्वादशाङ्गीका पदमान उपरोक्त पदसे करना या अर्धबोधक पदसे इसमें भी मतभेद है। छीकाकारने 'सूत्रालापक-पदामेव संख्यातान्येव पदसङ्ख्यापि भवन्ति' इन शब्दोंमें सूत्रालापकरूप पदको भी माना है। पदप्रतिपत्ति, अनुयोग, अक्षर, पर्याय, प्राभूत, प्राभूत-प्राभूत वस्तु और पूर्व, इनका मन्वीसूत्रमें अङ्गोंके अवयवरूपसे कहा है, उ० वेत्ते—आधाराङ्ग व दृष्टिवाकका परिचय-सूत्र।

गोमट्टसारमें पदपरिमाणका स्पष्ट जलेश है, वहाँ १६३४ कोट, ८३ लक्ष ७ हजार, ८८८ अक्षरोंका एक पद माना है। इसीसे द्वादशाङ्गीका पदपरिमाण माना गया है। इसके दिवाय पदके अर्धपद, प्रमाणपद और भव्यमपद ऐसे तीन भेद हैं। उपरोक्त मान्यतामें २००० श्लोक करीबका परस्पर दोनों सम्प्रदायोंमें फर्क पड़ता है।

अङ्गोंकी पदगणना

श्वेताम्बर	विगाम्बर
१ १८	१ १८०
२ ३६	२ ३६०
३ ७२	३ ७२०
४ १०४	४ १०४०
५ २२८	५ २२८०
६ ५०६	६ ५०६०
७ ११५२	७ ११५०
८ २३४	८ २३४०
९ ४६८	९ ४६४०००
१० ९२१६०	१० ९२१६०
११ १८४३२०	११ १८४०
१२ ८३२६८०	१२ ८३८५६०५

५ प्रथमके पाँच पूर्वोंके सिवाय अन्य पूर्वोंके वस्तु विगाम्बर सम्प्रदायमें विषमरूपसे हैं।

६ दृष्टिवाकके परिकर्म, सूत्र पूर्व, अनुयोग और भूक्तिका ऐसे पाँच प्रकार श्वेताम्बर मानते हैं। परिकर्मके सिद्धश्लेषिका आदि मूल सात प्रकार हैं। सूत्र चार्दस प्रकारका है, पूर्व बीस प्रकारके होते हैं और अनुयोग मूलप्रमाण-अनुयोग और गणितका अनुयोग ऐसा दो प्रकारका है। बीसमेंसे सिर्फ चार पूर्वोंपर भूक्तार्थ हैं।

दिगम्बर भी दृष्टिवादके पांचही प्रकार मानते हैं, लेकिन वे श्वेताम्बरोंसे भिन्न हैं, जैसे-परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत एवं चूलिका । परिकर्मके चन्द्रप्रज्ञाति, सूर्यप्रज्ञाति, जम्बूद्वीपप्रज्ञाति, दीपसागरप्रज्ञाति, और व्याख्याप्रज्ञाति आदि भेद वे मानते हैं । सूत्र एकही प्रकारका है, एवं प्रथमानुयोग भी एक प्रकारका है । पूर्वगतके चौदह प्रकार माने गये हैं, जैसे-१ उत्पादपूर्व, २ अग्रायणीयं, ३ वीर्यानुप्रवाद, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद, ५ ज्ञानप्रवाद, ६ सत्यप्रवाद, ७ आत्मप्रवाद, ८ कर्मप्रवाद, ९ प्रत्याख्यान, १० विद्यानुप्रवाद, ११ कल्याणानुवाद, १२ प्राणानुवाद, १३ क्रियाविशाल और १४ त्रिलोकविन्दुसार । दिगम्बर दृष्टिसे चूलिकाएँ पांच तरहकी हैं—१ जलगता, स्थलगता, ३ रूपगता, ४ मायागता और ५ आकाशगता । गोम्मट० जीव० गा. ३६१ ।

७ श्वेताम्बर अवाधिज्ञानके भवप्रत्ययिक और क्षायोपशामिक ऐसे दो भेद और गुणप्रत्ययिकके १ अनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्द्धमान, ४ हीयमान, ५ प्रतिपाति और ६ अप्रतिपाति, ऐसे छह प्रकार मानते हैं । उनकी दृष्टिसे परमावधि भी वर्द्धमान अवाधिके वर्णनमें आता है ।

लेकिन दिगम्बर भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक ऐसे अवाधिके दो मुख्य भेद मानकर गुणप्रत्ययिक अवाधिके १ देशावाधि, २ परमावधि और ३ सर्वावाधि ऐसे तीन प्रकार मानते हैं । अनुगामिक आदि छ प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदायकी तरहही हैं ।

८ श्वेताम्बर आम्नायमें मनःपर्यवज्ञान मनुष्योंके मनमें सोचे हुए भाव अर्थ)को प्रकट करता अर्थात् जानता है । ऋजुमति एवं विपुलमति ये उसके दो भेद हैं । यह ज्ञान ऋद्धिप्राप्त साधुओंकोही होता है ऐसा वे मानते हैं ।

लेकिन मनःपर्यवज्ञानसे चिन्तित, अर्द्धचिन्तित एवं अचिन्तित भी मनके विचार जाने जाते हैं ऐसा दिगम्बर मानते हैं । ऋजुमति वर्तमानके मनोगत विचारोंको जानता है और विपुलमति भूत-भविष्यको भी जानता है । मन, वचन, कायकी ऋजुता व सरलतासे प्रत्येकके तीन भेद ऐसे मनःपर्यवके छह भेद वे मानते हैं ।

पञ्चम परिशिष्टम्

॥ सूत्रपठने अनध्याय ॥

अनध्याय	समय
१ बडा तारापात हो तो	१ महर
२ विशा रक्तवर्षवाली हो तो	अबतक विशा रक्तवर्ष हो तकतक
३ { अफाळ वावुके गर्भनेपर " बिजलीके चमकनेपर " बिजलीके कडकवाड हो तो }	१ महर १ " १ "
४ छरूपसकी प्रतिपद्, त्रितिया तृतीया	महर रात्रिपर्यन्त
५ आकाशमें यज्ञाकार हो तो	आकार रहनेतक
६ सफेद घूमर होनेपर	घूमर रहमतक
७ कृष्ण घूमर होनेपर	"
८ धूलिसे आकाशके ढकनेपर	ढका रहे तकतक
९ हड्डीके विशनेपर	"
१० मांसके नअवीक होनेपर	"
११ रक्तके पास रहनेपर	"
१२ बिष्टा आविके नअवीक	"
१३ स्मशानके पास	"
१४ चन्द्रग्रहण होनेपर	८१११३६ महरपर्यन्त
१५ सूर्यग्रहण होनेपर	"
१६ राजा आदि किसी बडे आवुमीके मरनेपर	शय-संस्कार होनेतक
१७ राजाओंके पुत्रस्थानमें	पुत्र रहनेतक
१८ जपामयके भीतर पञ्चेन्द्रिय जीव मरा हो तो	रहे तकतक
१९ पशुका कछेवर १० हाथके भीतर हो तो	"
२० मनुष्यका कछेवर १०० हाथके	"
२१ आषाढ छरूप पूर्णिमा	पूर्व विम रात
२२ भाद्रपद कृष्ण प्रतिपद्	"
२३ भाद्रपद छरूप पूर्णिमा	"
२४ अश्विन छरूप पूर्णिमा	"
२५ अश्विन कृष्ण प्रतिपद्	"
२६ कार्तिक कृष्ण प्रतिपद्	"
२७ कार्तिक छरूप पूर्णिमा	"
२८ मागशीर्ष कृष्ण प्रतिपद्	"
२९ शीघ्र छरूप पूर्णिमा	"
३० वैशाख कृष्ण प्रतिपद्	"
३१ अश्लेषके समय	शु घटीपर्यन्त
३२ सूर्यारतके समय	"
३३ मध्याह्नके समय	"
३४ मध्यरात्रिके समय	"

षष्ठं परिशिष्टम् ।

स्पष्टीकरण और सूचना

(१) हमने नन्दीसूत्रका अनुवाद अधिकांश वृत्तिके आधारसे किया है, अतएव स्थविरावलीके अनुवादमें टीकाकारके मतानुसारही गुरु-शिष्य क्रम रक्खा है। वस्तुतः यह युगप्रधान स्थविरावली है, गुरुशिष्यक्रमवाली नहीं। प्रस्तावनामें इस विषयपर हमने विचार किया है, देखे।

(२) अश्रुतानिश्रित मतिज्ञानकी औत्पत्तिकी आदि ४ बुद्धिओंके कथा-भागमें कहीं १ परिवर्तन भी किया है, जैसे-तिल-रोहकके दृष्टान्तमें चतुर्थ उदाहरण, औत्पत्तिकी बुद्धिका १० वाँ, १३ वाँ और १८ वाँ मधुसिक्थका उदाहरण।

(३) मुद्रित पुस्तकोंमें अधिकांश 'भरहसिल पणिय' इस गाथाको प्रथम रखकर फिर 'भरहसिल मिठ' आदि गाथाको दूसरे नम्बरपर रक्खा है, किन्तु यहाँ दृष्टान्तके क्रमसे 'भरहसिल मिठ' इस गाथाको प्रथम रक्खा है।

(४) कुछ उदाहरण अतिशय संक्षिप्त होनेसे अस्पष्ट रहजाते हैं, उनका यहाँ स्पष्टीकरण किया जाता है।

(अ) वैनयिकी बुद्धिका ११ वाँ १२ वाँ उदाहरण 'रथिक और गणिका'-पाटलीपुत्रमें कोशा नामकी एक वेश्या रहती थी। उसके यहाँ स्थूलभद्र मुनिने वर्षावास किया। और हावभावसे विचलित न होकर उसको उपदेशसे श्राविका बनाड़ी, जिससे राजनियोगके सिवाय उसनेभी मैथुनके त्याग कर दिये। किसी समय एक रथिकने राजाको प्रसन्नकर कोशाकी मांगनी। की राजाने भी उसके मांगनेपर कोशाको हुकुम दे दिया, किन्तु जब रथिक उसके पास पहुँचा तो वह वारंवार स्थूलभद्र मुनिकी स्तुति करती, परन्तु उसको नहीं चाहती। रथिक अपने विद्वानसे उसको प्रसन्न करनेके लिये अशोक वनिकामे ले गया, और जमीनपर खड़ा २ आम्रवृक्षसे आम्रकी लुम्बीको तोड़कर अर्धचन्द्रके आकारसे काटली। फिर भी कोशा सन्तुष्ट नहीं हुई और बोली कि शिक्षितको क्या दुष्कर है, देखो-मैं सर्षपकी राशिपर सूईमे पोए हुए कनेरके फूलोंपर नाचती हूँ, ऐसा कहके उसने सर्षपराशिपर नृत्य कर दिखाया। रथिक सुलस उसकी बहुत प्रशंसा करने लगा, तब वेश्याने कहा—“आम्रकी लुम्बी तोड़ना और सर्षपकी ढेरीपर नाचना दुष्कर नहीं, किन्तु प्रमदा-समूहमें रहकर मुनि बना रहना यह दुष्कर है”। इसपर स्थूलभद्र मुनिका वृत्तान्त कह सुनाया जिससे रथिकको भी वैराग्य आया। यह रथिक और गणिकाकी विनयजा बुद्धि हुई।

(ब) पारिष्यामिकी बुद्धिका प्रथम उदाहरण—

अण्डमद्योत राजाको बांधके छे आमेमें अभयकुमारने जो बुद्धिमत्ता की, उसका विस्तार देखनेके लिये आवश्यककी वृहद्वस्तुति बेसैं ।

(क) पारिष्यामिकी बुद्धिका चतुर्थ उदाहरण—बेबी ।

पुष्पमय नगरके पुष्पसेन राजाको १ पुत्र और १ पुत्री ऐसे दो सन्तान थी। संयोगवशा साथ रहते हुए दोनोंमें वैपयिक प्रेम जग गया और वे परस्पर मोम मोमनी छये। राणी पुष्पयतीको यह देखकर बड़ी गहानी हुई। उसी विवेकसे यह संसार छोड़कर वीक्षित बन गई। कुछ समयसे संयम-जीवनमें आप्तु पूर्णकर वह वैधी बनी और अपने पूर्वजन्मके पुत्रपुत्रियोंका अनुचित सम्बन्ध देखकर सोचने लगी कि ये दोनों विषयमें मूर्च्छित होकर इसप्रकार रमते हैं तो इनको नरक आवि दुर्गतिमें उत्पन्न होना पडेमा मेरा कर्तव्य है कि मैं इनको सन्मार्गपर लाऊँ। ऐसा सोचकर बेबीने उनको स्वप्नमें नरक मतिके शुक बेटाब जिससे उन दोनोंको भिन्ता होने लगी कि इन दुर्जनोंसे कैसे छूटना फिर दूसरे दिन स्वप्नमें देवलोकके सुख दिखाये। प्रातःकाल आचार्यके पास जाकर दोनोंने नरकगतिसे बचने और देवलोकमें जानेका उपाय पूछा। आचार्यने स्वर्गप्राप्तिका मार्ग बताते हुए धर्मका उपदेश दिया उससे दोनोंने वीक्षा लेकर शुकसे मुक्ति मिखाली। यह बेबीकी पारिष्यामिकी बुद्धिका उदाहरण है।

सब कथाएँ बुद्धियोंके उदाहरणरूप हैं, अतः इनपरसे विधिबाह्य या ऐतिहासिक निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं करें।

संशोधन—

संशोधनकी पूर्ण सावधानी रखते हुए भी परिस्थितिकी विचमता व प्रकाशनकी सीमता तथा प्रत्यक्षीका विहारमें होना आवि कारणोंसे कुछ चूकें रह गई हैं, जिनका इस परिशिष्टसे संशोधन कर लें।

७ वें सूत्रके अन्तमें 'सं सं भयपचदय' यह पाठ भी मिलता है।

७१ वीं गाथाकी छायामें हायकके स्थानपर 'माणक' पढ़ें।

७१ वीं गाथाकी टीकामें 'धूतमाण्ड' के स्थानपर 'माण्ड' पढ़ें।

इ १७ के १० वें उदाहरणमें— 'भण्डन (अकीर्ति)' के स्थानपर— 'माण्ड-वेष्टा करमेपाछे पुरुष' पढ़ें।

पृ० ७१ व ७१ में उदाहरणोंकी संख्यामें चूक हुई है, उसको इसप्रकार पढ़ें— १८ मनुसिंह- १९ मुद्रिय- २० अंक- २१ माणय- २२ मिदलु- २३ चटगमिहाये- २४ सिक्करा व- २५ अथसत्ये- २६ इच्छा व मर्द- २७ लय- लहस्त- २८ गाथार्यमें भी यह संशोधन करस्यें। ८० वीं गाथाके अन्तिम पदमें बुद्धी के स्थानमें 'बुद्धी'।

पृ १२१ के आदिमें 'तेसट्टाणं'के पहले 'बत्तीसाए वेणइयवाईणं, तिण्हं'-
ऐसा पढ़ें।

पृ. १४६ में 'आसा-'की जगह मासा'।

पृ १४७ में 'प्रशिष्यके' स्थान 'प्रशास्य'।

पृ १५७ में 'कधाइ' के स्थान 'कयाइ' पढ़ें।

गाथा ९५ वेंमें 'सुस्सुसइ'के स्थान 'सुस्ससइ' और 'वा धारेइ के
स्थान 'धारेइ' ऐसा पढ़ें।

इसके सिवाय मात्रा, बिन्दु और चिन्हकी चूकसे या विपर्याससे जो
अशुद्धियां रह गई हैं, उनको पाठक सावधानीसे पढ़े और संशोधन करले।
अल विद्वत्सु।

प्रार्थी—

प्रबन्धक—

श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश



शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अह्य	ओत्पत्तिकी बुद्धिका ११ वाँ दृष्टान्त	१६
अर्हयम्	अतीत-भूतकाल	१८
अकम्मभूमिस्तु	अकर्मभूमिक्षेत्रोंमें	०
अकिरियाराहुमुहदुद्वरिस	अक्रियावादी रूप राहुके मुखसे नहीं पकडने योग्य	९
अकपिय	अकम्पित नामके ८ वें गणधर	२३
अकिरियावाईर्णं	अक्रियावादियोंका	०
अक	ओत्पत्तिकी बुद्धिका २० वाँ दृष्टान्त	७२
अक्खारा	अक्षर (वर्ण)	४४१२५
अक्खर	वर्ण ज्ञान	॥
अक्खए	अक्षत-क्षयरहित . ..	५७
अक्खरसुयं	श्रुतोंका १ भेद अक्षरश्रुत	३८
अक्खरलद्धियस्स	अक्षरलब्धिवालेका	३९
अक्खोह	क्षोभरहित,	११
अक्खुभिय समुद्ध गंभीर	तरङ्गरहित समुद्रकी तरह गभीर	२९
असंइ चारित्त पागारा	परिपूर्ण चारित्ररूप कोटवाला	४
अगुलसेडिमित्ते	अगुल श्रेणिमात्र क्षेत्रमें	६२
अगुल पुहुत्त	अगुल पृथक्त्व २ से ९ अंगुल प्रमाणवाला	५७
अगमिय	श्रुतज्ञानका १२ वाँ भेद	४४
अगए	अगद विनयजा बुद्धिका १० वाँ दृष्टान्त	७४
अगह	ओत्पत्तिकी बुद्धिका ७ वाँ दृष्टान्त	७१
अगणिजीव	बन्धिकायके जीव ..	५६
अग्गिभूह	अग्निभूतिनामके दूसरे गणधर	२२
अग्गिघेस	अग्निवेश्यायन गोत्र विशेष	२५
अंगुल	अगुल नामका १ प्रमाण	१४१५५७
अगपविट्ठ	श्रुतज्ञानका १३ वाँ भेद	४४
अगबाहिर	” ” १४ ” ”	”
अंगचूलिया	अगचूलिका नामका एक कालिक शास्त्र	४४
अगट्टयाए	अगकी अपेक्षासे	”
अगे	अंगशास्त्र	”
अंगुट्टपसिणाई	अङ्गुष्ठमन्त्र-विद्याविशेष	५५
अगुल्लेहिं	अङ्गुल्लोसे	१८

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
आधाङ्गजा ...	सुप्ते	३९
आशुक्तिपाई	विना शुकिकाके पूर्व	५७
आशरमसमप	अश्विनसमपसे मित्रसमपके सिद्ध	१९
आरज	आर्य	२३
आरजनीपथर	आर्यजतिपर नामके स्थविर	२८
आरजबम्म	आर्यधर्म नामके स्थविर	३१
आरजनागाइस्थि	आर्यनागाइस्ती नामके स्थविर	३३
आरजमनु	आर्यमनु " "	३
आरजसमुद्	आर्यसमुद् " "	२९
आरजपवचिनीभी	आर्याभोमें मूल्य --	५७
आरजापि	आर्याभी	२७
आरजवद्	आर्यवद् नामके स्थविर	३१
आजापिया ..	आज्ञाकी समा	५
आजोगिनवत्पकेबळगर्ज	आजोगिनवत्पकेबळगर्ज	१९
आजीवा	आजीव	२७
आज्यपजा	आज्यपज	२२
आज्यवसामहुयेई	आज्यवसामस्थानीसे	--
आजिन	आजितनामजी इतरे तीर्थद्वार	--
आहु	आहु	५३
आहुमे ...	आहुर्वा ..	
आहुपपार्ह ..	आहुपद् नामका परिष्कर्ता अथवा १ १ १ अ मेव	५७
आहुारसेव ..	आहुारइरी	१
आहुवीर्य विहरत	आहुर्वीर्य तइके	३९
आहुारत	आहुारत --	२२
आहुवीई	आहुवी	५
आहुत्त	आहुत्त, इकरी आहु	५१
आहुर्हि	आहुसे (बुद्धिगुण)	९२
आहुभरदे	आहुभरत, इक्षिभरतमें	३७
आहुभरतइपमये	आहुभरतमें स्थान	२२
आहुदग्नेष्टु ..	आहुर्वा (इक्षितमुद्) में	१
आहुदग्नेई	आहुर्वा (अंगुष्ठ) से	२
आवतभार	आवतन-आवतनसे	५७
आव्यार	आव्यु	९
आव्युवद्विष ..	आव्युवद्विषिक अवधिज्ञानका इतर अर्थ	९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अणागए (यं) ..	अनागत—भाविष्यत्काल	५७
अणाइय ..	आदिरहित	२३
अण्णाणिय वार्हणं . .	अज्ञानवादिओंका	२७
अणत	अनन्तनाथजी १२ वें तीर्थङ्कर	..
अणते	अनन्त ..	१६
अणंताइ	अनन्त	११
अणतभागं	अनन्तवाँ भाग	१८
अणतर सिद्ध .	एकसाथहोनेवाले सिद्ध ..	२१
अणतपएसिए ...	अनन्त प्रादेशिक	२४
अणमणमणुगयाइ	एक दूसरेसे मिले हुए	२४
अणुओगियवरवसभे	बहोंको अनुयोगोंमें लगानेवाले	२४
अणुओगजुगप्पहाणण	अनुयोगमें युगप्रधान ..	२८
अणुदिण्णाण	अनुदीर्ण—उदयमें नहीं आए हुए	८
अनुओगो (ने) .	अनुयोग	३७।२१।३२
अणुप्पवायम्मि	अनुप्रवादनामक पूर्व अर्थात् विद्यानुप्रवादपूर्व	५७
अणुत्तरगई ...	अनुत्तर—श्रेष्ठ ५ विमानोंकी गतिसे	..
अणुपरियट्टति .	भटकते हैं	..
अणुपरियट्टिसु	भटक चुके	..
अणुपरियट्टिस्तति .	भटकने रहेंगे	..
अणुयोगद्वारा (र)	अनुयोगद्वार सूत्र	२४
अणिट्टीपत्त .	अनृद्धिप्राप्त अर्थात् लब्धिरहित	१७
अणेगविह	अनेक तरहके	२४।२२
अतगय	अवधिज्ञानका भेद	१०
अतर दीवग	अन्तर्द्वीपवर्ती	१७
अतो मणुस्तसिच्चे .	मनुष्यक्षेत्रके भीतर	१८
अतर दीवगेषु	अन्तर्द्वीपोंके भीतर	१८
अतीय	वीताहुआ—भूतकाल	..
अतित्थसिद्धा ..	अतीर्थसिद्ध अर्थात् १५ सिद्धोंमें दूसरा भेद	२१
अतित्थयर सिद्ध .	अतीर्थङ्करसिद्ध	..
अतो मुहुत्तिया (ए)	अन्तर्मुहूर्तकी	३५
अतकिरियाओ .	अन्तक्रिया	५२
अतगडाण	अन्तकरनेवालोंका	..
अतगडदसाओ ...	अन्तकृद्दशाङ्ग आठवाँ अङ्ग	५३
अतोमणुस्त सिच्चे ...	मनुष्यक्षेत्रके भीतर	१८
अंतगदे	अन्तकरनेवाले	५७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अर्थार्ण	अर्थार्थ	१७
अर्थसम्बन्धे	अर्थशास्त्रविषयक वैगविकीबुद्धिका २ रा दृष्टान्त	७२
अर्थुग्गद्दे	.. अर्थार्थपद अर्थपदका प्रथममेव	२८
अर्थिद्	.. अर्थ-विना देहा	६९
अर्थमन्त्रधनशाधि	अर्थ मन्त्रधनका समानता	७७
अर्थाग पतिजार्	दर्पणके आभाससे पूछे हुए मम	५५
अर्थागत	अर्थागत	५७
अर्थलिङ्गतिद्वा	दूसरे मेरुसे होनेवाले तिद्	.. २१
अर्थसममर्थिद्वा	अनन्तसमर्थमे तिद् ..	२२
अर्थसम्बन्ध	अर्थसम्बन्ध-दूसरे स्थानमें	११
अर्थेगतिद्	.. एक समर्थमे एकसे अधिक तिद् होनेवाले	२१
अर्थे	दूसरे	५
अर्थिन्वर्ण	.. अर्थिम हुए	२२
अर्थान्तिर्दि	मिथ्या ज्ञानवास्तवसे	२२
अर्थे वे	दूसरे में	३६
अर्थिन्वर्णो	.. सचसे अन्तिम	२
अर्थिन्वर्णस्त	प्रतिपक्षरहित	५
अर्थजन्वर्ण	अन्तरहित	३६१२३
अर्थिजन्वर्ण	सैकड़ों विना पूछे	५५
अर्थसम्बन्धि	अर्थगत	.. १३
अर्थसम्बन्ध	ममन्तरहित साधु	१७
अर्थिन्वर्ण (५)	नहीं पढ़नेवाले	११५
अर्थिम समर्थिद्	दूसरे समर्थके तिद्	१९
अर्थिद्	निश्चय करता है	.. १५
अर्थिद्	विनास्पष्ट किए ..	८२
अर्थिद्	निश्चय करता अतिनिश्चयकी इलाका	७
अर्थ	परिभाषिकी बुद्धिका पहला उदाहरण	७९
अर्थिन्वर्णतरार्	अधिक बुद्धिसे	१८
अर्थिन्वर्णतर	विशेषतासे अधिक	
अर्थिन्वर्णतरा	.. बहुतायुक्त	११
अर्थिन्वर्णतर	जानता है ..	२४
अर्थिन्वर्णतर	.. अर्थिक	५७
अर्थिन्वर्णतर	नहीं होने योग्य बात	२२
अर्थिन्वर्णतर	पर्याप्तवर्णके साथ	४
अर्थिन्वर्णतर	.. पूरे हुए पूर्वकी जाननेवालोंका	२१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
अभवसिद्धियस्त	अभवसिद्धिक-मुक्तिके अयोग्य .	४३
अभिनदन	वर्तमान अवसर्पिणीके चतुर्थ तीर्थङ्कर	२०
अमचे	अमात्य-प्रधान-पारिणामिकी बुद्धिका ९ माँ उदाहरण .	७९
अमच्चपुत्रे .	अमात्यपुत्र-प्रधानका लडका-पारिणामिकी ... बुद्धिका ११ वाँ उदाहरण .	८०
अमर	देव	५७
अम्मापियरो ..	माता पिता .	५१
अमुक .	अज्ञातनामवाला	३६
अमणुस्ताण	मनुष्यसे भिन्न	१७
अयलभाया	अचलभ्राता स्थविर ...	२३
अयलपुर	अचलपुर नामका ग्राम ...	३६
अर	१८ वें तीर्थङ्कर	२१
अरिहतेहिं ...	अरिहत्तदेवोंसे .	४१
अरहताण	अर्हन्त देवोंका .	५७
अरहओ	अर्हन्तदेव .	४४
अरुणोववाए ..	अरुणोपपात ग्रन्थविशेष ..	॥
अलाय .	जलती हुई लकड़ी	१०
अलोगस्त .. .	अलोकका	१५
अवसव्वय	वामभागसे .	७५
अविसेसिया	विशेषता रहित ..	२५
अव्वाहय फलजोगा ..	निर्बाध फलोंसे युक्त	६९
अवेइय	अज्ञात ...	॥
अवाट्टिए .	स्थिर रहनेवाला ...	५७
अव्वए	नाशरहित	॥
अवाओ	अवाय मतिज्ञानका भेद ...	२७
अवलम्बणया .	अवलम्बनता, ज्ञानका अवान्तरभेद ..	३१
अवाए	अवाय ...	३३
अवाय	अवायमें	३६
अव्वत्त	अव्यक्त अस्फुट .	३६
अवोहो	मतिज्ञानका भेद ..	४०
अवसप्पणीओ	अवसर्पिणी-कालका भेद	१६
असणिसुय .	असाङ्गी श्रुत .	३८
असिद्धा ...	सिद्धोंसे भिन्न ...	५७
अस्सुय	अश्रुत	६९

शब्द	अर्थ	पृष्ठा
अरहन्त निरिच्छय ..	अश्रुतके आश्रितरहनेवाला	१८
असंशयिण	अच्छीतरह नहीं रहता हुआ	५३
असंशय्याणि	असंशयेय-संकमतेवाहर	१०
असंश्रिज्जग	असंश्रय	६२
असंश्रिज्जमार्ग	असंश्रमातवां मार्ग	१८
असंश्रिज्जसमपसिद्धा	असंश्रमातसमपोंमें सिद्ध होनेवाले	२२
असंजम सम्मत्तिवु	असंयमी सम्पगृह्णति	१७
अस्ते	वैतदिकी बुद्धिका कहु उदाहरण	६७
असंश्रिज्जसमप पविट्ठा	असंश्रसमपमें प्रतिष्ठित हुए	३६
असीयस्स	अस्तीसम्पावप्स	
अइवा	अमवा	१
अइ	... मणि	१८
अइव	कारणते हीन	... ५७
आ		
आइ तिप्पधरस्स	आदितोर्ध्वर	२२
आइत्थानं	आदिबसे	.. ५७
आउकुपपा	आवर्तनता-	३३
आवरपक्कहाणं ..	रोगीका प्रवासमान	२२
आमिनिबोद्धिप नाण	आमिनिबोद्धिकज्ञान	१
आमीरी	सुद्व जडतिकी की श्रोतका १२ वीं उदाहरण	५३
आनुनामिय	आनुनामिक श्रुतकम मेव	१
आणासपएत्तं	आणासका म्लैय	१५
आपस्सिपाए	पंक्ति-येजिते	.. १६
आपरिधा	आधार्य	२२
आपंटे	बनापटी शैलस्यका फल परिष्कारिकी बुद्धिका	
	१७ वीं उदाहरण	६३
आमोक्कवा	आमोक्कता	३२
आगच्छंति ..	आते हैं	.. १७
आसद्धज्जा	आस्वाप्लेने	.. २६
आमिनिबोद्धिपनामी	आमिनिबोद्धिक ज्ञानवाला	३७
अएसेल	आसते	..
आधारो	आधारोहसूत्र-मध्यम अह	२२
आपत्तिज्जेति ..	कड़े पाते हैं	२३
आसंभिसपत्तज्जं	संपत्तिपत्रका ज्ञानवत्ता पत्त	... २२

शब्द		अर्थ		सूत्राङ्क
आयविसोही	..	आत्मविशुद्धि	...	२४
आराह्तिता	...	आराधना करके		५७
आगरा	.	आकर-ज्ञान	..	२८
आगम	.	सूत्र ग्रन्थ	...	९२
आणाए	.	आज्ञासे	..	५७
आया	.	आत्मा	.	२६
आउं	...	जीवनमर्यादा	..	५७
आयारे		आचाराङ्गमें	.	”
आविरिज्जा	...	ढक जाय	.	२३
आवस्तय	.	छह आवश्यक	...	२४
आवस्तयवहरित्त	...	आवश्यकव्यातिरिक्त	..	”
आणुपुंभिवायगसण	...	आनुपूर्विके वक्ता	..	२०

इ

इंदभूर्ह	...	इन्द्रभूति एक गणधर	.	२२
इमो	..	यह	३७
इव	.	समान ..		५२
इदिय-पञ्चकक्ष		इन्द्रियप्रत्यक्ष	..	३
इङ्गीपत्त	...	ऋद्धिप्राप्त-लब्धिसम्पन्न		१७
इमीसे	..	इसके	१८
इत्थीलिंगसिद्ध	...	स्त्रीलिङ्गसे सिद्धहोनेवाली	.	०
इत्थी	.	स्त्री	७२
इमे	.	ये सब	३२
इक्कसमइए		एक समयमें		३५
इक्कं		एक	८४
इच्चेय	..	यह		२१
इत्तिभासिय	.	ऋषिभाषित		४४
इहलोइयपरलोइया		इसलोक व परलोक सम्बन्धी		५१
इद्धिविसेसा	.	ऋद्धिविशेष	..	५१
इक्कारसमे	...	इग्यारहवें	..	५६
इक्कारसविहे	...	इग्यारहप्रकारके	...	५७

ई

ईहा	..	ईहा-मतिज्ञानका भेद ..		८१
ईहावाया		ईहा अवाय ज्ञानके भेद	.	८४

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
ईदर्यानि	अथवा ईद करता है	१५
	उ	
उज्जुच	उद्यमी मत्पत्नरहित	३३
उरु	उरुका ..	१
उरुनेसेल	अधिकतासे	१४
उरुवारी	शैत्यापिकी बुद्धिका < वीं उदाहरण	७
उरुमे	अथपद ज्ञान	१७
उरुद्वि	मद्वय किया हुआ	३६
उरुद्वयमि	पद्वयकरणसे	१
उरुजुमई	उरुजुमति	१८
उरुसम	उरुसम ..	३६
उरुद्विष्य	उरुधर्में भाषा हुआ	
उरुहरपविरावमाणहर	हरकेसमानहरणसे शोभापमान	१५
उरु	ऊपर	१८
उरुजुमई	ऊपर होता है	१७
उरुतिषा	शैत्यापिकी बुद्धि	६८
उरुतिमोद्वि	अथ नीचेके भाग	१८
उरुतिमते	ऊपर का भाग	"
उरुद्विद्व	जलकी कुं	३६
उरुद्विद्व	उदाहरण—द्वयस्य	"
उरुद्विद्व	उदितोद्वय पारिजातिकी बुद्धिका ५ वीं उदाहरण	७१
उरुगर्भ	पाषा हुआ	३६
उरुसम	उपगत	"
उरुधाराजया	उपधारयता ज्ञानका भेद	३३
उरुधाराजया	उपयोगसे उत्कृष्ट होनेवाली	७६
उरुधारा	उपधारेण मगधत् मध्य रीधद्वार	१
उरुधाराजया	होनों शोकमें उत्कृष्टता होनेवाली	७३
उरुधाराजया	उत्कर्षिणी कालभेद ..	१६
उरुधाराजया	उत्कृष्ट कुर ज्ञानवर्धनको करनेवाले	४३
उरुधाराजया	उत्कृष्टवर्धनानका दृष	"
उरुधाराजया	उत्कृष्टन करता है	"
उरुधाराजया	उत्कृतिक लूकोका अन्तर्गत भेद	४४
उरुधाराजया	शैत्यापिक दृष	"

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
उत्तरज्झयणाह	उत्तराध्ययनसूत्र ...	४४
उट्ठाणसुए	उत्थानश्रुत ..	"
उत्पत्तियाए	औत्पत्तिकी वृद्धिसे .	"
उववेया	युक्त हुए ..	"
उद्वेसनकाला	उद्वेशनका काल .	"
उद्वेसनसहस्साह	हजारों उद्वेशन .	५०
उज्जाणाह	उद्यान-बगीचा .	५१
उपसग्गा	उपसर्ग-विघ्नबाधा ...	५२
उपासगदसाण	उपासकोंके दश अध्ययनोंका	"
उवसपज्जसेणिया	उपसम्पद्-श्रेणिका नामक परिकर्म	५७
उवसपज्जणावत्त	उपसम्पादनावर्त-परिकर्मका भेद	"
उग्गा	उभ्र भयङ्कर उत्कट	"
उत्तरवेउब्बिणो	उत्तर विकुर्धणावाले	"
उत्सत्पिणी गहियाओ	उत्सर्पिणी गण्डिका .	"
उवउत्ते	उपयुक्त-तल्लीन हुआ	"
उववत्ती	उपपत्ति-प्राप्ति अथवा उत्पत्ति .	५४

ए

एग	एक ..	११
एगमवि	एकमी .	१५
एगसिद्ध	एकसमयमें अकेले सिद्ध होनेवाले	२१
एगविह	एक प्रकारका .	६६
एयाह	येही ...	४२
एवमाहँ	इसतरहके अन्य भी .	"
एगुत्तरियाए	एक एक वृद्धिसे .	४८
एगवीसे	इच्छासे ..	"
एक्कवीस	" ...	"
एगाहयाण	एक आदि ...	४९
एगुत्तरियाण	एक उत्तरवाली .	"
एगट्ठियपयाह	एकार्थक पद ..	५७
एगगुण	एक गुण .	"
एवमन्ने	इसीतरह दूसरे ..	"
एवमाहयाओ	इसतरहके	"
एए	ये सब .	९३
एस	यह ...	९७

शब्द	अर्थ	पृष्ठा
एसापञ्चसप्त	एसापञ्च गोमन्त्रे ..	२७
ओ		
ओगाङ्गा	अवगाङ्गा	१२
ओगन्नावर्ष	अवगावर्ष परिक्र्मकामेद्	५७
ओगन्नावेष्टिषा	अवगावेष्टिका परिक्र्मका शौभा मेद्	"
ओसप्यमीओ	अवसर्पणी	६२
ओसप्यमीर्गाङ्गाओ	अवसर्पणीनष्टिका	८७
ओङ्गुल	ओपयुत	४
ओङ्गिनाय	अवपिज्ञान	१०
ओङ्गिबिस्त	अवबिस्त	१२
ओङ्गिस्तिसाङ्गि	सद्वा अवपिज्ञानवाते ...	६४
ओङ्गिप्यवा	अवपङ्कता-मन्त्रे विपचने सता ..	३१
क		
कङ्गि	कङ्गे मद् हैं	५७
कङ्गावि	कमीमी	"
कङ्गा	कारण-हेतु	"
कङ्गापल	कङ्गापलनगोत्र	२५
कङ्ग	किपाङ्गा	४६
कङ्गासप्तरी	कमङ्कसप्तरी-मन्त्रविशेष	४२
कङ्ग	कन्त्यसूत्र	४४
कङ्गावर्षेष्टिषाओ	कन्तावर्षेष्टिका	"
कङ्गावेष्टिषा	कन्तावेष्टिकपञ्चविशेष	४२
कङ्गावर्षेष्टन	कन्त्यवृत्त	१६
कङ्ग	कन्त्य	१७
कङ्गावर्षेष्टिषा	कन्त्यवर्षेष्टिषा	७
कङ्गावर्षेष्टिषाओ	कन्त्यवर्षेष्टिषा एक उपाङ्गपञ्च	४४
कङ्गावर्षेष्टिषा	कन्त्यवर्षेष्टिषा एक उपाङ्गपञ्च	"
कङ्गावर्षेष्टिषा	कन्त्यवर्षेष्टिषा	५४
कङ्ग	अवगावर्षिका कर्म	"
कङ्गावर्षेष्टिषा	कर्मवर्षेष्टिषा	१
कङ्गावर्षेष्टिषा	कर्मवर्षेष्टिषा	"
कङ्गावर्षेष्टिषा	कर्मवर्षेष्टिषा	४६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
कम्मसमुत्था	कर्मोंसे पैदा होनेवाली	७६
कम्हा	क्यों ?	४२
काचि	किसीको	३६
करणसत्ती	करनेकीशक्ति या इन्द्रियोंका बल	२०
करग	करनेवाला	३०
करिसए	कर्मजाबुद्धिका दूसरा उदाहरण	७७
करिस्सामि	करूगा	३६
करेइ	करताहै	९५
काउं	करनेके लिये	११
काले	समयमें	६०
कालिय	कालिक सूत्र	४४
काविलिय	कपिलरुतें	४२
कालिओवएसेण	कालिक उपदेशसे	४०
कालियसुय आणुयोगिए	कालिक सूत्रोंमें अनुयोग करनेवाले	३६
कासव	काश्यप गोत्र	२५
किरियावाइसयस्स	सैकड़ों क्रियावादी	४७
काउस्सग्गो	कायोत्सर्ग	४४
कुषकुड	औत्पत्तिकी बुद्धिका ४ थं उदाहरण	७०
कुचस्स	वैनायिकी बुद्धिका १३ वां उदाहरण	७५
कुडाइ	गङ्गाप्रपात आदि कुण्ड	४८
किरियाविसालपुव्वस	क्रिया विशाल पूर्व	४७
किच्चा	करके	"
कुथु	कुन्धुनाथजी १७ वें तीर्थङ्कर	२१
कुलगरगडियाओ	कुलकर गण्डिका	५७
कूडा	पर्वतके शिखर	४८
कूव	कूप	७४
कुच्छि	४८ अङ्गुलका प्रमाणविशेष	१४
कुडव	परिमाण विशेष	५१
कुमारे	कुमार—पारिणामिकी बुद्धिका ३ रा उदाहरण	७९
केई	कोई	१०
केउमूय	केतुभूत परिकर्मोंके अनेक भेद	५७
केवलनाण	केवलज्ञान	१९
केवलनाणाणुप्पयाओ	केवलज्ञानानुप्रवाद	५७
कोसियगोत्तो	कौशिक गोत्र	२६
कोट्टे	कोष्ठक (कोठार)	३४

शब्द	अर्थ	सूत्र
कोटिप	कर्मजानुद्धिका ३ वा उदाहरण	७०
	रत्न	
समोपसर्ण	सपोपसमसे	४
सुद्धिमा	सोटी	४४
सामोपसमिर्ष	सामोपसमिक	४३
सर्ण	सम हेनेसे	८
समर्	पारिणामिकी बुद्धिका १ वा उदाहरण	८
समि	पारिणामिकी बुद्धिका २ वा उदाहरण	८१
संदिष्टापरिर्	संदिष्टानाचार्य स्थविर	३७
संस्तिव्याथ	समाव्याथे	४१
संडाई	दुकडे	१९
सिच	सोत्र	६२
सिचकाल	सोत्रकाल	६१
सिचमुष्टी	सोत्रकी बुद्धिसे	४
साडझिला	बोत्पत्तिकी बुद्धिका १२ वा उदाहरण	७
सङ्गा	बोत्पत्तिकी बुद्धिका १३ वा उदाहरण	८१
सुधि	सकम्ब	१८
सुने	बोत्पत्तिकी बुद्धिका १३ वा उदाहरण	७
सुीर	सुीर	५२
सुसिर्भ	सासना-अनससुक्तका भेद	८
सोड	सोडकमुक्त नामकपञ्चाशिरीष	४३
	ग	
गर्	गर्हण	११
गव	बोत्पत्तिकी बुद्धिका ९ वा उदाहरण	७
गढी	विगमजानुद्धिका ९ वा उदाहरण	७४
गणीर्	विगमजानुद्धिका ७ वा उदाहरण	४
गणिकज्या	जाव	१
गमहर	गमहर	२३
गहियाथा	अर्थपद्वय करमेवासे	६९
गहियेवासा	प्रमाणको भ्रम करमेवासे	२९
गहनवद्धतिप	गमसे देवा हेनेवासे	१७
गिर्दिष्टिगतिहा	बृहस्पतेके वेदसे सिद्ध हेनेवासे	२१
गुजरेसगास	गुजोसि पूर्व	७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
गुणरयणुज्जल	गुणरूपरत्नसे चमकनेवाले	७
गुणपाडिवन्न	गुणोंसे युक्त	११
गुणपच्चइओ	गुणोंसे विश्वासपात्र-प्रख्यात	६३
गुरुगुणसमिद्ध	विशालगुणसे दीप्तिमान	५२
गुरु	लोगोंके गुरु	२
गाउयस्मि	प्रमाणविशेष	५८
गामह्रिय	भ्रामीण	५४
गोयम ।	गौतम ।	१०
गोविंदाणपि	गोविंदनामक स्थविरको	४१
गोल	ओत्पत्तिकीचुद्धिका ११ वां उदाहरण	६१
गणिया	विनयजानुद्धिका १२ वां उदाहरण	६६
गोणे	विनयजानुद्धिका १५ वां उदाहरण	११
गद्धम	विनयजानुद्धिका ७ वां उदाहरण	११
गहण	ग्रहणकरना या वन	३६
गहाय	ग्रहणकरके	११
गमियं	गमिक श्रुतका भेद	३८
गणिपिडग	गणिओंकी आगमरूपपेटी	४१
गणिय	गणित	४२
गवेसणया	गवेसणता ईहाके पांचनामोंमें तीसरा	३२
गवेसणा	गवेसणा आभिनिबोधिकज्ञानकामेद	८७
गणिविज्जा	गणिविद्या	४४
गमा	अर्थज्ञान	४७
गरुडोदवाए	गरुडोपपात कालिकश्रुतकामेद	४३
गडियाणुओगे	गडिकानुयोग	८७
गणा	चतुर्विधसष	११
गणहरा	गणधर	११
गणहरगडियाओ	गणधरगडिका	११
गइ	गति	११
गमण	जाना	११
गंठियाओ	गडिका	११
गध	गन्धको	३६
गिणह्द	ग्रहण करता है	९५
गुण	दया आदि	५२
गुहाओ	कन्दराएं	४८
गधोत्ति	गन्धसामान्य	३६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
	घ	
घप	कर्मजातुद्धिका ६ अ उदाहरण	६७
घपज	भौत्यधिकीतुद्धिका १ वा उदाहरण	
घड	कर्मजातुद्धिका ११ वा उदाहरण	७७
घोडघमरण	विनयजातुद्धिका १५ वा उदाहरण	६६
घालिदिष	घालेदिष ..	२९
घुंति	पति ई ..	५२
घन	.. श्रोताका मध्यम उदाहरण	५१
घोडक	घोटकमुक्त ..	४२
	च	
चडण्ड	चारोंका ...	६१
चउभिई	चार प्रकारका ..	१६
चउठमपठिद्वा	चार ठमबोमें तिद्द डेनेवाले	२२
चउबसिठमो	चतुर्विंशतिलाव	४४
चउतासी	चौपती संख्यावालोंका ..	४४
चउथे	चतुर्थमें	४९
चउडुठमिई	चौड मकारके	५७
चकिंठदिष	चतुरिंदिष ..	३३
चकुबहिर्गडिपाओ	चक्रवर्ति-नीडिका ..	५७
चरणनिडी	चरणमिथि ..	४४
चपति	त्यागते ई	४२
चंद्दधिन्ठम	चन्द्रधेप पन्धमिठेव ..	४
चरिचाधारे	चारिधरूप आचारमें ..	४४
चलेकरणवद्वमथा	चलेकरावकी मध्यमा	४६
चब्याई	वेपटोकते क्यवन नरनबने बना	५७
चठजाइण	.. पठिनामिकातुद्धिका १६ वा उदाहरण	७२
चरमसमप	अन्तिमसमप ..	१९
चचरी	चार	४२
चंद्दूराल	चन्द्रवर्षकी ...	४३
चरिचमो	.. चरिचमोका ..	६५
चामीपर मेड्डालमठ	.. सुवर्णके कन्धोरावाले ...	१२
चष्टनी	.. श्रोताका ३ रा उदाहरण ..	५१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
चाणक्य	चाणक्य पारिणामिकी बुद्धिका १२ वा उदाहरण	७१
चित्तकार	चित्रकार कर्मजा बुद्धिका १२ वा उदाहरण	"
चडुलिय	जलती हुई लकड़ी ...	१०
चिंता	मतिज्ञानका भेद ...	३२
चुयाचुय सेणिया	च्युताच्युत—श्रेणिकापरिकर्म	५७
चुयाचुयावत्तं	च्युताच्युतावर्त ...	"
चुल्लकप्पसुयं	छोटा कल्पसूत्र	४४
चुल्लवत्थुणि	चूलिकावस्तु	५६
चाउरत	चार प्रकार की गतिरूप अन्तवाला	"
चेडग निहाणे	चेटक निधान औत्पत्तिकी बुद्धिका— २२ वा उदाहरण	६३
चेइयाइ	चेत्य—व्यन्तरगृह	५१
चोयग	प्रेरणा करनेवाला ...	३६
चोदसपुब्बिस्स	चौदहपूर्वों के जानकार	
चोयाले	चौआलीस	४८

छ

छब्बिय	छहो	९
छप्पन्नाए	छप्पन्नतरह के अन्तर्द्विपोंसे	१८
छब्बिहे	छहतरहके	३०
छ चउकक	पट्टचतुष्क	५६
छेइत्ता	छेदकर	"
छत्तीस	छत्तीस	४७
छेलियाइ	क्ष्वेलित अनक्षर श्रुतों का भेद	८८
छीय	छीकना	८८

ज

जगजीव	जगत के जीव	१
जगगुरु	जगत के गुरु	"
जगाणंदो	जगतके आनन्द दाता	"
जगणाहो	जगतकेनाथ	"
जगवधू	जगतके बन्धु	"
जगप्पियामहो	जगतका पिता धर्म आप उसके मी पिता अतः पितामह	"
जयइ	जयवन्त हैं	"

शब्द	अर्थ	संख्या
जतिप	जितने	५६
जध	जपको	१४
जङ्गनामर्	अज्ञात नामवस्तु	३७
जङ्ग	जिसलिये	४२
जपा	जप	"
जतिपा	जितने	१४
जरत	जितके	"
जन्मना बी	जन्म	५७
जबिरी	जितनी देर	"
जई	जई	"
जतिपाह	जितने	"
जइ	जई	"
जमी	जप	५
जइ	जेसे	५२
जइम	छोटा	१२
जसैत	जकता हुआ	१३
जजमण	जनों के मनमें	१८
जङ्गुडीपमसी	जङ्गुडीपमसी	४४
जसबैत	बसोबस	३४
जसमइ	परमोमइ	३६
जतूप	कठोरा जकजन्तु	५१
जङ्गुनाम	जङ्गुनामी	२५
जसंजज	जातिमेंत संजज	३५
जापा	पैदा हुए	५१
जाइम	मुबिकजातिका जीव	५१
जादिबा	जाननेवाली	"
जाजग	जाननेवाले	५५
जाभिष	जानकर	"
जिज	रागद्वेषविजयी जित	३
जिजरत	जितदेवका	१
जिजसुरतेपमुइ	जिजसुरतेपमुइ	५
जिजवैत	जिजवैतमें सेइ	२४
जिजिपिपककक	जिजिपिपकके मन्त्र	४
जिजिपिपकककक	जिजिपिपकककककक	२९
जिजिपिपकककक	जिजिपिपकककककक	३९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जिह्मिन्द्रिय ईहा ...	जिह्वाइन्द्रियसम्बन्धी ईहा ...	३२
जिह्मिन्द्रिय अवाए ..	जिह्वेन्द्रिय अवाए ..	३३
जिणपणत्ता ...	जिनदेवोंसे कहैगए ...	४२
जिणवराणं ...	जिनेन्द्रदेवोंके ..	४४
जीवदया .	जीवोंके रूपर दया ...	४७
जीवाजीवा ..	जीव अजीव ..	५१
जीवाभिगमो .	जीवाभिगमसूत्र ...	४४
जे ...	जो ...	५८
जेहिं .	जिन्होंने ..	३२
जेसिं ...	जिनके ...	३८
जूय .	यूका एक परिमाण ..	१४
जूयपुहुत्त ..	यूका पृथक्त्व २ से ९ तक ..	५१
जोइसस्स ..	ज्योतिष विमानवासीका ..	१८
जोइट्ठाण ..	ज्योतिःस्थान ...	११
जोयणाइ ...	योजन प्रमाण ...	१०
जोइ ...	ज्योति .	५१
जोणीवियाणओ .	योनिओंको जाननेवाले... .	१

झ

झरग ...	ध्यानकरनेवाला ...	३०
झाणविभत्ती .	ध्यानविभक्ति ...	४४

ट

टका ...	पर्वतोंका ऊपरीभाग ..	४८
---------	----------------------	----

ठ

ठवणा ...	स्थापना ..	३४
ठाण ...	स्थानस्थानाङ्गसूत्र ...	४१
ठाविज्जइ .	स्थापन किया जाता	४८
ठाणे .	स्थानाङ्गसूत्रमें ...	५१
ठाविज्जति	स्थापन करते हैं ..	५१
ठाणसयविवाट्ठियाणं ..	सैकड़ों स्थानोंसे बडे हुए	५१
ठाहिति .	ठहरता है ..	३५

ड

डोवे .	कर्मजाचुद्धिका ४ था दृष्टान्त	७७
--------	-------------------------------	----

शब्द	अर्थ	संख्या
जतिव	जितने	५६
जप	जपको	१४
जज्ञनामर्	अज्ञात नामवाला	३७
जम्झ	भिस्रिदिपे	४२
जपा	जप	"
जसिपा	जितने	४४
जस्त	भिनके	"
जम्मणास्त्रि	जम्म	५७
जभिर	जितनी देर	"
जडि	जडी	"
जसिबार्	जितने	"
जह	जहाँ	"
जमो	जप	५
जझ	जैसे	५२
जझम	छोटा	१२
जझेल	जबवा बुझा	१३
जझमव	जनों के मनमें	१८
जझुबुवपमती	जझुबुवपमती	४४
जसबंत	पशुबंध	३४
जसमह	करोमह	३६
जसूम	छोटा जझमलु	५१
जझुमम	जझुमामी	२५
जभेजव	जातिमंत जेजव	३५
जाना	देहा हूर	५१
जानग	मृत्तिकाजातिका जिन	५१
जानिवा	जाननेवाली	"
जान्यग	जाननेवाले	५५
जानिम	जानकर	"
जिन	रागद्वेषविजयी जिन	३
जिनस्त	जिनदेवका	१
जिनसुपरोपमुह	जिनरूपसुपरोपमसे ममुह	५
जिज्जकर	जिनदेवोंने सेह	२४
जिज्जिदिपपपपप	जिज्जिदिपपपपपे मन्वस	४
जिज्जिदिपपपपपुगडे	जिज्जिदिपपपपपपप	२९
जिज्जिदिपप कन्पुगडे	जिज्जिदिपप कन्पुगडे	३९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
जिडिंभदिय ईहा ...	जिह्वाइन्द्रियसम्बन्धी ईहा	३२
जिडिंभदिय अवाए ...	जिह्वेन्द्रिय अवाय	३३
जिणपणत्ता ...	जिनदेवोंसे कहेगए	४२
जिणवराणं ...	जिनेन्द्रदेवोंके ..	४४
जीवदया .	जीवोंके ऊपर दया ..	४७
जीवाजीवा ..	जीव अजीव	”
जीवाभिगमो .	जीवाभिगमसूत्र ...	४४
जे ..	जो ...	५८
जेहिं ..	जिन्होंने ..	३२
जेसिं ..	जिनके ...	३८
जूय .	यूका एक परिमाण .	१४
जूयपुहुत्त ..	यूका पृथक्त्व २ से ९ तक	”
जोइसस्त .	ज्योतिष विमानवासीका ..	१८
जोइट्टाण .	ज्योतिःस्थान ...	११
जोयणाइ ..	योजन प्रमाण ...	१०
जोइ ..	ज्योति	”
जोणीवियाणओ ..	योनिओंको जाननेवाले...	१

झ

झरग ...	ध्यानकरनेवाला ...	३०
झाणविभत्ती ..	ध्यानविभक्ति ...	४४

ट

टका ...	पर्वतोंका ऊपरीभाग ...	४८
---------	-----------------------	----

ठ

ठवणा ...	स्थापना ..	३४
ठाणं ...	स्थानस्थानाङ्गसूत्र ...	४१
ठाविज्जइ .	स्थापन किया जाता	४८
ठाणे .	स्थानाङ्गसूत्रमें ..	”
ठाविज्जति ..	स्थापन करते हैं ..	”
ठाणसयविवाट्टियाण ...	सैकड़ों स्थानोंसे बढे हुए	”
ठाहिति .	ठहरता है .	३५

ड

डोवे .	कर्मजाबुद्धिका ४ था दृष्टान्त	७७
--------	-------------------------------	----

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
आरम्भसंज्ञगुण	ज्ञानदर्शनगुण	३
आत्मगुणोपापरिष्	नागार्जुनाचार्य नामक रथपरि	३९
भिक्षुसंज्ञे	निष्काम-निष्कामेष्टुए	३६
भिक्षु	भिक्षु-संज्ञा	४१
त		
तद्	दृतीक-तीसरे	१२
तमो	अतकेवात्	३६
तद्	वेत्ते	११
तद्	असीतरद्	२५
तत्तो	स्यूनम्तर	१४
तद्दुवि	तो मी (तधावि)	३४
तत्त्व	सत्य	३५
तत्त्व	सुख वेदामिकी बुद्धिका १३ वीं इत्यन्त	७५
तत्त्वमेव	वद्मपर	३६
तत्त्व	वद्म	११
तत्त्वज्ञ	तत्त्वज्ञ असीवक	६९
तत्त्वमेव	वद्मपर एक	३६
तत्त्वविषय	तव विषय	३१
तत्त्वविषय	तव विषयमे	३३
तत्त्वज्ञाने	तव संयममे	४६
तथा	तत्त्वपरमे	५९
तमेव	असीको	११
तत्त्व व	अतके	६३
तत्त्वमेव	असीके	११
तत्त्वपरिष्ठा	अपरिष्ठाके आचार्य करमेवमे	५
तं	वद्म	११
तं तुल्यव्याप्तिय	तत्त्वस्य वैज्ञानिक	४४
तं ज्ञान	जेसे कि	१
तत्ता	अतकाविक जनि	४४
तथापारे	तव आचारमे	४४
तादे	अतत्वमेव	३६
ति	इति	१६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
स्थि	स्त्री	७०
तिन्थंकरा	तीर्थङ्कर	६३
तिन्थ	चारतीर्थं	१५
तिन्थयर	तीर्थंकर	२
तिन्थसिद्धा	तीर्थमें सिद्ध होनेवाले	२१
तिन्थयरसिद्धा	तीर्थङ्करसिद्ध	"
तिसमयसिद्ध	तीन समयोंमें सिद्धहोनेवाले	२२
तिरिथं	तिर्यक्-तिरछे	१५
तिवग्ग	त्रिवर्ग	७३
तिविह	तीन प्रकारका	५
तिण्ह	तीनोंका	४७
तित्तीस	तीस	"
तिन्नि वग्गा	तीन वर्ग	५४
तिन्नि उद्देशणकाला	तीन उद्देशनकाल	"
त्तिगुणं	त्रिगुण-तीनगुणा	५७
तिन्थपवत्तणाणि	तीर्थोंका आरम्भ	"
तीसा	तीस सख्या	"
तीस	तीस	"
तीए	भून	५७
तिसमुद्धसाय कित्ति	तीनसमुद्रोंतक ख्यातकीर्ति	२९
तिसमयाहारग	तीनसमयतक आहारकरनेवाला	"
तुगियं	तुगिकानभारविशेष	२६
तुण्णाए	कर्मजाबुद्धिका ५ वां उदाहरण	७७
तुरगजुत्त	घोडासे युक्त	६
तेणं	उसमें	३६
तेहिं	उससे	४२
तेयाग्नि निसग्गाण	तेजोऽग्नि निसर्ग	४४
तेरासिय	त्रैाशिक मत विशेष	४२
तेवीस	तीस	४७
तेण	उसकेबाद	"
तेरसमे	तेरहवां	५७
तेरसेव	तेरह ही	"
ते	वे सब	३७
तेलुक्कनिरिक्खिय	तीन लोकसे देखे गए	४१
तिमिर ओघ विण्णमुक्के	अन्धकारसमूहसे रहित	५७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
तपोकर्मगण्डिषामो	तपाकर्मगण्डिका	५७
	ब	
भारता	स्थावर जीव	२६
धूम्रि	पारिणामिकी बुद्धि का २१ वां उदाहरण	७२
धूम्रभेदे ..	स्मृन्मद्द पारि बुद्धिका १३ वां उदाहरण ..	७१
	द	
दृढ इन्द्र	दृढतासे पेदा हुआ	१२
द्वन्द्वसंज्ञा	उपरामयबल संघ सूर्यका	१
द्वन्द्वे	द्वन्द्वमे ..	६३
द्वन्द्वार्	द्वन्द्व	३७
द्वन्द्वेषास्तिर्ष	द्वन्द्वेषास्तिर्ष	२२
द्वन्द्वो	द्वन्द्वेषतस्कम्प	२२
द्वन्द्वान्तपविबुद्धिषां	द्वन्द्वान्तपविबुद्धिषां	२६
द्वन्द्व	द्वन्द्व-जलमयपविरोध	
द्वन्द्वगण्डिषामो	गण्डिकास्तुभोगकका बीधा मेद्	५७
द्वन्द्वपञ्च	द्वन्द्वपञ्च	६१
द्वन्द्वमप सिद्ध	द्वन्द्वमपमे सिद्ध	२२
द्वन्द्वमपितार	द्वन्द्वमपमे निपुत्र	२३
द्वन्द्व	द्वन्द्वमे	३३
द्वन्द्वजन्ति	द्वन्द्वमे जातेहै	२३
द्वन्द्वनाभार	द्वन्द्वनाभारमे	२२
द्वन्द्व	द्वन्द्वसंज्ञाके	१
द्विद्विषामो	द्विद्विषाद् भारद्वी अद्	२
द्विधा	द्विद्विषाम्बी	५५
द्विद्ध	द्विधा गवा	१२
द्विद्विषामस्त	द्विद्विषाका	५७
द्विद्विषामस्तभार	द्विद्विषामस्तभार-मुक्तोका मेद्	६२
द्विद्विषामोत्पत्ते	द्विद्विषामोत्पत्ते ..	२
द्विद्विषामुद्	द्विद्विषामुद् ..	२६
द्विद्विषामि	द्विद्विषामि स्थित	७
द्विद्विषामुद्	द्विद्विषामुद्-अप्यज्ञानी	५२
द्विद्विषामि	द्विद्विषामि	७

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
दोसु	दोनोमें	५७
देशेण	एकदेशसे	"
दिवसतो	एक दिनके भीतर	५८
धम्मवर	श्रेष्ठ धर्म	१२
धरणोववाए	धरणोपपात श्रुतभेद	२४
धरणा	मतिज्ञानका नाम	२७
धणदत्ते	धनदत्त० पारिणा० बुद्धिका ७ वा उदाहरण	७०
धम्मायरिया	धर्माचार्य	५१
धम्मकहाओ	धर्मकथाएँ	"
धारणा	मतिज्ञान का भेद	२७
धणु वा	४ हाथ का एक प्रमाण	१४
धणुपुहुत्त	२ से ९ धनुषतक	"
धारइ	धारण करता है	३६
धारए	धारण करनेवाले	३९
धिइपरक्कम	धैर्यरूप पराक्रम	३५
धीरा	धीर	९२
धुयरय	पापरूपमलको दूर करनेवाले	३
धिइवेलापरिगय	धैर्यरूप तटसे युक्त	११
धुवे	ध्रुव	५७

न

नमो	नमस्कार हो	२१
नमि	नमिनाथ २१ वें तीर्थङ्कर	१९
नेमि	नेमिनाथ २२ वें तीर्थङ्कर	"
नपुसगलिङ्गसिद्ध	नपुसकलिङ्गी सिद्ध	२१
नर	मनुष्य	५७
न भवइ	नहीं होता है	"
न भविस्सइ	नहीं होगा	"
नरिथि	नहीं है	"
नगराइ	नगर	५१
नधमे	नवमें	५१
न	नहीं	५७
नदणवणमणहर	नन्दनवनके समानमनोहर	१३
नगर रह	नगररूपपरथ	१९

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
मंदिष्ठ सप्तम	मन्दिष्ठसप्तम	३३
मंदिसेने	पारिषामिकी बुद्धिका ६ ठा उदाहरण	७०
महु	महुबुद्ध्या	३६
मंवी	मंवीसूत्र	४४
मंदावर्त	मन्दावर्त परिकर्मकावेत्	५६
मागुप्योप	ज्ञानोप्योप	१०
मागज्जुमवाचर्	मागार्जुनवाचकमुस्य	४०
माग	ज्ञान	३३
माग्लुबुळ	माग्लु नोमविरोप	४४
मागम्नुजरिजलि	मागार्जुन कविके	४५
माग्यस्थ	ज्ञानका	५
माग्य	जाननेके क्रिये	१७
माग्यार्त	ज्ञानार्त	२४
माग्यर्	मुद्राविरोप औत्पत्तिकी बुद्धिका २ वा उदाहरण	७२
मागिष्ठसूत्रावर्त	पारिषामिकी बुद्धिका ५ वा उदाहरण	६
मापाबोठा	अनेकतरङ्गी व्यनिवास्त	३२
माभविष्वा	माभ	
माभार्तजला	अनेकम्बजतवाले	"
माभवा	ज मना चण्डिर्	५४
मावाकम्मकडुओ	ज्ञानावर्तकथा	४३
मावहुरुम	मावसूत्र	४२
मावपार्त	मावक आदि	"
मावपरिवावस्तिवाभो	मावपरिवावस्तिवा	४४
मावप्यारे	ज्ञानाचार्ये	४६
मावार्त	उदाहरणरूप ज्ञानार्तका	५३
मावा	जाननेवाळ	४७
मावसुवचोर्हि	माव व सुवच्येके साथ	५५
मावमुक्तिमीतिओ	निर्मुक्तिसे मिठा बुद्ध्या	१७
मावे	माव	५७
मावर्	निवत रहनेवास्त	
मावी	मावी था	"
माव	माव	"
मावगमपार्त	मावर्तमें यमन	५६
मावर्तगमि	निवर्तन किया जाता	४६

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
निबद्ध	बंधा गया ..	”
निकाइया	विशेष रीतीसे बांधे गए	”
निज्जुत्तीओ	निर्युक्तिरै ..	”
निगंधाणं	साधुओंके	”
निसीहो	निशीथ सूत्र	२२
निच्चुग्घाडिओ	सदा खुला हुआ ..	२३
निष्फज्जह	निष्पन्न होता है	”
निस्सिधिय	अनक्षर श्रुत का भेद	५५
निच्छूढ	” श्रुतका भेद	”
नियमा	नियम	५६
नीसमियं	सुना हुआ	३९
निष्पोदए	छप्परसे गिरा हुआ पानी—विनयजा बुद्धिका १२ वां उदाहरण	७५
निमित्ते	निमित्तशास्त्र—विनयजा बुद्धिका पहला उदाहरण	७४
निरतर	लगातार ..	५५
निद्धिद्ध	कहा हुआ	५६
निम्माओ	मायासहित—मायावी	५२
निच्च	सदा	५२
नियमूसिय	हठात् लिया हुआ ..	१३
निम्मल	निर्मल	९
निष्पुह	निर्वृति—शान्तिमुक्त ...	२४
नेरइयाण	नारकिओंका	७
नेरइय	नारकी जीव ...	३२
नोइदियपच्चक्ख	मानस प्रत्यक्ष ...	३
नोइदियाण	नोइन्द्रिय	५
नो इदिय अत्थुग्गहे	नो इन्द्रिय का अर्थावग्रह	३०
नो इदिय ईहा	नो इन्द्रियसम्बन्धी ईहा	३२
नो इद्रिय अवाए	नो इन्द्रियसम्बन्धी अवाय	३३
नो इदिय धारणा	नो इन्द्रियसम्बन्धी धारणा	३४
नो	नहीं	३६
नो चेव	पक्षान्तरमें नहीं	”
प		
पभवो	उत्पत्तिस्थान ..	९

शब्द	अर्थ	पृष्ठांक
परसिन्धियधम्भइ	परमतावत्स्वामी रूप ग्रहोंके	१
पइनासग	मर्गोंको रोकनेवाले	११
पंथमइज्जम थिरकथियप	पंथ मइज्जतरूप स्थिर कथिकलाते	७
पइमित्थ	पइपर पइले	२२
पइसते	श्रीमइज्जरीर के १ वें पदवाच मइसत्स्वामी	२३
ममात्थग	ममात्थशास्त्री	३
पत्तइज्जमज	मत्तइज्जित	३३
पसे	पथ-मौल्यसिद्धी बुद्धिका ११ वां उवाचरम	६२
पसे	मासकरणेवाले	३६
पचए	फेडरइसे	३७
पचओ	पवित्र होकर	५७
पणमासि	ममान करताई	७
पार	चरणोंको	२६
पावपणीजं	मवाचनकतकि	७
पडिच्छवसएइ	सैकड़ों विनीतशिष्येति	११
पडिचए	प्रयातइए	७
पडिजिइज्ज	मजासकरके	५
पइज्जण	मइपण	५
पण्यत्ता	कहे गए हैं	५१
परितं	तनाकी	५२
पस	श्रीपण्णव्यापस्वामी २३ वें तीर्थइए	२१
पुण्णइत	पुण्णइतस्वामी ९ में तीर्थइए	३
पुण्णत्तं	बुद्धिका	३५
पंडियजगतामवयं	पण्डितोंके संमालनीच	२२
पाइव	प्रकीर्ण	२६
पपइए	स्वभावसे ही	५७
पुत्तात्तं	अष्टादश पुत्तात्तं	५२
पावंगत्थी	पतजसिद्धत धम्म	११
पुत्तइवयं	पुत्तइवत धम्मविशेष	११
पुत्तितं	पुत्तकी	५३
पइपप	बद्धेय करके	११
पण्णरिज्जनि	महापण किये जाने हैं	११
पण्णरिज्जति	महापण किए जाने हैं	११
पण्णववत्तं	वर्षवत्सर	११
पण्णरिज्जा	पण करे	११

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
प्रमा	प्रमा	४३
प्रतिष्क्रमण	प्रतिक्रमण चतुर्थ अध्याय	४४
प्रचक्षणा	प्रत्याख्यान	॥
पणवणा	प्रज्ञापनासूत्र	॥
प्रमायप्प्रमाय	प्रमादाप्रमादश्रुत	॥
पोरिसिमेंडलं	पौरुषीमण्डलश्रुत	॥
पुष्पिकाओ	पुष्पिकाश्रुत	॥
पुष्पचूलियाओ	पुष्पचूलिका	॥
पद्मगसहस्ताह	प्रकीर्णक सहस्र	॥
पारिणामियाए	पारिणामिका बुद्धिसे	॥
पत्तयबुद्धावि	प्रत्येक बुद्ध भी	॥
परिपुण्णग	श्रोताके उदाहरणमें चतुर्थ दृष्टान्त	५१
पण्हावागरणाह	प्रश्रव्याकरण १० वां अङ्ग	४४
पंचविहे	पांच प्रकारके	॥
परित्ता	परिमित	॥
पडिवत्तीओ	प्रतिपत्ति	॥
पढमे	प्रथम	॥
पणवीसं	पचीस	॥
पंचासीह	पचासी	॥
पयसहस्ताह	हजारों पद	॥
पयग्गेणं	पदपरिमाणसे	॥
परसमए	अन्यमत	४७
पासंडिय	अन्यतीर्थी	॥
पड्भारा	छुके हुए शिखर	४८
पड्भवणा	प्ररूपणा	॥
पड्भवग्गे	पड्भवाग्र—संक्षिप्त परिचय	४९
पचमे	पांचवें	५०
पड्भज्जाओ	दीक्षार्थ	५२
परियागा	दीक्षासमय	॥
पोसहोववास	पौषध उपवास	॥
पड्भिवज्जणया	स्वीकार करना	॥
पड्भिमाओ	श्रमण और श्रावकोंका व्रतविशेष	॥
पाओवगमणाह	पादपोषगमन—सथारा	॥
पुणचोहिलाभा	फिर सम्यग्—ज्ञानका लाभ	॥
पसिणसयं	सैकड़ों प्रश्न	५५

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
पतिपापस्त्रिभसर्प	पूछे बिनपूछे सैकड़ों मम	५५
पणवास्त्रीसं	पैताब्जिस	७
पंचविंशै	पांच मकारके	५७
परिकर्म	परिकर्म इष्टिवायुका १ मकार	
पत्तेपञ्चदशसिद्ध	मत्पेकमुद्ग शोकर सिद्ध इष्ट	२१
पुरित क्लिगसिद्ध	पुष्टकलिङ्गी सिद्ध	"
परंपरसिद्ध	परम्परा—संगमारा सिद्ध	२२
पञ्चपञ्चजोग	मत्तपनचोभ्य कङ्कने चोभ्य	६७
पञ्चकस्तनाज	मत्पदाज्ञान	२३
परोक्षज्ञानम्	परोक्षज्ञान	२४
पञ्चमवर्षाति	मत्तापन करते हैं	१
पुण्य	१४ पूर्ब ज्ञानविषेय	६६
पणिय	भोत्पयिकी बुद्धिका २ वा उदाहरण	७
पूबह	कर्मजा बुद्धिका १ वा उदाहरण	१
पत्रए	कर्मजा बुद्धिका ७ वा उदाहरण	"
पह	भोत्पयिकी बुद्धिका ५ वा उदाहरण	"
पह	पति भोत्प बुद्धिका १५ वा उदाहरण	"
पुरो	पुत्र भोत्प बुद्धिका १६ वा उदाहरण	"
पत्ते	पत्र भोत्प बुद्धिका ११ वा उदा	"
पावस	शौर " " ९ वा उदा	"
पंचविंशरो	" " " १३ वा उदा	"
पंच	पांच	३२
पञ्चानन्दमवा	मत्वाकर्तपता—वर्तवार आहुति अवापके पांच नामोंमें दूसरा नाम.	३३
पंचनामभिष्ठा	पांच नाम हैं	३४
पहृष्टा	प्रतिष्ठा—वालाका चतुर्थ मेष	"
पहृषण	महृषणा	३६
पहृषोद्गमविहुंतेज	प्रतिबोधाके इष्टान्तरो	
पुरिते	पुष्ट	
पहृषोद्भिङ्गा	जयापे वा समझये	
पञ्चवग	मत्तारक चोत्तमेवाद्या	"
पुण्यस	पुण्यस	
पञ्चवए	मत्तानमकरमेवाद्ये	३६
पञ्चवरेगा	मत्पेय करे	"
पञ्चप्यमाज	मत्पेय क्रिचामाताहुमा	"

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
पवाहेहित्ति	प्रवाहयुक्त करेगा ...	३६
पूरिय	पूर्ण	११
पविसह	प्रवेश करता है	११
पासिज्जा	देखे ...	११
पडिसवेइज्जा	अनुभव करे ...	११
पुट्टं	स्पृष्ट-स्पर्श किये ..	८२
पराघाए	प्रत्याघात होनेपर- पीछे टकरानेपर	८६
पन्ना	प्रज्ञा-आभिनिबोधिक ज्ञानका ९ मां नाम	८७
पूहएहिं	पूजित हुए तीर्थङ्करोंने	२१
पणीयं	प्रणीत ...	११
पुव्वगए	पूर्वगत दृष्टिवादका ३ रा भेद	११
पुट्टसेणिया	पृष्टश्रेणिका परिकर्मका ३ रा भेद	११
पाढो आगासपयाइ	सिद्धश्रेणिका परिकर्मका चतुर्थ भेद	११
पडिग्गहो	परिग्रह मनुष्यश्रेणिका परिकर्मका ११ वां भेद	११
पुहावत्त	पृष्टवर्त-पृष्टश्रेणिकापरिकर्मका ११ वां भेद	११
पण्णवीसा	पचीस ..	११
पन्नरस	पन्द्रह-पञ्चदश ..	११
पाणाउपुव्व	प्राणायुःपूर्व-पूर्वगतका १२ वां भेद	११
पच्चक्खणप्पवाय	प्रत्याख्यानप्रवाद-, ९ मां भेद	११
पुव्वमवा	पूर्वमव	११
परिमाणं	परिमाण-संख्या	११
परियट्ठण	पर्यटन	११
पाहुडा	प्राभृत-दृष्टिवादका प्रकरण विशेष	११
पाहुड पाहुडा	प्राभृत प्राभृत ...	११
पाहुडियाओ	प्राभृतिका	११
पाहुड पाहुडियाओ	प्राभृत प्राभृतिका ..	११
पडुप्पणकाले	उपस्थित-वर्तमानकालमें	११
पंचस्थिकाए	पञ्चास्तिकाय	११
पुव्वविसारया	१२ पूर्वोंमें निपुण	११
पडिपुच्छइ	पीछे शङ्खास्थलको पूछता है	११
पसंग पारायणं	अवसरमें निपुण होना ...	११
परिणिट्ठ	परिनिष्ठित-पूर्ण ..	११
पढमो	पहला	११
परिणयापरिणय	बाईस प्रकारके सूत्रोंमें २ रा भेद	११

शब्द

अर्थ

पृष्ठाङ्क

फ

कुंठ			
फलमर	--	बनकला हुआ	-- १९
फुट्ट		फलसमुहका पार	-- १९
फासिद्विपरबन्ध	--	फूटता है	-- ५२
फासिद्विप ईजपुगमे		स्पर्शोन्मिषपञ्चस	-- ४
फास		स्पर्शोन्मिषमन्त्रनापयह	-- २९
फसेति		स्पर्शको	-- ३९
फसे	--	यह स्पर्श है देता	--
फासिद्विपरबन्धिमन्त्र		स्पर्शको	-- १
फलविषयो	--	स्पर्शोन्मिष छवि अक्षर	-- ३९
		फलविषयोको	-- ५९

ब

बहुविष्टमत्स्य		अनेक प्रकारकी स्वाभ्यासेति	-- २४
बहुनवर		अनेक नगरोंमें	-- ३७
बहुमात्रप		बहुमानक अथविज्ञान	-- ९
बहू		अनेक तराफों	-- ९३
बहूपुष्ट		बहू ओर स्पृष्ट	-- २५
बहने		अनेकों	-- ४३
बहुमात्रसामिरस		बहुमानस्वामिके	-- २२
बर्षीसार्	--	बर्षीति प्रकारकी	-- २७
बाहुपतिपाई		बाहुमध्य	-- ५५
बलशेष भडिबाओ	--	बलशेष गरिबका	-- ५७
बारसमे		बारहमें	-- २
बास्यर्ण		बास्य-मन्त्रविशेष	-- १२
बास्यग पुष्ट		बास्यग पुष्ट-२ से ९ तक	--
बामुन	--	ओत्पतिकी पुष्टिका ५ वीं उदाहरण	-- ७
बिति	--	कहने हैं	-- ७७
बहुन	--	बहुतनामक स्वरि	-- २७
बभ्रुदीपनसिद्धे	--	बभ्रुदीपिक शास्त्राम्ने	-- ३९
बापघरि	--	बहुर	-- २८
बिरेर	--	बुरी	-- २२
बिराठी	--	बिराठीका १ वीं उदाहरण	-- ५१
बीर	--	बुरी	-- २७
पीता	--	पीत	-- ५७

श्रीमन्नन्दीसूत्रका शब्दकोश

शब्द	अर्थ	सूत्रा
बुद्धचोहिय	बुद्धबोधित	२
बुद्धवयणं	बुद्धवचन-बौद्धमन्य	४
बुद्धी	.	..	बुद्धि	६
बुद्धीए	बुद्धिका	४
बोद्धव्यो	समझना चाहिए	५
बोहिलाम	सम्यग्ज्ञानका लाम	५
बीओ	दूसरा	९
बाढ्छार	.	.	अङ्गीकारसूचक ध्वनि	.	.	९
बुद्धिगुणोहिं		.	बुद्धिगुणोंसे	९
बीईवइंसु			अन्त करगए	.	.	५
बीईवयति			अन्त करते हैं	..	.	१
बीईवइस्संति	.	..	अन्त करेंगे	.	.	१
भ						
भयवं	भगवान्	..		
भद्द	.	.	भद्र-कल्याण	..	.	
भगवओ			भगवान्का	१
भद्दबाहु			भद्रबाहु स्वामी स्थविर		..	२
भणग		.	कथन करनेवाले	.	.	३
भद्दगुत्त			स्थविर भद्रगुप्त	.	.	३
भवियजण		.	मन्यजन	४
भवभय		.	संसारकी भीति	..	.	४
भगवते			भगवन्तोंको	५
भवे	संसारमें	५
भवपच्चइयं	भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान	५
भरिज्जिष्ठु	.	.	भरा-पूर्ण किया	.	.	५
भाग		..	भाग-हिस्सा	५
भरहम्मि	अर्द्धभारतमें	५
भइयव्वा	.	..	चाहिए	.	.	६
भंते !		..	भगवन् !	.	.	१
भावे			भावोंको	१
भावओ		..	भावसे	१
भवत्थकेवलनाण			भवस्थ केवलज्ञान	१
भासइ			बोलता है	.	.	६
भूयहियप्पगळ्मे		.	जीवोंके हितमें निर्भय	.	.	२
भूयदिज्ज	..		मृतदिज्ज नामके स्थविर	.	.	

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
मेरी	वायुविशेष, शोलाका १३ वां उदाहरण	५१
मूया	समान होने है	५१
मरुद्विष्ठ	शैत्यसिद्धी बुद्धिका मध्य उदाहरण	७
मरुद्वि	शैत्यसिद्धी बुद्धिका अलग उदाहरण	७
मरुद्विपरमसमत्वा	कठिन कार्यको पार लगानेमें समर्थ	७१
मरुद्वि	होते हैं	११
मरुद्वि	मर भावगा	७१
मरुद्वि	भागवत्तोते	७१
मरुद्वि	मावसे	३७
मरुद्वि	मजना-अनिपतपन	७१
मरुद्वि	आत्मरत्याग	५२
मरुद्वि	भागवत्तोके	५७
मरुद्वि	मरुद्वि	७
मरुद्वि	मरुद्विगुणविक्रम	७
मरुद्वि	मरुद्वि	७
मरुद्वि	होता है	७
मरुद्वि	होया	७
मरुद्वि	कहागधा	१७
मरुद्वि	मरुद्वि	५७
मरुद्वि	मापायी सम्यग्भित्ति	६६
मरुद्वि	भारतनामक पद्य	७२
मरुद्वि	भागवत पद्य	७
मरुद्वि	माया	७२
मरुद्वि	मिथु	७२
मरुद्वि	मेरुवस्तु	७२
मरुद्वि	अपूर्ण पूर्वपरिभोगे	७१
मरुद्वि	भीमाशुतौक पद्य	७२
मरुद्वि	दुःखा	५७
मरुद्वि	माचोके	७८
	म	
मरुद्वि	मरुद्वि	२
मरुद्वि	भागवत् मरुद्वि	
मरुद्वि	मरुद्विभाष्यवामी १९ वं अध्याय	११
मरुद्वि	मरुद्विगुण नामक मरुद्वि	११

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
माढर	माढर ग्रन्थविशेष	२६
महागिरि	महागिरि नामक स्थविर	२७
महुरवाणि	मीठी घाणीवाले	४७
मद्वरयाणं	मृदुतामें सलम	४८
महिप्त	श्रोताका ६ टा दृष्टान्त	५१
मसग	श्रोताका ७ वां दृष्टान्त	”
मणपज्जवनाण	मन.पर्यवज्ञान	१
मणुस्ताण	मनुष्योंका	५
मज्झगय	मध्यगत	१०
मग्गओ अंतगय	पृष्ठतः अन्तगत	”
मणी	पारिणामिकी बुद्धिका १८ वा उदाहरण	७०
महुसित्थ	औत्पत्तिकी बुद्धिका १७ वां उदाहरण	”
मिढ	औत्प बुद्धिका ३ रा उदाहरण	”
मग्ग	औत्प बुद्धिका १४ वां उदाहरण	”
मत्थए	मस्तकपर	१०
महत	महान्	११
मणुयलोए	मर्त्यलोकमें	५९
मइपुव्व	मतिज्ञानपूर्वक	२४
मई	मति—आभिनिबोधिक ज्ञानका नाम	”
मइनाण	मतिज्ञान	२५
मग्गणया	मार्गणता—ईहा—मतिज्ञानका नाम	३२
मल्लग	सरावा—मिष्ट्रीका छोटा पात्र	३६
मग्गणा	मार्गणा—मतिज्ञानका नाम	८७
महिय	पूजित	४१
महाकप्पसुय	महाकल्पश्रुत	४४
महापण्णवणा	महाप्रज्ञापना	”
महानिसीह	महानिशीथसूत्र	”
महाल्लिया विमाण—पविभक्ति	महतीविमान—प्रविभक्ति ग्रन्थ	”
महासुमिण भावणाण	महास्वप्नभावन नामक ग्रन्थ	”
मरणविभत्ती	मरणविभक्ति नामक ग्रन्थ	”
मनोगए	मनोगत मार्षोको	१८
मडलपवेस	मण्डलप्रवेश ग्रन्थ	४४
मज्झिमगाण	मध्यके तीर्थङ्करोंके	”
मणुस्तसेणियापरिकम्मे	मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म	५७
मणुस्तावत्त	मनुष्यावर्त परिकर्मका मेद	”

शब्द	अर्थ	सूत्र्यङ्क
मर्ष-	बही (इच्छा)—भौत्य बुद्धिका २५ वां उदाहरण	७२
मात्रपातपर्या	मात्रकृतम्—परिष्कर्माका मेव	५७
माया	मात्रागिर्वाह	२२
माण्डुसिद्धनिबद्ध	मनुष्यसोभर्मे ह्येनेवाह्य	१८
मिच्छासिद्धि	मिच्छासिद्धि	१
मिच्छासिद्धिरि	मिच्छासिद्धिरिमेति	११
मिच्छासुर्ष	मिच्छासुत	११
मिच्छातपरिष्कारिपर्या	मिच्छातवसे परिष्कृत	११
मिच्छातव	सूत्रका वचना	२६
मित्तमह्ववर्षपक्षे	सुप्त मार्ववते, सुप्त	४
मुनिवरमर्ष इव	मुनिवररूप सुतेत्युसे पूर्ण	१४
मुद्रिपञ्चमसपनिहस्य	ज्ञाता व कुपकपतमण काप्तिवाडे	३५
मुद्रुचैतो	मुद्रुचैके भक्तिर	५६
मुक्ति	कमेजा बुद्धिका ५ वां उदाहरण	७७
मुद्रिप	भौत्य बुद्धिका १९ वां उदाहरण	७२
मुद्रुत्तमर्ष	भावा मुपूर्त	८४
मुई	मुस—योरकमुस धम्पविरोध	४२
मुद्रुवहमाणुओवे	मुद्रुववनाणुओव	५७
मुद्रिजो	घाणु	५७
मुद्रिवरुत्तमे	मुद्रिजोमि वेठ	
मुद्रुत्तमर्ष	मेत्तमर्ष	११
मुद्रु	मुद्रु रक्षा—अनुयोगविधि	१६
मेव	मेवा—मतिज्ञानका एक नाम	३१
मेवमुद्रु	वाद्कोके ज्ञानलेवर	४३
मौरनर्षत	नाश्ते हुप मौर	१५
मोर्दिकपुते	मोर्दिकपुत्र—गणधर	२३
मेवजो	मेतार्थ नामक नयधर	२३
	घ	
घ ..	घोर	२१
	ङ	
रत्नसिद्धिरिमुद्रु	रत्नोति मन्त्रि ओरवीपुत्र कम्भरावात्त	१४
रत्न	रत्न करता हुमा	१५
रत्नस	रत्नोर्थ	११
रत्नसपरिष्काररत्नस	वर्षिप्रवर्षरत्नके रत्नक	३१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
रयणकरंडगभूय ...	रत्नोंकी पेटीके समान ...	३२
रक्षितओ	रक्षित रक्षता ..	”
रेवहनकस्तनाम ..	रेवतीनक्षत्र नामवाले	३५
रयणमिव	रत्नके समान .	५२
रुययम्मि .	रुचकद्वीपमें ...	५९
रयणि .	रत्निप्रमाण-१ हाथ ...	१४
रूविदव्वाहं	रूपी द्रव्योंका ...	१६
रयणष्यमाए .	रत्नप्रभानामकपृथ्वीके ...	१८
रुक्स .	वृक्ष ...	७०
रहिए	राधिक-विनयजा बुद्धिका ११ वां उदाहरण	७४
रुक्साओ .	वृक्षसे ...	७५
राया .	राजा ...	७९
रावेहित्ति .	आर्द्र (गीला) करेगा .	३६
रूवं ...	रूप ..	”
रूवत्ति ..	कोई रूप है ऐसा ..	”
रस ...	रसको ...	”
रसोत्ति ..	यह रस है .	”
रसे ...	रस ...	”
रसणिदिय-लद्धिअकसरं	रसनेन्द्रिय-लब्धव्यक्षर	३९
रायपसेणियं .	राजप्रश्रीयसूत्र .	४४
रामायणं .	रामायण-रामचरित्र ..	४२
रायाणो ..	राजा ...	”
रासिबद्धं	परिकर्मका अवान्तर भेद	५७
रायवर सिरीओ .	श्रेष्ठ राजलक्ष्मी .	”

ल

लकसण	लक्षण ...	७४
लकसणपसत्थे .	लक्षणोंसे प्रशस्त-उत्तम ..	४९
लद्धिअकसर		
लिकस .	लिक्षा-प्रमाणविशेष ...	१४
लिकसपुहुत्त	लिक्षा पृथक्त्व-२ से ९ तक	”
लेह	लेख ...	४२
लोगर्बिन्दुसारपुव्व	लोकबिन्दुसार-पूर्वोंका एक भेद ..	५७
लोग	लोक ...	१४
लोयालय .	लोकालोक ...	४२

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
वितिमिरतराए	अन्धकाररहित ..	१८
विस्तुद्धतर . .	अतिशय शुद्ध ...	१९
विष्णुसि . .	विज्ञाप्ति-विज्ञापना .	६६
विणयसमुत्था ...	विनयसे होनेवाली ..	७३
विसेसिया	विशेषतायुक्त .	२५
वियागरे . . .	कथनकरे ..	८५
विस्तुज्जमाण . .	विशेषतासे शुद्ध होता हुआ .	१२
विन्नाणे ..	विशेषज्ञान ...	३३
विवागसुय .. .	विपाकसूत्र ...	४१
विवाहपन्नात्ति ..	व्याख्याप्रज्ञाप्ति (भगवतीसूत्र)	११
विज्जाचरण विणिच्छओ	विद्याचरण-विनिश्चय ग्रन्थ ...	४४
विहारकप्पो . .	विहारकल्प .	११
विमाण पविभत्ती . .	विमान प्रविभक्ति ...	११
वित्तीओ .. .	वृत्ति-व्यवहार ...	११
विष्णाया	विज्ञाता-विशेषज्ञ .	११
विवाहे ..	भगवती सूत्रमें ..	५०
विआहिज्जति	व्याख्यात किये जाते हैं ..	११
विआहिज्जति . . .	व्याख्यात किया जाता ..	११
विचित्ता ..	विचित्र-विविधतायुक्त ...	५३
विज्जाहसया .. .	अतिशययुक्त विद्यार्थी ...	११
विवागसुयं . . .	विपाक सूत्र .	५६
विप्पजहणसेणिया . . .	विप्रजहच्छ्रेणिका-परिकर्मका भेद ..	५७
विप्पजहणावत्त . . .	विप्रजहदावर्त ..	११
विविह ...	विविध .	११
विराहित्ता ...	विराधना करके ...	११
विही . . .	अनुयोग-विधि ...	९७
वीयरागसुय ..	वीतराग श्रुत ...	४४
विवाहचूलिया . . .	व्याख्या चूलिका ...	११
वीरियायारे ..	वीर्याचार ...	११
वीमंसा ...	विमर्श-मतिज्ञानका ३ रा भेद .	७८
वियालणे . . .	ईहाका स्थानविचालन ..	८३
वियावत्तं . . .	सूत्रका १५ वाँ भेद ..	५६
वीसेदी . . .	विषम श्रेणि ...	८६
वुच्छित्ति ..	विच्छेद होना ..	४३
वूह ...	समूह ..	४७

शब्द	अर्थ	पृष्ठाङ्क
बुद्धि	बुद्धिसे	११
बुद्धी	बुद्धि	११
बुद्धा	कहे गए	१८
बेपा	बेव	५२
बेवइपा	बिनबजा बुद्धि	५५
बेठमजोषबाए	बेधबजोषपात	११
बेठेयजोषबाए	बेठम्बरपेपात	११
बेवइपाईर्ज	बैनपिक बादिजोका	५७
बेडा	बृत्ति-कल्पविशेष	५५
स		
सठजस्यं	पक्षिजोका शब्द-निमित्तघात	५२
सगइमद्विपामो	शक्यमद्विका-मन्वविशेष	७
सच्छब्द	स्व-रूपछा	११
सद्धितं	पठितम्ब धम्मविशेष	११
संजोर्वपा	साहोपाङ्ग-अङ्ग उपार्द्धोके साम	११
संखिब्बा	संस्मेष-संख्या करने बोध	५५
संकिद्धिस्तमान	पुम्ही वा मम्मिण होता हुआ	१३
संखिब्बासमवसिद्ध	संख्यात सम्यके सिद्ध	२२
संखिब्बानानं	संस्मेषपा नाम	१५
संखिब्बासात्तव	संस्मेष वरुकी आपुवन्ते	१७
संगइमीओ	संपद्विपयी	५५
संजनइम्मइर	संपद्वय मइम्मैर परित	१८
संप	साधु साम्पै, सामक बाधिकाररूप संप	११
संजमविद्धिमु	संपमविधि	५२
संखिब्ब	शाब्दिक्य व्यापार्थ	२८
संमुच्छिम	बिना गर्मके उत्पन्न होनेवाले जीव	१७
संखिब्बया	संखिब्बया	५५
संजपत्तंजप	संपत्तासंपत्त-बावक	१७
संजपत्तमविद्धि	संपत्तसम्बुद्धि-साधु	११
सन्नामिच्छविद्धि	सम्पादुमिच्छावृत्ति-निश्चय	११
सम्पविद्धि	सम्पद्वृत्ति	११
संसि	शक्तिपापजो १६ में तीर्थहूर	२१
संजव	सम्बवपापजो ३ रे तीर्थहूर	११
ससि	शक्ति-कल्पमजो ८ में तीर्थहूर	११

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
सभूय	सम्भूत नामक रथविर	२६
सञ्ज्ञायमणतधरे	अपरिमित स्वाग्यायोंको धरनेवाले	३८
समुष्णज्जह्	उत्पन्न होता है	८
समुव्वहमाणे	अच्छीतरह पहन करता हुआ	१०
सत्पओ समंता	चारों तरफमे	१३
समासओ	संक्षेपसे	१६
सव्यओ	सच ओरसे	१२
सव्यदरिसीहिं	मर्षदर्शिओंने	४१
सव्यदिसाग	सर्वदिशा सम्बन्धी	५६
सव्यचहु	सचसे अधिक	१३
सव्यभावाण	सच भावोंके	१८
सव्यद्व्याहं	सच द्रव्योंको	२२
सव्यजीवाणं पि	सभी जीवोंका	४३
सव्यद्व्य पणिणाम	सच द्रव्योंके परिणामको	२२
समएहिं	सिद्धान्तोंसे	४२
समाणा	होते हुए	११
सम्मत्त परिगाहिवाइ	सम्यक् रूपसे ग्रहण किये गए	११
सम्मत्तहेउत्तणओ	सम्यक्त्वके हेतु होनेसे...	११
सपक्कम टिट्टिओ	अपने पक्षकी दृष्टिओंको	११
सपज्जवसियं	अन्तवाला या श्रुतका एकभेद	४३
सव्वागासपएसगं	सर्व आकाशके प्रदेशोंको	४३
सव्वागासपएसेहिं	सर्वाकाश-प्रदेशोंसे	११
समवाओ	समवायाङ्गसूत्र	४१
सत्तमए	स्वसिद्धान्त	४७
सत्तमयपरसमए	रथपर दोनों सिद्धान्त	११
सत्तट्ठीए	सतसठ	११
सट्भावुच्चभावणया	सद्भावोंका विस्तार करना	४६
समुद्धेसणकाला	समुद्धेशानकाल	०
सव्वभावदेसणयं	सर्ष भावोंका उपदेशक	२४
सयय	सदा	१९
सरिव्वय	समान धयवाले	२७
समणाणं	साधुओंका	४४
समुद्धानसुए	समुत्थान श्रुत	११
सजोगिमवस्थ०	सयोगिभवस्थ०	१९
सयंयुद्धसिद्ध	स्वयन्मुद्धसिद्ध-सिद्धोंका भेद	२१

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
समणगणसहस्रपत्त	साधुसमूहरूप विशाल कमल	८
संघचक्र	सघरूपचक्र	५
संघसमुद्र	सघरूप समुद्र	११
सघमहामदर	सघरूप मन्दराचल	१७
सावगजणमहुअरि	श्रावकरूप भ्रमर	८
सघनगर	सघरूप नगर	४
सिद्धि	पारिणामिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण	७९
सिल	औत्पत्तिकी बुद्धिका २ रा उदाहरण...	०
सिक्खा	” ” २३ वा उदाहरण	०
सिज्जस	श्रेयांसनाथजी, ११ वें तीर्थङ्कर	१९
सिज्जंभव	शय्यम्मवस्थविर	२५
सीयल	शीतलनाथजी, १० वें तीर्थङ्कर	२०
सिलायलुज्जल	शिलातल उज्ज्वल	१३
सीलपढागूसिय	शीलरूप पताकासे उच्च	६
सिलोगा	श्लोक ...	०
सीसा	शिष्य ...	०
सुयरयण	श्रुतरूप रत्न	७
सुअ	श्रुत ...	२
सुदर कंदर	सुन्दर कन्दरा	१४
सुरासुरनमंसिय	देवदानवोंसे वन्दित	३
सुरभिसील	शीलरूप सुगन्धियुक्त	१३
सुयनाणपरोक्ष	श्रुतज्ञानपरोक्ष	३८
सुणेइ	सुनता है	८५
सुमिणे	स्वप्न	३६
सुमिणेत्ति	स्वप्न है	”
सुणिज्जा	सुने ...	”
सुत्त	सूत्र	”
सुयनिस्सिय	श्रुतनिश्चित मतिज्ञानका भेद	८१
सुत्तथ	सूत्रार्थ	७३
सुयअन्नाणं	श्रुत अज्ञान	२५
सुयनाण	श्रुतज्ञान	”
सुहुमयर	अधिक सूक्ष्म	६२
सुहुमो	सूक्ष्म	६१
सूइज्जइ	सूत्रित किए जाते हैं	४७
सूयगडे	सूत्ररुताङ्ग	”

शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
हुंति	होते हैं	३६
हुंकार	स्वीकारसूचक ध्वनि	९६
हेउ	हेतु	३८
हेतुसत	सैकड़ों हेतु	१४
हेऊ	हेतु	५७
हेऊवएसेण	हेतूपदेशसे	४०
हेरणिणए	कर्मजा बुद्धिका प्रथम उदाहरण	७७
होइ	होता है	५१



शब्द	अर्थ	सूत्राङ्क
शुपवर्त्तपा	सुतरकल्प	२४
शुभिकामाभ्यासार्थं	स्वप्नमात्रेण नामकं चन्द्रविद्येयं	१
शुपपञ्चमी	शुभपञ्चमी शुभ	११
शुशुभि	अप्यङ्गीतरङ्ग मी	२३
शुभेभि	सौरम्	१८
शुपचारसंमतिहर	द्वन्द्वपञ्च सुतरूप विस्तारवाता	११
शुप	शुभे	१९
शुभम्	शुभतिनाथगी, ५ वें तीर्थहर	२
शुपप	शुभमनाथगी, ६ वें तीर्थहर	११
शुनाथ	शुभमर्वाथगी, ७ वें तीर्थहर	
शुभम्	शुभमर्वाथगी, ५ वें वज्रपर	२५
शुभति	शुभस्ति रथपर	२७
शुभमिपनिष्पत्तिर्ष	मित्य अनित्यके ज्ञाता	२६
शुभमप	बाच्छे साधु	२७
शुभतापरवारम्	शुभतापरके पतरागती	३
शुभमस	अस्मिन्मप सुशु	२९
शुभमिप सुचार्य वार्य	शुभमस शुभमपके भारक	२९
शेखपन	शेखका मथम उदाहरण	५१
शे	शु	३
शेता	शाकी शबे	
शेर्षदिव	शेर्षेर्षदिव	३
इ		
इति	अतोसिद्धी कुट्टिका ६ हा उदाहरण	७१
इत्यभि	इत्यने ..	५८
इतिर्षागिषामो	इतिर्षागिषिका	५७
इत्	इता इ	६३
इत्	पदाभितोष	११
इत्ति	इत्ति गोम	२८
इत्तिगुण	इत्तिगुण	११
इत्तिर्षागिषामो	इत्तिर्षागिषामो सुभाषमम्	३९
इत्तिर्षागिषामो	इत्तिर्षागिषामो सुभ्य अस्मिन्पञ्चमी	३८
इत्तिर्षागिषामो	इत्ति ५ इत्तिर्षागिषामो इत्तिर्षागिषामो	१८
इत्तिर्षागिषामो	इत्तिर्षागिषामो	१३
इत्तिर्षागिषामो	इत्तिर्षागिषामो	९

सूचना—विहारमें होनेसे शब्दकोष पूर्यमीतीके इतिगोपर नहीं कराया गया अता उसमें कुछ अशुद्धि भी रह गई है। शक्तिताके कारण विशेषनाम व पारिभाषिक शब्दोंका वृध्द्वारण भी उसमें नहीं किया गया। कुछ पालक उनको सुधारके पडे। विशेष—

पृष्ठ	पङ्क्ति	शुद्धपठ
३	१२	योग्य शिष्योंको अनुयोगमें लगानेवाले
४	१	अनन्त समयके
॥	१४	अनिभिर्जन उद्देयरहित
६	७	असंख्यत समयके
॥	२४	अतन्त्रिकारूप काठ
॥	३२	सामान्यरूपसे
७	२४	एक समयकी रियतिवाले
८	१	ऊपरके नीचेका भाग
९	२९	एक २ से बढनेवालीसे
॥	३५	कणवस्तु
११	३	कुड्ग-पडा
॥	३५	केवलज्ञानका उत्पाद
१२	२३	सोडगुह-बोल्कमुह नामक ग्रन्थ
॥	३५	गुणमय परागते पूर्ण
१३	५	गुणमयपिक अवधिज्ञान
१४	१५	बोधे समयमें सिद्ध होनेवाले
॥	१९ के बाद	बदलानेवाले ... बार नबवाले-स्वतन्त्रपते
१५	२५	सेष्टित्वादि अन्तरात्पुत्रका नेद
१६	५	पथानामक
॥	९	मिसके
॥	१४	केसे
॥	१४	छटा या कमसे कम
॥	२३	जसोका
१७	३२	ठडरेगा
१९	९	तीसरे समयमें सिद्ध होनेवाले
॥	११	बर्ध, बर्ध कामरूप-निर्ध
॥	३१	तेबीध
२	२	वर्धमें समयके सिद्ध
२२	१५	गलात्त

शब्दकोषमें केवल सुभाइसी लिखा गया है बर्ध पालक गाथा वा शूद्रके अङ्गको प्पानते लगतके। तुझेतु कि बडुता।

सूचना—दिए गए होनेसे शब्दकोश पूज्यश्रीजीके दृष्टियोग नहीं कराया गया अतः
इसमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। धीमेगाके कारण विशेषनाम व पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोजन
भी इसमें नहीं किया गया। कुछ पाठक उनको सुधारके पत्रों। विशेषतः—

पृष्ठ	पंक्ति	सुधार
३	१२	योग शिष्योंको अनुयोगमें रखनेवाले
४	१	अन्यत्त समपके
१०	१४	अभिधियाँ उद्देश्यरहित
६	७	असंख्याय समपके
	२४	आत्मिकारूप कास
१०	३२	सामान्यरूपसे
७	२४	एक समपकी स्थितिवाले
८	१	अपरके भेदिका माय
९	२९	एक २ से बहुमेवालीसे
१०	३५	कल्पकत्व
११	३	कुडग—घडा
१०	३५	केवलज्ञानका सत्यात्
१२	२३	खोडगुह—सोचमुस नामक ग्रन्थ
१०	३५	मुष्मय परागसे पूर्ण
१३	५	मुष्मयपिक अशुद्धि
१४	१५	नीचे समपमें सिद्ध होनेवाले
१०	१९ के बाद	अव्ययप्रयोग... बार नबवाले—असंयमसे
१५	२५	सेमित्तादिक अन्तरभुतका नेव
१६	५	पथनामक
१०	९	जिसके
१०	१४	जैसे
१०	१७	छोटा वा कमसे कम
	२३	जल्दीका
१७	३२	हइरेगा
१९	९	सीधरे समपमें सिद्ध होनेवाले
१०	११	धर्म, अर्थ, कामरूप—विषय
१०	३१	सेवात
२	२	इधरे समपके सिद्ध
२२	१५	मालाव

शब्दकोशमें केवल उदाहरण दिया गया है, वहाँ पाठक गया वा रूपके अर्थको ध्यानसे
समझें। कुछेक कि अनुगत।

